

* कलौ तद्धरिकी संनात् *

कि चिन्तामणि

(प्रथम भाग)

लेखक {

श्रीस्वामी भोलें



कलौ तद्व

भक्ति चि

(प्रथम

लेख

श्रीस्वामी भोल

प्रकाश

श्रीभगवद्भक्ति आश्रम

प्रथमावृत्ति

१०००

कलौ तद्विरिक्तनाव

भक्ति चिन्तामणि

(प्रथम भाग)

लेखक

श्रीस्वामी भोले बाबा जी

प्रकाशक

श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा रेवाड़ी

प्रथमावृत्ति

१०००

सम्बत् १९८६

मूल्य

॥

नम्र निवेदन

इस कराल कलिकाल में अन्य सब साधनों की अपेक्षा भगवत् भक्ति ही परं श्रेयस्कर साधन है। इस कल्याण कारी मार्ग की ओर मनुष्यों को प्रेरित करने के लिये परं पूज्य श्री स्वामी भोले बाबा जी ने "भक्ति चिन्तामणि" नामक यह परम पुनीत ग्रन्थ रचा है। यह ग्रन्थ दो या तीन भागों में समाप्त होगा। इस ग्रन्थ में चौबीस निष्ठाओं में से सात निष्ठायें और इन निष्ठाओं के भक्तों की कथायें वर्णित हैं। इनमें एक एक भागवत की कथा मनुष्य का परं कल्याण साधन करने में समर्थ है। आशा है पाठक इन भागवतों की परं पुनीत, कल्याण कारी गाथाओं को पढ़ कर तथा मनन कर के कल्याण के भागी होंगे।

प्रकाशक

विषय-सूची

१.	भक्ति महारानी	...	...	...	१
२.	भक्ति का स्वरूप	...	...	...	१३
३.	भगवत् रस रूप हैं	...	...	...	२७
४.	भक्ति महारानी का शीश महल	...	...	...	४१
५.	जीव के अस्तित्व में आक्षेप	...	...	...	५७
६.	१ धर्म निष्ठा	...	...	...	७२
	१ राजा हरिश्चन्द्र	...	...	...	८४
	२ राजा बलि	...	...	...	८५
	३ राजा दधीचि	...	...	...	८५
	४ राजा दशरथ	...	...	...	८६
	५ भीष्म पितामह	...	...	...	८६
	६ सुरथ और सुधन्वा	...	...	...	८७
	७ हरिदास	...	...	...	८७
	८ राजा जगदेव	...	...	...	८८
७.	२ भगवत् धर्म प्रचारक निष्ठा				८९
	१ ब्रह्माजी	...	...	...	१०१
	२ शिवजी	...	...	...	१०२
	३ अगस्त जी	...	...	...	१०४
	४ स्वा० रामानुज जी	...	...	...	१०५
	५ स्वामी रामानन्द जी	...	...	...	१०७
	६ कृष्णदास पया हारी	...	...	...	११०
	७ गोविन्द दास	...	...	...	१११

प्रकाशक

(क)

८	विष्णु स्वामी	...	१११
९	वस्त्रभाचार्य जी	...	११२
१०	माध्वाचार्य जी	...	११६
११	चैतन्य महाप्रभु	...	११८
१२	निम्बार्क स्वामी	...	११९
१३	शंकर स्वामी	...	१२२

८. ३ सत्संग निष्ठा

१	बागमुखी	...	१३७
२	तिलोचन देव	...	१३८
३	जस्सू स्वामी	...	१४०
४	सेन भक्त	...	१४१
५	गोपाल जी	...	१४२
६	ग्वाल जी	...	१४३
७	लाखा भक्त	...	१४४
८	मन सुख दास	...	१४५
९	राजा बाई	...	१४७
१०	गोपाली	...	१४८

९. ४ श्रवण निष्ठा

१	नारद जी	...	१६०
२	गरुड़ जी	...	१६१
३	परीक्षित	...	१६३
४	लालदास	...	१६४

(ख)

५ कीर्तन निष्ठा

...	१११	...	१६६
...	११२	...	१६६
...	११६	...	१७६
...	११८	...	१७९
...	११९	...	१८२
...	१२२	...	१९१
...	१२६	...	१९९
...	१३०	...	२०१
...	१३३	...	२०२
...	१३४	...	२०३
...	१४०	...	२०४
...	१४१	...	२०४
...	१४२	...	२०५
...	१४३	...	२०५
...	१४४	...	२०६
...	१४५	...	२०६
...	१४६	...	२०७

६ गुरु निष्ठा

...	१४१	...	२०८
...	१४२	...	११९
...	१४३	...	२२०
...	१४४	...	१२१
...	१४५	...	२२३
...	१४६	...	२२५

(ग)

६.	गुरु निष्ठ	...	...	२२६
७.	घाटम जी	...	...	२२७
८.	नरवाहन	...	...	२३०
९.	गजपति	...	...	२३२
१०.	चतुर्दास	...	...	१३३
११.	राघवदास	...	...	२३४

१२.

७ वेष वर्णन निष्ठा

१.	रसखान	...	...	२४७
२.	भगवान दास	...	...	२४८
३.	चतुर्भुज	...	...	२५०
४.	कथा एक राजा की	...	...	२५२
५.	गिरधर ग्वाल	...	...	२५३
६.	लालाचार्य	...	...	२५४
७.	मधुरदास साह	...	...	२५६
८.	हंस प्रसंग	...	...	२५७

वर्षा अनु में
हैं। अथाद में
होकर फल देते
को प्राप्त हो का
निष्फल जाता
देते हैं, इस से
शक्य युग है।
सार जाता रहा
ग्रह कर रखी है
सावधान हो, नहीं
काल में भी प्रमाद
पुनः पंडित कहला
कथा तीर्थ,
के पदार्थ हैं परन्तु
निकल गया है। जैसे
जाता है, इसी प्रकार
घर पर और

भूमिका



यपाठक ! काल यद्यपि जड़ है फिर भी समर्थ है, यह शास्त्रकारों का निर्णय है और सबका अनुभव भी है। जिस काल में जो होने वाला होता है, टल नहीं सकता ग्रीष्म ऋतु में गर्मी, वर्षा ऋतु में वर्षा और हेमन्त ऋतु में सर्दी अवश्य होती है। अपाढ में बोयेहुए ज्वार बाजरा आदिक अन्न उत्पन्न होकर फल देते हैं। कार्तिक में बोये हुये गेहूं यवादिक अन्न वृद्धि को प्राप्त हो कर फल देते हैं, विपर्यय ऋतु में बोया हुआ बोज निष्फल जाता है। आभ्रादिक वृक्ष अपनोऽऽ ऋतुओं पर ही फल देते हैं, इस से सिद्ध है कि काल समर्थ है। आजकल कलियुग दारुण युग है। कलियुग के प्रभाव से प्रायः सब पदार्थों में से सार जाता रहा है क्योंकि कलियुग ने सब की बुद्धि ही भ्रष्ट कर रखी है, कोई धीर पुरुष भले ही इस घोर काल में सावधान हो, नहीं तो सभी असावधान हैं। जो कोई ऐसे कराल काल में भी प्रमाद रहित अपने धर्म कर्म में सावधान रहे, वह पुरुष पंडित कहलाने योग्य है और वह ही धन्य है !

कथा तीर्थ, तप, ध्यानयोग और ज्ञानयोग ये कल्याण के पदार्थ हैं परन्तु कलियुग के प्रताप से इन सब में से सार निकल गया है। जैसे घुना हुआ नाज का दाना सार रहित हो जाता है, इसी प्रकार कथा आदि निस्सार हो गये हैं। ब्राह्मण घर पर और जने २ को धन के लोभ से कथा सुनाने लगे हैं,

इसलिये कथा का सार चला गया है। तीर्थों में बहुत से छली, पाखंडी, धूर्त मनुष्य वास करने लगे हैं, इसलिये तीर्थों का सार जाता रहा है। कामी, क्रोधो, लोभी, वंचक पुरुष तप करने लगे हैं, इसलिये तप में से सार निकल गया है। अनेक कामना वाले, तृष्णायुक्त, विषयासक्त, विक्षिप्त चित्त वाले ध्यान करते हैं। इसलिये ध्यानयोग में भी सार नहीं रहा क्योंकि ध्यान तो एकाग्रमन से होता है, चंचल मन में ध्यान हो हो कैसे सकता है? नहीं हो सकता। कथादिक चार ज्ञान के साधन हैं, जब कथादिक में ही सार नहीं है, तो ज्ञानयोग में सार आवे ही कहां से! इसलिये ज्ञानयोग भी निस्सार है।

शंका—म्या काल ईश्वर से भी बलवान् है। काल तो ईश्वर का बनाया हुआ है ऐसा कराल काल ईश्वर ने क्यों बनाया है? क्या जीवों को दुःख देने के लिये बनाया है। बनाया भी सही, तो ईश्वर तो सर्वशक्तिमान् है, फिर काल को बदल क्यों नहीं देता? काल को बदलने का कोई उपाय है भी या नहीं, हो तो बताइये।

समाधान—काल ईश्वर से बलवान् नहीं है, ईश्वर काल से बलवत्तम है। काल ईश्वर का बनाया हुआ अवश्य है परन्तु काल को ईश्वर ने हमारे कर्मानुसार बनाया है, इसलिये ईश्वर का कुछ दोष नहीं है, हमारा ही दोष है। हम अपने कर्मों से दुःख पाते हैं। ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, काल को बदल सकता है, उपाय भी ईश्वरने बताया है और उपाय हम कर भी सकते हैं।

कलियुग में उपरोक्त दोष अवश्य हैं परन्तु उसमें एक बड़ा भारी गुण भी है, इस गुण के कारण ही ईश्वर ने कलियुग को बनाया है। सत्ययुगादि में जो सिद्धि ज्ञान और वैराग्य से होती थी, वह ही सिद्धि कलियुग में मात्र केशव भगवान् के कीर्तन से हो सकती है। यह ही कलियुग में अन्य युगों से विशेषता है।

शिष्ट विद्वानों का कथन है कि सत्यादि युगों में ज्ञान वैराग्य मुक्ति के साधन हैं और कलियुग में केवल भक्ति ब्रह्म सायुज्य की प्राप्ति कराने वाली है। श्री भागवत् में कहा है कि चिंतामणि लोक सुख देती है, कल्पवृक्ष स्वर्ग का ही सुख देता है और भक्ति लोक परलोक दोनों सुख देती है और अन्त में विष्णु का परमधाम वैकुण्ठ प्राप्त कराती है। इसलिये भक्तवत्सल भगवान् ने सत्स्वरूपिणी भगवत्प्रिया भक्ति उत्पन्न की। एक दिन भक्ति ने हाथ जोड़ कर भगवान् से कहा कि मुझे क्या आज्ञा है, मैं क्या करूं? तो भगवान् ने आज्ञा दी कि तू मेरे भक्तों का पोषण कर। जब भक्ति ने यह बात अंगीकार कर ली तब भगवत् ने भक्ति महारानी को एक मुक्ति दासी दी और ज्ञान वैराग्य दो पुत्र सेवा करने को दिये। ये तीनों स्व स्वरूप से वैकुण्ठ में भक्ति की सेवा करते हैं और छाया रूप से पृथिवी पर भक्ति की सेवा करते हैं। मुक्ति, ज्ञान और वैराग्य तीनों साथ २ पृथिवी पर आये और सत्ययुग से लेकर द्वापर तक परमानन्द से रहते रहे। कलियुग में पाखंड रूप रोग से पीड़ित होकर मुक्ति नष्ट सी होने लगी तब भक्ति महारानी ने उस को वैकुण्ठ में भेज दिया। अब भी जब भक्ति उसका स्मरण

करती है, तब वह पृथिवी पर आजाती है। कलियुग में ज्ञान वैराग्य का निरादर होने से वे दोनों वृद्ध और दुर्बल हो गये। ऐसा देख कर भक्ति बहुत उदास हुई। तब नारदजी ने उससे प्रतिज्ञा करली कि हे भक्ति! तू दुःखी मत हो, मैं कलियुग में तेरा प्रचार करूंगा, तुझे और तेरे दोनों पुत्रों को तरुण बना दूंगा, ऐसा मैं न करूँ तो मैं भगवान् का भक्त नहीं। पापी से पापी भी तेरे प्रताप से पवित्र हों जायेंगे और जहां तू निवास करेगी, वहां कलियुग भी सत्ययुग होजायगा।

नारद जी भगवान् के मन हैं, भगवान् सब के आत्मा हैं, इसलिये नारद जी सब के ही मन हैं। नारद की प्रतिज्ञा हमारी ही प्रतिज्ञा है, इसलिये हम सब को मिल कर भक्ति का प्रचार करना चाहिये और ज्ञान वैराग्य को भी प्रबल बनाना चाहिये। ऐसा विचार कर 'भक्ति चिंतामणि' नाम का यह ग्रन्थ निर्माण किया है। भक्ति के वश अजन्मा भगवान् भी अवतार धारण करते हैं। उन्हीं चौबीस अवतारों के अनुसार इस पुस्तक में चौबीस निष्ठायें भक्ति की रखी हैं। ये निष्ठायें पूर्व आचार्यों की अंगिकार की हुई हैं, इसलिये वे ही चौबीस निष्ठा इस पुस्तक में हैं। प्रत्येक निष्ठा में उसी निष्ठा के भक्तों की कथायें भी भक्तमाल, इतिहास पुराणादिकों में से लेकर दी हैं। आशा है कि जैसे लोक में चिंतामणि सुख का कारण है, इसी प्रकार यह 'भक्ति चिंतामणि' लोक परलोक दोनों में सुख कारिणी होगी और भगवत् की सायुज्यता प्राप्त करेगी। चिंतामणि के गुण ये हैं:- जिस घर में चिंतामणि होती है, वहां स्वाभाविक उजाला

रहता है, चिंतामणी रखने वाला, दरिद्री और रोगी नहीं होता और राजा प्रजा उसके वश होजाते हैं। 'भक्ति चिंतामणि' के पाठक के हृदय में ज्ञान रूप उजाला होगा, अज्ञान रूप दरिद्र उसके हृदय से दूर रहेगा, रागद्वेषादि उसके चित्त में नहीं आवेंगे और काम क्रोधादि शत्रु उसके वश होजायेंगे और सब के राजा महाराजाधिराज भगवत् भी उसके वश हो जायेंगे। जब भगवद्भक्तों का इस प्रकार हित होगा तो भगवत् अवश्य ही प्रसन्न होंगे, इसमें कहना ही क्या है। कहा भी है:-

भक्तों के जे भक्त हैं, वे हैं भगवद्भक्त ।
 दुनिया की सेवा करें, वे हैं मूढ़ अभक्त ॥
 वे हैं मूढ़ अभक्त घोर रौरव में पड़ते ।
 भक्तों के जे भक्त, विश्व सागर से तरते ॥
 भोला! कर सब कर्म, धर्मजीवन्मुक्तों के ।
 रह दुष्टों से दूर, पैर पड़हरि भक्तों के ॥

चौबीस निष्ठाओं के नाम और उनका वर्णन ग्रन्थ में होगा ही, यहां लिखने का कुछ प्रयोजन नहीं है, अन्त में, यह ही कहना है कि हमारा यह कार्य भगवत् और भगवद्भक्तों की प्रीति का विषय हो। ॐ सर्वशिवं भूयात् ।

॥ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

सकल चराचरानुचर भोला

कलौ तु केवला भक्तिः

भक्ति चिन्तामणि

इत्थुगडरीकमध्यस्थां प्रातः सूर्यसमप्रभाम् ।
ब्रह्मस्वरूपिणीं देवीं भक्तकामदुघां भजे ॥ १ ॥

छप्पय

बन्दीं भगवद्भक्ति भक्त वर्गन प्रिय जननी ।
पालक ज्ञान विराग, राग द्वेषादिक हननी ॥
अखिल विश्व आधार विश्व उत्पादक मारक ।
अक्षय सुख दातार मोक्ष कारक भव हारक ॥
कोट सूर्य समतनु प्रभा, कोट चन्द्रसम शान्त मन ।
कोट मदन लावण्य छवि, बसिये भोला उर सदन ॥ १ ॥

भक्ति महारानी



न की कृपा से सहज ही भगवत् को प्राप्त होकर भक्त सदा के लिये जन्म मरण से मुक्त होकर अखंड आनन्द को भोगता है, उन भक्ति महारानी को तन, मन, वचन से वारम्बार साष्टांग दंडवत् है । शास्त्रकारों का मत है कि भक्ति, भगवत् और भागवत् कथन मात्र ही भिन्न भिन्न हैं, नहीं तो तीनों एक ही हैं । यद्यपि यह बात यथार्थ ही है और जो कोई ऐसा मानता है, वह हमारे गुरुका भी गुरु है, अवश्य तीनों एकही होंगे परन्तु

जहां तीनों एक हैं अथवा हो जाते हैं, वहां एक दो तीन का कथन ही नहीं बनता, कथन तो तीन में ही होता है। जहां तीन हैं, वहां न्याय दृष्टि से देखा जाय तो भगवत् से भक्ति महारानी की विशेषता है, क्या विशेषता है? यदि पूछते हो तो सुनो, भगवत् तो सबके लिये समान हैं इसलिये वे प्राणियों के कर्मानुसार उनको शुभ अथवा अशुभ फल देते हैं, शास्त्र विहित कर्मों का फल सुख और शास्त्र निषिद्ध कर्मों का फल दुःख देते हैं। इसप्रकार भगवत् तो सुख और दुःख दोनों देते हैं और भक्ति महारानी तो केवल सुख ही देती हैं, उनके राज्य में दुःख का नाम तक भी नहीं है, यह ही भक्ति महारानी की विशेषता है, इसलिये वेद और पुराणों में भी अधिक भक्ति की महिमा वर्णन की है, वेद के कर्म, उपासना और ज्ञान तीन कांड हैं। ज्ञान कांड सबसे छोटा है, उपासना कांड उस से अधिक विस्तार वाला है और कर्मकांड सब से अधिक विस्तार वाला है। कर्म कांड और उपासना कांड तो भक्ति स्वरूप ही हैं, ज्ञानकांड में भी भक्ति का ही विशेष वर्णन है, भगवत् स्वरूप का वर्णन तो बहुत थोड़ा है। इससे सिद्ध है कि संपूर्ण वेद भक्ति की महिमा वर्णन कर रहे हैं। इसी प्रकार पुराणों में भी भक्ति की महिमा गाई है। पद्म पुराण में लिखा है 'जैसे प्रज्वलित अग्नि सूखी गोली सब प्रकार की लकड़ी को भस्म कर देता है इसी प्रकार भगवद्भक्ति इस जन्म और जन्मांतर के पापों को भस्म कर देती है। एक स्थल पर लिखा है 'देवता भगवत् से प्रार्थना करते हैं कि हमने जो कुछ जप, तप किया है, उसके फल से हमारा जन्म

भारत-वर्ष में हो, जहां हम
में कहा है 'भगवत् धनार्थि
से भगवत् को प्रार्थना होती
करते हैं, उनको संपूर्ण अम
कि भगवत् केवल उन से
वापस दुःख में कहा है कि
पण में अन्य भक्ति है
है। महाभारत में कहा है
धारा करते से जिसके
भगवत् में भक्ति होती है
तो भक्तवत्सल में कर्म
मनुष्य होना दुर्घट है, म
करने वाला दुर्लभ है और
होकर भी भगवद्भक्त हो
एक स्थान पर यह भी
निवास होता है उसको
प्रेत, पिशाच, राक्षस देव
विघ्न नहीं कर सकते। न
धर्म, काम, मोक्ष, इन चा
भगवत् भक्ति से ये चारों
में एक स्थल पर क
खुला हुआ है
भगवत् भक्ति

भरत खण्ड में हो, जहां हम आपकी भक्ति करें।' नारद पुराण में कहा है 'भगवत् धनादिक से प्राप्त नहीं होते, केवल भक्ति से भगवत् की प्राप्ति होती है, जो भक्ति पूर्वक भगवत् का पूजन करते हैं, उनको संपूर्ण अभीष्ट प्राप्त होता है, विशेषता यह है कि भगवत् केवल जल से पूजने से ही सर्व दुःख दूर करते हैं। वामन पुराण में कहा है 'जिनकी शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी नारायण में अनन्य भक्ति है, वे अवश्य नारायण को प्राप्त होते हैं। महाभारत में कहा है 'हजारों जन्मों तक जप, तप, ध्यान करने से जिसके पाप दूर हो जाते हैं, उसी की भगवत् में भक्ति होती है। वैशाख माहात्म्य में वर्णन है 'प्रथम तो भरतखंड में जन्म होना ही दुर्घट है, जन्म होने पर भी मनुष्य होना दुर्घट है, मनुष्य होकर भी स्वधर्म का अनुष्ठान करने वाला दुर्लभ है और स्वधर्म का अनुष्ठान करने वाला होकर भी भगवद्भक्त होना बहुत ही दुर्लभ है। पद्मपुराण में एक स्थान पर यह भी कहा है 'जिसके हृदय में प्रेम भक्ति का निवास होता है उसको यमराज स्वप्न में भी नहीं देखते और प्रेत, पिशाच, राक्षस देवता आदि भी भगवद्भक्त के कार्य में विघ्न नहीं कर सकते। नारद पुराण में यह भी लिखा है 'अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, इन चारों के लिये मनुष्य प्रयत्न करते हैं, भगवत् भक्ति से ये चारों अनायास प्राप्त हो जाते हैं। पद्मपुराण में एक स्थल पर कहा है 'भगवत् भक्तों के लिये मुक्ति का द्वार खुला हुआ है इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। क्योंकि भगवत् भक्ति से बढ़ कर अन्य कोई साधन नहीं है। ब्रह्मांड

पुराण में कहा है 'जो भगवत् के भक्त नहीं हैं, उनको करोड़ों कल्प तक भी मोक्ष अथवा ज्ञान प्राप्त नहीं होगा।' भागवत् में लिखा है 'नारायण की भक्ति के लिये ब्राह्मण कुल में जन्म होने, अथवा देव शरीर होने की आवश्यकता नहीं है, न ऋषीश्वर होने की, न व्रत, दान, अथवा यज्ञ की अपेक्षा है, केवल भक्ति से नारायण प्रसन्न होते हैं, भक्ति के सिवाय अन्य सब स्वांग हैं।' भागवत् में उद्धव से श्रीकृष्ण भगवान् का वचन है 'योग, सांख्य वेद का अध्ययन अथवा वैराग्य मुझे वश में नहीं कर सकते, केवल भक्ति ही मुझे, वश में कर सकती है, स्कंद पुराण में कहा है 'भगवद्भक्ति से बढ़ कर अन्य कोई पंथ नहीं है। भगवत् का वाक्य है भक्ति के सहारे गोपी, गौ, वृक्ष पशु, सर्प आदिक पवित्र होकर मुझे प्राप्त हुये हैं। इसी प्रकार गीता में भगवान् ने कहा है 'वेद के पढ़ने, तप करने, दान करने अथवा यज्ञ करने से मुझे कोई नहीं देख सकता केवल अनन्य भक्ति से मैं जाना जाता हूँ, देखने में आता हूँ और मुझ में प्रवेश हो जाता है।' इस प्रकार अन्यत्र भी अनेक श्लोकों से भक्तिको महिमा वर्णन की है, विस्तार भय से यहां लिखे नहीं हैं। जिस किसी से जब कभी बरदान मांगने को कहा गया है तो उसने भक्तिको बरदान ही मांगा है। इससे भक्ति की महिमा प्रसिद्ध है। जो २ संत महात्मा जगत् में हुये हैं, वे सब भक्ति की कृपा से हुये हैं। भक्ति बिना भगवत् की प्राप्ति नहीं होती। यद्यपि भगवत् की प्राप्ति का साधन ज्ञान भी है परन्तु भक्ति बिना ज्ञानकी सिद्धि नहीं होता, ज्ञानकी प्राप्ति भक्ति के आधीन है इसलिये भी भक्ति की विशेषता है।

जिस समय भक्ति महारानी की कृपा होती है और उनकी एक झलक भी भाग्यवान् भक्त को दीख जाती है तो उसी समय उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। पाप ही भगवत् प्राप्ति में आड़ हैं, पाप नष्ट होते ही भगवत् का साक्षात्कार होता है। भगवत् का साक्षात्कार होते ही भागवत् कृत् कृत्य हो जाता है और फिर उसका कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता ! भक्ति महारानी जिसके शिर पर अपना हाथ रख देती हैं, वह वेद शास्त्र सबका ज्ञाता हो जाता है, उसके लिये सुनना सुनाना शेष नहीं रहता, सब उसका सुना हुआ हो जाता है। उसकी सर्व शंकाओं का समाधान हो जाता है, फिर उसके चित्त में किसी प्रकार की शंका नहीं उठती। जिस भाग्यशाली को भक्ति महारानी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होजाता है, उसके लिये फिर कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता, सब प्रकार का ऐश्वर्य उसके लिये सुलभ हो जाता है। भक्ति महारानी की कृपा से भक्त को अखंडानन्द का अनुभव होता है, फिर उसको स्वप्न में भी दुःख नहीं होता। भक्ति महारानी के अनुग्रह से भक्त सदा के लिये तृप्त हो जाता है, जैसा वह तृप्त होता है उसको परम भक्त ही जान सकता है, कथन कोई नहीं कर सकता। भगवत् संपूर्ण सुखों की अवधि रूप हैं, संसार भर में जितना सुख है, वह भगवत् के सुख के कण मात्र भी नहीं है। भगवत् भक्ति महारानी के आधीन हैं। जिसको भगवत् की प्राप्ति हो गई है, उसके सुख का कौन वर्णन कर सकता है, कोई नहीं ! शेष शारद ब्रह्मादि देवता भी उसका सुख वर्णन नहीं कर सकते तो साधारण मनुष्य की तो गणना

ही क्या है ? जब लौकिक सुख का ही कोई वर्णन नहीं कर सकता तब अलौकिक सुख का वर्णन तो हो ही कहाँ से ?

संतराम नाम के एक भक्त ने दीर्घकाल तक निरंतर आदर सत्कार सहित भक्ति महारानी की आराधना की, अन्त में महारानी ने उसे दर्शन दिया, वर माँगने को कहा । संतराम ने भगवत् प्राप्ति का वर माँगा और भक्ति महारानी तथास्तु कह कर चली गई । कोई बहुत दिनों का असाध्य रोगी अचानक आरोग्य हो जाय ऐसे ही संतराम भक्ति महारानी की कृपा से स्वस्थ होकर आश्चर्य करता हुआ, इस प्रकार अपना अनुभव कहने लगा:-

संतराम:-ओ हो ! क्या से क्या हो गया ! वृक्षों के समान मेरी बुद्धि जड़ हो गई थी ! पशु पक्षियों के समान मैं भ्रम से मैं पड़ा हुआ था, खाना पीना ही जानता था, इन्द्रियों के विषयों में ही आनन्द मानता था, कभी हंसता था, कभी रोता था, विशेष करके रोया करता था, अज्ञान में पड़ा हुआ दुःख उठा रहा था, किंचित् भी कभी शांति नहीं मिलती थी, कभी मूढ़ हो जाता था, कभी क्षिप्त, कभी विक्षिप्त, चित्त कभी एकाग्र अथवा निरुद्ध नहीं होता था, फिर शांति कहाँ से मिलती ? भगवत् की खोज में चारों धाम घूम आया, कहीं पता न लगा, बहुत दिनों तक उपवास करता हुआ भूखा मरता रहा, शरीर को सुखा दिया ! आज भक्ति महारानी की कृपा से मुझे मालूम हुआ है कि भगवत् तो मेरे बहुत ही पास हैं, समीप से भी समीप हैं, मेरे मन में ही विराजमान हैं, मुझे केवल मन को ही

ठीक करना चाहिये था, मन शोधने के बदले मैंने तो शरीर को ही फूँक डाला। वही कहावत हुई कि एक व्याघ्र के पकड़ने के लिये सारा जंगल जला दिया आज भक्ति महारानी की कृपा से मन वश में आगया। कैसे वश में आगया? यदि कोई पूछे तो उसका उत्तर यह है कि मन बड़ा चतुर है, अपनी वांछित वस्तु में ही एकाग्र होता है, जब तक अपनी रुचि अनुकूल वस्तु नहीं मिलती, तब तक स्थिर नहीं होता, आज मन को उसकी इच्छा-अनुकूल वस्तु मिल गई है इसलिये स्थिर हो गया। परमानन्द में डूबा हुआ है, मुझे इस अपूर्व आनन्द की प्राप्ति की सपना में भी आशा नहीं थी! आज भक्ति महारानी के अनुग्रह से मुझे अपूर्व आनन्द का अनुभव हो रहा है! बगल में छोरा, शहर में दुंदोरा! मैं भगवत् को बाहर ढूँढ़ रहा था भगवत् बुद्धि गुहा में छुपे हुये बैठे थे, भेदी से ही वस्तु का पता मिलता है, दूसरे से नहीं मिलता। भक्ति महारानी सदा भगवत् के साथ रहती हैं, उनसे भगवत् कैसे छुप सके हैं? नहीं छुप सके। उन्हीं भक्ति महारानी ने आज मुझे चित्त चोर भगवान् का दर्शन करा दिया हैं! 'क्या भगवत् तुम्हारी बुद्धि में ही हैं? अन्य कहीं नहीं हैं? नहीं नहीं ऐसा नहीं! अब तो भगवान् सर्वत्र दृष्टि आ रहे हैं, चराचर सब में दिखाई दे रहे हैं! डाल में, पात में, फल में, फूल में, मूल में, सब में भगवत् विराजमान हैं, सूर्य में, आकाश में वायु में अंतरिक्ष में, स्थूल में, सूक्ष्म में सब में, भगवत् रम रहे हैं! पशु में, पक्षी में मनुष्य में, देव में, भगवान् दिखाई देते हैं। मुझ में, तुझ में, इस में, उसमें संपूर्ण विश्व में भगवत्

परिपूर्ण हैं ! 'क्या विश्व में ही हैं, विश्व के बाहर नहीं हैं ? नहीं, विश्व राई के समान है, भगवत् सुमेरु के समान हैं ! यह उपमा भी यथार्थ नहीं है, भला ! सत्य और कल्पित का उपमान उपमेय भाव कैसे हो सकता है ? नहीं हो सकता ! स्वप्न की जाग्रत के साथ उपमा बनती ही नहीं है । भगवत् के निरुपाधिक और सोपाधिक दो स्वरूप वेद वेत्ताओं ने वर्णन किये हैं, यह उनका कथन शिष्यों के समझाने के लिये है, नहीं तो निरुपाधिक के सामने सोपाधिक की कुछ भी सत्यता नहीं है, तभी तो महात्माओं के मुख से सुनने में आता है कि निष्प्रपञ्च के सामने प्रपञ्च की किञ्चित् भी सत्ता नहीं है गीता में स्वयं भगवान् का वचन है कि ईश्वर रूप इस आत्मा को शस्त्र नहीं काटते, न इसको अग्नि जलाता है, न इसको जल गलाता है, न इसको वायु सुखता है क्योंकि यह अव्यक्त है, अचिंत्य है और अवि-कारी है । भक्ति महारानी की कृपा से आज मुझे आत्मरूप से भगवत् के दर्शन हो रहे हैं ! अब मैं भक्ति महारानी को नमस्कार करूँ अथवा भगवत् को नमस्कार करूँ ? भगवत् और भक्ति दोनों एक ही हैं, मेरा कहीं पता ही नहीं मिलता, तब एक भगवत् ही भगवत् हैं, दूसरा कोई है ही नहीं, तब नमस्कार कैसे बने ? नहीं बनता ! इसीलिये भगवान् दत्तात्रय ने कहा है:-

येनेदं पूरितं सर्वमात्मनैवात्मनात्मनि ।

निराकारं कथं वन्दे ह्यभिन्नं शिवमव्ययम् ॥

अर्थ:-जिस आत्मा करके अपने में यह दृश्यमान संपूर्ण जगत् पूर्ण हो रहा है यानी जिस चेतन में यह सर्व प्राणच शुक्ति

में रजत के समान कल्पित है, वस्तुतः नहीं है, उस निराकार, अव्यय, शिव रूप की हम कैसे वन्दना करें? यानी वन्दना करना बनता ही नहीं है क्योंकि अपने से भिन्न की वन्दना होती है, अभिन्न की नहीं होती, आत्मा अभिन्न है इसलिये वन्दना करना नहीं बनता। श्रुति में भी कहा है 'अयमात्मा ब्रह्म' फिर भी ऐसे आत्म रूप भगवत् की प्राप्ति कराने वाली भक्ति महारानी को वारंवार नमस्कार है।

इतना कह कर संतराम नीचे का भजन गाता हुआ, भगवत् स्वरूप में तल्लीन हो गया।

जब से देखे कृष्ण कन्हाई, आंखिन छाई हरियायी।

कुछ का कुछ है देत दिखाई, आंखिन छाई हरियायी ॥ १ ॥

बूंद बूंद में सागर देखूँ, अणु अणु मांही सूर्य लेखूँ।

लील गई पर्वत कूं राई, आंखिन छाई हरियायी ॥ २ ॥

जीव जीव कूं ईश बताऊँ, बंधे हुये को मुक्त कहूँ।

अन कहनी सत्गुरु कहलाई, आंखिन छाई हरियायी ॥ ३ ॥

ऊँच नीच में भेद न जानूँ, सच्चित् आनंद सर्वमयी।

नाम रूप जग गया बिलाई, आंखिन छाई हरियायी ॥ ४ ॥

मेरा तेरा मैं तू भूला, आप आप में गया समा।

भोला ऐसी मत बौराई, आंखिन छाई हरियायी ॥ ५ ॥

पाठक! भक्ति महारानी गंगाजी के समान नीच ऊँच

सबको तारने वाली है, वर्णाश्रम जात पात का भक्ति में नियम

नहीं है, कोई वर्ण हो, कोई आश्रम हो, कोई जाति हो, भक्ति के

सबही अधिकारी हैं। भक्त माल में एक कथा इस प्रकार है:-

महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ आरंभ करते समय श्री भगवान् से कहा हे 'भगवन् ! हमारा यज्ञ सफल हुआ या नहीं, इस बात का निश्चय हम को किस प्रकार होगा'? भगवान् ने कहा 'जब हमारा शंख आप से आप बजने लगे तब समझ लेना कि हमारा यज्ञ पूर्ण और सिद्ध हो गया'। यह सुन कर राजा युधिष्ठिर ने भगवान् की आज्ञानुसार शंख को यज्ञ स्थान में स्थापित कर दिया। यज्ञ आरंभ किया गया, पृथिवी पर जितने ब्राह्मण, ऋषीश्वर, ज्ञानी योगी, राजा और रंक थे, सबको यज्ञ में आने के लिये निमंत्रण भेजा गया यज्ञ समाप्त हुआ, जितने ब्राह्मणादि यज्ञ में आये थे, उन सबको राजा ने दान तथा मान से संतुष्ट किया, सबको यथायोग्य भोजन कराया तो भी शंख न बजा। ऐसा देख कर राजा युधिष्ठिर ने संदेह युक्त होकर भगवान् श्री कृष्ण से शंख न बजने का कारण पूछा। तब भगवान् ने कहा हे राजन् ! ऐसा मालूम होता है कि किसी भक्त ने अपनी भूठन से इस यज्ञ को सफल नहीं किया इसी कारण से शंख नहीं बजा। राजा ने विनय की 'महाराज ! सब देशों के ब्राह्मण और ऋषीश्वर आये हैं, क्या उनमें से कोई भी आपका भक्त नहीं है' ? भगवान् बोले "भाई ! ब्राह्मण और ऋषीश्वरों से पूछना चाहिये"। राजा ने सब से पूछा तो किसी ने अपने को ब्रह्मवादी किसी ने योगेश्वर, किसी ने वेदपाठी, किसी ने अग्नि-होत्री बताया, परंतु किसी ने भी अपने को भगवत् उपासक नहीं बताया तब राजा, द्रौपदी, अर्जुन आदि पांडवों ने भगवान् से अपना भक्त बताने के लिये प्रार्थना की। भगवान् बोले 'हमारा

भक्त बाल्मीकी
बाल्मीकी के घर
चलने के लिये उन
उनकी प्रार्थना स
किया तो भगवत्
राजा युधिष्ठिर
सन्मान से उनके
से पदसंयोजन
बाल्मीकी जी के
शंख थोड़ा बज
कर कहा 'अरे
तो पूर्ण ध्वनि से
द्रौपदी से पूछिये
मेरा अपराध क्ष
है कि मैंने अनेक
अलग २ इनके स
मिला कर भोग
और मैंने मन में
नहीं जानते इस
'अब, आगे ऐसा
को चुरा न कहना
करना' ! परचान
काया गया

भक्त वाल्मीकी श्वपच है" । यह सुन कर अर्जुन भी वाल्मीकी के घर गये और प्रणाम करके अपने घर पर चलने के लिये उन से विनय करने लगे । वाल्मीकी ने प्रथम उनकी प्रार्थना स्वीकार न की परंतु जब उन्होंने बहुत आग्रह किया तो भगवत् की इच्छा समझ कर वे राजा के घर पर आये राजा युधिष्ठिर और भक्त वत्सल भगवान् ने बड़े आदर और सन्मान से उनको योग्य स्थान पर बैठाया, द्रौपदी ने अपने हाथ से पट्टरस व्यंजन तैयार किये और सुवर्ण के थाल में लाकर वाल्मीकी जी के आगे रखे । भगवत् भक्त ने भोग लगाया, शंख थोड़ा बजकर चुप हो गया । भगवान् ने शंख में छड़ी मार कर कहा 'अरे ! चुप कैसे हो गया ? थोड़ा ही क्यों बजा ? अब तो पूर्ण ध्वनि से बजना चाहिये' । शंख ने विनय की 'महाराज ! द्रौपदी से पूछिये' ! द्रौपदी हाथ जोड़ कर कहने लगी 'महाराज मेरा अपराध क्षमा कीजिये, मैं अवश्य अपराधिनी हूं, बात यह है कि मैंने अनेक प्रकार के भोजन तैयार किये थे, और सब अलग २ इनके सामने लाकर रखे थे, आपके भक्त ने सबको मिला कर भोग लगाया, यह देख कर मुझे बुरा मालूम हुआ और मैंने मन में कहा कि यह नाना प्रकार के भोजनों का स्वाद नहीं जानते इसलिये सबको मिला कर खाते हैं' ! भगवान् बोले 'अब, आगे ऐसा कभी मत करना, कभी भूल कर भी भगवद्भक्तों को बुरा न कहना, और उनके आचरणों में दोष दृष्टि मत करना' ! पश्चात् जब शुद्ध और विश्वास युक्त चित्त से भोजन कराया गया तब शंख उच्च ध्वनि से गूँज के साथ बजा ! राजा

शुद्धिष्ठिर अपनायज्ञ पूर्ण हुआ समझ कर बहुत प्रसन्न हुये ! भगवद्भक्ति और भक्तों का प्रताप नगर भर में फैल कर ब्रह्मांड भर में फैल गया । सच कहा है:-

हरिको भजे सो हरि का होई । जात पांत पूछे नहिं कोई ॥

महाभारत में भगवान् का वचन है 'चारों वेदोंका जानने वाला भी हो और मेरा भक्त न हो तो उस से चांडाल और पतित जो मेरे भक्त हैं, वे ही मेरे प्यारे हैं, उसका मेरे समान ही पूजन करना चाहिये ।'

भक्ति का ऐसा माहात्म्य सुन कर जो भक्ति परायण न हो, उसके समान कौन मूर्ख होगा ? कोई नहीं ? भगवद्भक्ति लोक परलोक दोनों में सुख देने वाली और अंत में परम पद प्राप्त कराने वाली है, ऐसी भक्ति महारानी का अनुष्ठान करके सबको अपना श्रेय-कल्याण कर्तव्य है ।

प्रश्न:-भक्ति का माहात्म्य आपने जो वर्णन किया और अनेक प्रमाणों से सिद्ध किया, यह हमको मान्य है, परंतु भक्ति का स्वरूप जाने बिना भक्ति में प्रवृत्ति नहीं हो सकती, इसलिये भक्ति का स्वरूप बताना चाहिये, भक्ति क्या और कैसी है ? मासिक पत्रिका का नाम भी तो भक्ति ही है, क्या यह ही आपकी भक्ति महारानी है ।

उत्तर:-भाई ! भक्ति महारानी का माहात्म्य कहा है तो उन का स्वरूप क्यों नहीं बतावेंगे, ? अवश्य बतावेंगे, भक्ति का स्वरूप बतावेंगे, विभाग बतावेंगे, भक्तों की अनेक कथायें सुनावेंगे, भक्ति के साधन बतावेंगे । धीरे २ बतावेंगे, जल्दी

भक्ति का नाम
करना ठीक नहीं है, मासिक पत्रिका
प्रतिपादन करती है इसलिये उ
दोनों का प्रतिपादन और प्रतिप
के पदों में प्रमाण नहीं कीजिए
भगवत् का प्राप्ति अवश्य होने

भक्ति

ज्ञानार्थ चिन्मय
प्रपद्ये प्रपद्ये देव

चतुर्भुज स्वामी

जो कभी मृत न

राम की प्रीति

चोरी हो गला

भोज ! दीप पतंग

तब मन प्राप्ति हुई



साराभ-

ऐसा सु

को पाठ

फिर क

क

है, वेद ब्रह्म

करना ठीक नहीं है, मासिक पत्रिका 'भक्ति' भक्ति महारानी का प्रतिपादन करती है इसलिये उस का नाम भी भक्ति है। इन दोनों का प्रतिपाद्य और प्रतिपादक भाव संबंध है। यदि भक्ति के पढ़ने में प्रमाद नहीं कीजियेगा तो धीरे २ भगवद्भक्ति और भगवत् की प्राप्ति अवश्य होगी।

भक्ति का स्वरूप ।

ज्ञानानां चिन्मयातीतां शून्यनां शून्य सत्तिष्ठाम् ।
प्रपद्ये शरणं देवी भक्तानां भयनाशिनीम् ॥

चातक स्वाती विन्दु, भृंग ज्यों पुष्प कमल में ।

ज्यों चकोर मुख चन्द मीन ज्यों निर्मल जलमें ॥

कामी कामिनि सक्त, लुब्ध ज्यों लोभी धनमें ।

त्योंही हो तल्लीन, दीन वत्सल चरणन में ॥

भोला ! दीप पतंग से पाठ भक्ति का लीजिये ।

तन मन प्राणन इन्द्रियन वारण प्रभुपर कीजिये ॥



सारामः—गुरु जी ! आपके श्रीमुख से कई बार ऐसा सुनने में आया है कि जो भक्ति महारानी की पाठशाला में पठन कर लेता है, उसको फिर कुछ पढ़ना पढ़ाना शेष नहीं रहता ! उसको चारों वेद छत्रों शास्त्रोंका ज्ञान हो जाता है, वेद वेदान्त का हस्तामलक समान उसको प्रत्यक्ष हो जाता

१४

है। जो भक्ति महारानी के अखाड़े में कुश्ती लड़ लेता है, पूर्ण मल्ल होजाता है, कोई उसे जीत नहीं सकता, माया के सब दाव पेच उस के याद हो जाते हैं काम, क्रोध, लोभादि महान् शत्रु उस से हार मान जाते हैं ! जिन्होंने दुनियां भर को तंग कर रक्खा है, उस के आज्ञाकारी चाकर बन जाते हैं ! जो भक्ति महारानी की गोद में बैठ कर माया नटी के साथ चौपड़ खेलता है उसका सर्वदा भगवत् से योग रहता है, स्वप्न में भी परमात्मा से उसका वियोग नहीं होता। वियोग न होने से उसको तीन काल में भी द्वैत नहीं फुरता ! तीन गुणों के पाश में वह कभी नहीं फंसता ! उस माई के लाल की पुर्यष्टका रूप आठों गोठें लाल हो जाती हैं। चौरासी का चक्र समाप्त होजाता है, उसकी चौपड़ के चारों कौने, जो जरायुज, अंडज स्वेदज और उद्भिज चार खानि रूप हैं, फट जाते हैं ! चौबीस, अड़तालीस, बहत्तर अथवा छयानवें प्रकृति विकृति शास्त्रकारों ने मानी हैं, ये ही संसार रूप चौपड़ के छयानवें खाने हैं, इन सब से भक्ति महारानी का भक्त पार हो जाता है और जो शून्यवादियों का शून्य है जो विज्ञानवादियों का विज्ञान मात्र है, जो सांख्यवादियों का पुरुष है, जो योगियों का ईश्वर है, शैवों का शिव है, कालवादियों का काल है, वैष्णवों का विष्णु है, गणपतियों का गणपति है, शाक्तों की शक्ति है और जो ब्रह्मवादियों का ब्रह्म, वाणी का अगोचर, शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्व शास्त्रों का सिद्धांत है, जो सर्व के हृदय में विराजमान है उसी परम तत्व को वह भक्त प्राप्त होजाता है। जो भक्ति महारानी के लौन्दर्य को देख

लेता है, वह सूर्य के समान तेज वाला, चन्द्र समान शीतल, कामदेव के समान लावण्य वाला और मारुति समान बल वाला हो जाता है, माया का दीदै-नयन मटकना उसके लिये बंद हो जाता है। भक्ति महारानी जिसको अपना गारुडी मंत्र बता देती है, उस पर फिर किसी दैत्य, दानव का जादू, अस्त्र, शस्त्र, नहीं चलता ! सारांश यह है कि वह सर्वदा के लिये शोक मोह रहित निर्भय, अजर और अमर हो जाता है। ऐसा भक्ति महारानी का माहात्म्य है। ऐसा माहात्म्य सुन कर कौन मूर्ख होगा, जो भक्ति महारानी के दर्शन और प्राप्ति न चाहेगा ! हे गुरो ! हे प्रभो ! मैं उन्हीं महारानी का स्वरूप जानना चाहता हूँ, कृपा करके मुझे उन का स्वरूप बताइये और उनकी प्राप्ति का उपाय भी बताइये, आप दया के समुद्र हैं, संसार समुद्र से पार करने वाले मल्लाह हैं, कृपा करके मुझे पार कीजिये !

मंसाराम के वचन सुन कर मस्तराम एकमुहूर्त तक पत्थर की मूर्ति के समान अचेत से हो गये हैं, न हिलते हैं, न झुलते हैं, आँखे खुली की खुली रह गई हैं, पलक झपकते नहीं हैं, ऐसा अनुमान होता है:-

शंकर सहज स्वरूप संभारा ।

लगी समाधि अखंड अपारा ॥

मस्तराम:-भाई मंसाराम ! आज तुम्हारा कोई महान् पुण्य उदय हुवा दीखता है ! भक्ति महारानी का तुम पर पूर्ण अनुग्रह है ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य और देवी पांचों देव तुम्हारे अनुकूल हैं। आज तुम सीधे मार्ग पर आगये हो ! अभी

तक तो अनेक उपद्रव मचाते रहते थे ! खेल तमाशे ही सुहाते थे ! दिन रात चौपड़ ही खेलते रहते थे, तीन काने, चार काने पंजड़ी छकड़ी ही फँकते रहते थे ! आज तुम को चौपड़ फाड़ने की सूजी है, जब देखो तब ग्यारह दो ही पड़ा करते थे आज भक्ति महारानी की कृपा से तुम्हारे पौ बारह पच्चीस पड़ गये हैं ! अब तुम पंच भूतों के पंजे में नहीं फंसोगे और न पड़ूमि में पड़ने से तुम को छक्के छोड़ने पड़ेंगे । आज तुम्हारी चौपड़ का पर फट जायगा और तुम कभी चौपट नहीं खेलोगे । द्विधा में नहीं पड़ोगे, तीनों अवस्थाओं से पार होजाओगे, त्वचा आदि सात धातुओं के साथ गलाये नहीं जाओगे, अविद्या आदि आठ पुण्यों से बाहर हो जाओगे ! नवग्रह उतर जायेंगे, दशों दिशाओं में पूर्ण हो जाओगे, ग्यारह रुद्र अब तुम को नहीं रुलायेंगे, न बारह आदित्य तपावेंगे चौदह भवन के अधिपति हो जाओगे । पंद्रह कलायें अपने कारण रूप परमात्मा में मिल जायंगी, सोलहवीं कला ब्रह्माण्ड में कीर्ति फैलावेगी, सत्तरह तत्व का सूक्ष्म शरीर बिखर जायगा, गीता के अठारह अध्याय और महाभारत के अठारह पर्व तथा अठारह पुराण उपपुराण पूर्ण हो जाएंगे मंसाराम तुम धन्य हो ! अच्छा ! सुनो भक्ति का स्वरूप ।

भक्ति के मुख्य आचार्य शांडिल्य ऋषि हैं, सापरानुरक्ति-रीश्वरे' इस सूत्रसे भक्ति का स्वरूप कहा है, इस का अर्थ यह है कि ईश्वरमें परम अनुराग होना भक्ति है । अनुराग प्रेम या स्नेह

को कहते हैं । संसार के सर्व पदार्थों में से ईश्वर में प्रेम करने का नाम भक्ति है ।

मंसाराम-महाराज ! गीता में

अनुराग और ध्यान को भक्ति कहा है, पू

भक्ति अर्पण किया है और तत्संगी

प्राप्त को मुक्त में लगाना, मेरा ही

मेरा ही ध्यान करना, इसका नाम

अनुराग और विष्णु स्वामी आदि

लिखते हैं कि दिन रात

नमान लक्षण अथवाकार धृति

पर भगवान् का वचन है कि जो

राज्य में होते हैं, मैं उनको उ

स्थान पर अवधान में मन की

लोक पुराण में ज्ञान, वाणी तथा

भक्ति बताया है । तब शास्त्र में

है, 'यं अक्षरं भवत्वं संसारं'

'यं अक्षरं कल्याण करने वाला

तब शास्त्र का दावा है, इस ता

पा है । सन्तकुमार सांख्य

शुद्धता, उसी का नाम भक्ति

भगवान् को स्वामी

कहते हैं । ना

के हैं, अ

को कहते हैं। संसार के सर्व पदार्थों में से प्रेम हटाकर केवल ईश्वर में प्रेम करने का नाम भक्ति है।

मंसाराम:- महाराज ! गीता में एक स्थल पर अनन्य भजन और ध्यान को भक्ति कहा है, दूसरे स्थान पर सेवा करने को भक्ति वर्णन किया है और तीसरी जगह लिखा है कि मन और प्राण को मुझ में लगाना, मेरा ही परस्पर समझना समझाना, मेरा ही कथन करना, इसका नाम भक्ति है। रामानुज, माध्व, निम्बार्क और विष्णु स्वामी आदि आचार्यों ने यह निर्णय और निश्चय किया है कि दिन रात निरन्तर गंगा के प्रवाह के समान अनुक्षण ध्येयाकार वृत्ति का नाम भक्ति है। एक स्थान पर भगवान् का वचन है कि जो जिस प्रकार के भाव से मेरी शरण में आते हैं, मैं उनको उसी प्रकार प्राप्त होता हूँ। एक स्थान पर भगवान् ने मन की प्रसन्नता को ही भक्ति कहा है। लिङ्ग पुराण में मन, वाणी तथा कर्म से भगवत् को सेवा को भक्ति बताया है। तंत्र शास्त्र में लिखा है कि भक्ति के तीन अक्षर हैं, 'भ' अक्षर भव रूप संसार के दुःखों की निवृत्ति करता है, 'क' अक्षर कल्याण करने वाला है और तीसरा अक्षर 'तौ' तीव्र ज्ञान का दाता है, इन तीनों कारणों से भक्ति नाम रखवा गया है। सन्तकुमार संहिता में लिखा है कि जो सर्व दुःखों को दूर करदे, उसी का नाम भक्ति है ! एक स्थल पर कहा है कि भगवत् को स्वामी और अपने को भृत्य मानना, इसको भक्ति कहते हैं। भगवत् का वचन है कि भक्तों के भाव अनेक प्रकार के हैं, उनके भावों के अनुसार भक्ति अनेक प्रकार की है,

इसलिये भाव ही को भक्ति जानना चाहिये। विष्णु पुराण में कहा है कि शास्त्राज्ञानुसार कर्म करना, निषिद्ध कर्मों का त्यागन और भगवत् आज्ञा के बंधन में रहना, इसी का नाम भक्ति है क्योंकि ऐसा करने से ही भगवत् की कृपा होगी। पतञ्जलि भगवान् ने आठ सूत्रों से आठ प्रकार की भक्ति कही है, इस प्रकार भक्ति के स्वरूप में विरोध पाया जाता है, तब सिद्धान्त क्या है ?

मस्तराम:- भाई ! सिद्धान्त तो वही अनुराग है यानी भगवत् में दृढ स्नेह होने को भक्ति कहते हैं। उपरोक्त विरोध कथन मात्र ही है। विचार करके देखा जाय तो उन सबका परिणाम भगवत् की प्रीति ही है। शास्त्रकारों ने अधिकारियों को अनेक प्रकार से भगवत् में मन लगाने यानी प्रीति करने को कहा है, इस लिये विरोध दिखाई देता है, प्रीति करने के मार्ग भिन्न २ हैं, प्रीति सब में समान है इसलिये कुछ विरोध नहीं है। अनुराग ही भक्ति है। विशेष निर्णय अनुराग का यह है कि उपासक की संपूर्ण अन्तर्बाह्य वृत्तियां मित्र, शत्रु, सुख, दुःख भाव से रहित होकर वेद, स्मृति, पुराण तथा नारद पञ्चरात्र इत्यादि शास्त्रों की आज्ञानुसार भगवत् के श्रवण, कीर्तन पूजनादिक में निष्काम होकर लगी रहें, अथवा शास्त्र तथा नरकादिक के भय को छोड़ कर स्वर्गादिक के संपूर्ण सुख भोग से उदासीन होकर और संपूर्ण ब्रह्माण्डों की शोभा तथा सुन्दरता का सार जो भगवत् का रूप है उसमें स्वाभाविक आप से आप अखंड निश्चल अनुक्षण वृत्तियां लगी रहें, इसका नाम भक्ति है। यह

भक्ति विहित और
की रीति और
है। विहित भक्ति
गोपिका, ध्रुव
शिशुपालादिक
और चौथा स्नेह
चारों में से शत्रु
त्याग है। दूसरा
भाविक आप
भगवत् में प्रीति
भिन्न २ कहते
भेद बताते हैं,
हैं, और दूसरा
एक अंग है।
को तरते हैं।
हैं। तीसरा व
इच्छा हो वह
मध्यम और प्र
यह स्वरूप है
सबको भगवत्
एक ही है। इस
ऐसा मानना
कि भगवत्

भक्ति विहित और अविहित दो प्रकारकी है। जो भक्ति शास्त्र की रीति और आज्ञानुसार की जाती है वह विहित कहलाती है। विहित भक्ति चार प्रकारकी है, एक काम यानी चाहना से; जैसे गोपिका, ध्रुव आदि की, दूसरी ड्रेप यानी शत्रुता से; जैसे रावण, शिशुपालादिक की; तीसरी भय से जैसे कंस, मारीचादिक की, और चौथी स्नेह यानी प्रती से जैसे नारद, सनकादिक की। इन चारों में से शत्रुता और भय को भक्ति उपासना की रीति से त्याज्य हैं। दूसरी अविहित भक्ति उसको कहते हैं कि जो स्वाभाविक आप से आप बुद्धि के विचार से शास्त्राज्ञाविना ही भगवत् में प्रीति हो यह अंतिम फुल रूप है। यद्यपि इसको भिन्न २ कहने में कोई प्रयोजन नहीं है तो भी कोई २ इसके दो भेद बताते हैं, एक ज्ञानाङ्ग, जो ज्ञान को उत्पन्न करके फल देता है, और दूसरी स्वतंत्रा, जो स्वयं मुक्ति देती है, ज्ञान उसका एक अंग है। इसमें गीता का वचन प्रमाण है 'मेरे भक्त माया को तरते हैं'। दूसरा वचन यह है 'मेरे भक्त मुझ को प्राप्त होते हैं'। तीसरा वचन यह है 'जिसको संसार से मुक्त होने की इच्छा हो वह केवल मेरा ही सेवन करें'। यह भक्ति उत्तम, मध्यम और प्राकृत भेद से तीन प्रकार की हैं। उत्तम भक्ति का यह स्वरूप है भगवत् को सर्वत्र व्यापक और वर्तमान देखना, सबको भगवन्मय जानना, जैसे तरंगों अनेक होते हुये भी समुद्र एक ही है। इसी प्रकार चराचर जीव एक भगवत् स्वरूप ही है, ऐसा मानना इसका नाम उत्तम भक्ति है। मध्यम भक्ति यह है कि भगवत् में प्रीति करना और भगवद्भक्तों को अपना मित्र

जानना और प्राकृत भक्तों पर दया तथा अनुग्रह करना, द्वेषी जनों से दूर रहना। प्राकृत भक्ति यह है कि भगवत् और भगवत् की अर्चा, मूर्ति इत्यादि को ईश्वर रूप जानना यह ही भक्ति सात्विक राजस और तामस भेद से तीन प्रकार की है। निष्काम भक्ति सात्विक है, जैसे प्रह्लाद आदिक की, सकाम भक्ति राजस है जैसे ध्रुव, गज इत्यादिक की और शत्रु विजय के हेतु जो भक्ति की जाती है, वह तामस है जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर के वध के लिये भगवत् का आराधन किया था। भागवत् में इसी भक्ति को मानस वाचक, और कायिक तीन प्रकार की कहा है। मन से जो भक्ति की जाती है, वह मानस है, वाणी से जो की जाती है वह वाचक और जो शरीर से की जाती है, वह कायिक कहलाती है। इसी भक्ति को गीता में चार प्रकार की कहा है, एक धार्त की जो किसी दुःख के कारण से भगवत् की आराधना की जाय, जैसे द्रौपदी गङ्गादिक ने की थी, दूसरी जिह्वासु की, जो मुक्ति की इच्छा से की जाय, जैसे परीक्षित आदि ने की थी, तीसरी अर्थार्थी की, जैसे ध्रुव ने की थी, और चौथी ज्ञानी की जैसे प्रह्लाद, नारद, सनकादिक की। फिर यह ही भक्ति तीन प्रकार की है, एक स्वयं करना, दूसरी दूसरे को समझा कर कराना और तीसरी किसी को भक्ति करते देख कर प्रसन्न होना। भागवत् में यह ही भक्ति श्रवण १, कीर्तन २, स्मरण ३, सेवा ४, अर्चा ५, बन्धन ६, दास्य ७, सकृय ८, और आत्म निवेदन ९ को प्रकार की कही है, इसी का नाम नवधा भक्ति है, इनका भिन्नरक्षण पुस्तकानुसार करेंगे। यह ही भक्ति भूमिका भेद से ग्यारह

प्रकार की है। प्रथम भक्ति दया और प्रसन्नता के शान्ति दया आदिक चौथी भूमिका भगवत् श्रवण किये हुए भगवत् भूमिका, भगवत् के लेता इस अवस्था के भगवत् के स्वरूप का प्रकाश दिन प्रति दया और अत्यंत होना, दशवीं भूमिका के पूर्णधर्म पुरुष में इस पुरुष को जितन भगवत् में हो और चलायमान न हो। अधिक होता हुई केवल भक्तों के मत एकही है, इस बात एक दिन उ चौबीस तत्त्व बता कोई आठ कोई सा भगवान् ने कहा यह है कि

पूकार की है। प्रथम भूमिका सत्संग, दूसरी भूमिका भक्तों की दया और प्रसन्नता के योग्य होजाना, तीसरी भूमिका भक्तों के शांति दया आदिक आचारों में श्रद्धा तथा विश्वास करना, चौथी भूमिका भगवत् चरित्रों का श्रवण करना, पांचवीं भूमिका श्रवण किये हुए भगवत् के स्वरूप में प्रीति उत्पन्न होना, छठी भूमिका, भगवत् के स्वरूप और अपने स्वरूप को यथार्थ जान-लेना इस अवस्थाको अद्वैतवादी ज्ञान कहते हैं। सातवीं भूमिका भगवत् के स्वरूप में अधिक प्रेम होना, आठवीं भूमिका भगवत् का प्रकाश दिन प्रति दिन हृदय में अधिक होना, नवीं भूमिका दया और अत्यंत निर्मल होना और भगवत् के धर्मों का आरंभ होना, दशवीं भूमिका ईश्वरता, दयालुता और सर्वज्ञतादि ईश्वर के पूर्णधर्म पुरुष में आजाना और ग्यारहवीं भूमिका यह है कि इस पुरुष को जितनी प्रीति अपने शरीर में है, उतनी ही प्रीति भगवत् में हो और क्षणभर भी भगवत् स्वरूप के चिंतन से चलायमान न हो। फिर यह ही भक्ति भक्तिदानादि भेदसे क्रमसे अधिक होती हुई तोस प्रकार की है। वह भक्ति का विभाग केवल भक्तों के मनकी अवस्था विशेषके कारण है, नहीं तो भक्ति एकही है, इस बातको इस दृष्टान्त से समझना चाहिये।

एक दिन उद्धव ने भगवान् से पूछा 'महाराज ! कोई तो चौबीस तत्व बताता है, कोई सत्रह, कोई सोलह, कोई कोई, पाँच, कोई आठ कोई सात कहता है, इस विरोध का क्या कारण है' ? भगवान् ने कहा 'हे उद्धव ! वास्तव में विरोध कुछ नहीं है, बात यह है कि जिसने एक तत्व को दूसरे तत्व में मिला कर समझा

है, उसकी गणना में तो कम हैं और जिसने अलग २ करके समझा है, उसकी गणना में अधिक हैं। जैसे जिस किसी ने ईश्वर, माया और जीव को अलग २ जाना है उसकी गणना में तीन हैं, जिसने माया को भगवत् की इच्छा समझा है, उसकी गिनती में दो हैं। जिसने तीनों तत्व में महत्त्व, अहंकार और पंच महाभूतों को अधिक किया, उसकी गिनती में दश हैं इस प्रकार छयानवें तक संयोग पहुंच गया है (ब्रह्मसूत्र १।१५)

दूसरा दृष्टांत यह है, किसी ने वटके वृक्ष को देख कर कहा कि दो शाखा वाला है। किसीने चार शाखा देखी थी उसने चार शाखा वाला बताया। वास्तव में वट एक है इसी प्रकार यह भक्ति एक है। मनकी लगन के अनुसार कई प्रकार की दिखाई पड़ती है। तात्पर्य सबका यह है कोई किसी प्रकार से, किसी लाभ के निमित्त, किसी विधान से करे, अनुराग का होना मुख्य प्रयोजन है। जब तक प्रीति सिद्ध पद को नहीं प्राप्त होती तब तक साधन रूप है और जब स्थायी भाव को प्राप्त हो जाती है, तब वह ही फल रूप है। वह ही भक्ति की पराकाष्ठा है, वह ही जीवन मुक्ति है। यह ही मनुष्य जन्मका परम प्रयोजन है, इसका नाम परम पुरुषार्थ है। जिसने यह परम प्रयोजन सिद्ध कर लिया, उसने ही मनुष्य जन्म को सार्थक किया है।

भगवद्भक्तों की महिमा ।

हे मंसाराम ! उपरोक्त किसी प्रकार की भक्ति करने वाले भक्त भगवत् के प्यारे होने से भगवत् स्वरूप ही हैं। ऐसे भक्त भगवत् के सान पूजने योग्य हैं। भक्तों की महिमा अपार है, कोई

वर्णन नहीं कर सकता। जिस
कुल धन्य है, भक्त के म
निवास हो, वह देश धन्य
है, वह काल पूजनाय है
शुद्ध हो जाता है, भक्त
है, भक्त के सत्संग से दुर
माता पिता के समान को
विशेष हितकर होते हैं
हो पालन पोषण करते हैं
को शुद्ध करके अखंड सु
भक्तों को कृपा से दैत्य
जिना देता भी कल्याण
दैत्य कुल में थे, फिर भ
के कृपा पाव को और
भी सनकादि की अकृपा
तक उनको दैत्य देह
है। सूर्य, चन्द्र आदि
और भक्तों को कृपा से
सूर्यादि से भी भक्त
वर्णन की है परन्तु
इसलिये गुरु से भक्त
भी भक्तों को कृपा
उससे भी थे

वर्णन नहीं कर सकता। जिस कुल में भक्त का जन्म होता है, वह कुल धन्य है, भक्त के माता पिता धन्य हैं, जिस देश में भक्त का निवास हो, वह देश धन्य है, जिस काल में भक्त का जन्म होता है, वह काल पूजनाय है। जहाँ भक्त रहता है, वहाँ का वायु शुद्ध हो जाता है, भक्त के आस पास दूर २ तक शांति रहती है, भक्त के सत्संग से दुराचारी सदाचारी हो जाते हैं। जगत् में माता पिता के समान कोई हितकर नहीं होता परन्तु भक्त उनसे भी विशेष हितकर होते हैं क्योंकि माता पिता तो केवल शरीर का ही पालन पोषण करते हैं और भक्त तो मनुष्य के अंतःकरण को शुद्ध करके अखंड सुख स्वरूप परमात्मा से मिला देते हैं। भक्तों की कृपा से दैत्य देवता बन जाते हैं और भक्तों की कृपा बिना देवता भी कल्याण मार्ग से गिर जाते हैं। देखो, प्रह्लाद दैत्य कुल में थे, फिर भी नारद जी की कृपा से नृसिंह भगवान् की कृपा पात्र बने और जय विजय भगवत् के द्वारपाल होने पर भी सनकादि की अकृपा से अपने पद से भ्रष्ट हुये, तीन जन्म तक उनको दैत्य देह धारण करना पड़ा, भागवत् से यह प्रसिद्ध है। सूर्य, चन्द्र आदि दिग्पाल जीवको मात्र भोग्य पदार्थ देते हैं और भक्तों की कृपा से तो मोक्ष पद की प्राप्ति होती है इसलिये सूर्यादि से भी भक्त बड़े हैं। गुरु की महिमा शास्त्रों में विशेष वर्णन की है परन्तु गुरुपदकी प्राप्ति भक्तों की कृपाके आधीन है इसलिये गुरु से भक्तों का दर्जा बड़ा है। ब्रह्मा विष्णु, महेश भी भक्तों की कृपा से भक्ति करके ही हुये हैं। इसलिये भक्त उससे भी श्रेष्ठ हैं। भागवत् में भगवान् ने स्वयं कहा है कि मैं

भक्तों के आधीन हूँ, और भक्त स्वतंत्र हैं। एकादश स्कंध में लिखा है कि संसार समुद्र में डूबने उछलने वालों के लिये भगवद्भक्ति नौका समान है और भक्त मल्लाह के सदृश हैं। पद्मपुराण में भगवत् का वचन है कि जो मेरे भक्तों के भक्त हैं, वे मेरे ही भक्त हैं, उनका पूजन मेरे समान ही करना चाहिये। गोसाईं जी का वचन है:-

विधि हरि हरकवि कोविद वानी।

कहत साधु महिमा सकुचानी ॥

जिस किसी को जो पदवी प्राप्त हुई है सत्संग ही से प्राप्त हुई है। इसलिये ही ब्रह्मादि की वाणी भगवद्भक्तों की महिमा कहने में सकुचाती है। एकवार विश्वामित्र और पर्वत ऋषिमें विवाद हुआ। विश्वामित्र तप को बड़ा कहते थे और पर्वत ऋषि सत्संग को श्रेष्ठ बताते थे। बड़े देवता भी निर्णय न कर सके। अन्त में दोनों शेषजी के पास गये और उनको पंच बनाया। शेषजी बोले 'भाइयो मैं तुम्हारा फैसला तो कर दूंगा परन्तु मेरे सिर पर बोझ रक्खा हुआ है, मेरा बोझ उतर जाय तो मैं स्वस्थ होकर तुम्हारे प्रश्न के सम्बन्ध में विचार करूँ, जो तुम में से समर्थ हो पृथिवी को शिर पर रखले पीछे मैं तुम्हारा निर्णय कर दूंगा'। विश्वामित्र ने कई लाख वर्षों के तप का फल बल्कि जन्म भर के तप का फल लगा दिया परन्तु पृथिवी न उठा सके। पर्वत ऋषि के एक मुहूर्त के सत्संग का फल लगाने से पृथिवी ठहर गई और इसीसे निर्णय हो गया कि सत्संग की महिमा अपार है। सत्संग ही आनंद देने वाला है,

सत्संग फल है और सब साधन
महिमा है, उनको महिमा का
भक्तों के संग से सुख जाते हैं
कि सब में कौन बड़ा है, जो
हैं। प्रथम उसने पृथिवी को
पूँछा कि सबका भरण पोषण
पास कर रक्खा है। पीछे
पूँछा कि शेषजी को
पूँछा कि वे ही बड़े हुये। फिर
पूँछा कि वे क्यों उठे हैं
का रत्न है इसलिये शिव
विचार किया कि शिवजी की
उनसे जो बड़ा है। फिर सोच
अंग है इसलिये विष्णु को उठा
कुल और शिवजी से मालूम
को शक्ति में से उठाने हुये
बड़े हैं। यह निश्चय हो उस
कि विष्णु भगवान् तो भक्तों
को अपने हृदय में भगवान्
कारण हैं, वे भगवद्भक्त
पास ही वर्णन करना
का तात्पर्य यह है कि
हैं, जो सब का

सत्संग फल है और सब साधन फूल हैं। जिन के संग की इतनी महिमा है, उनकी महिमा का क्या कहना है। दुराचारी भगवद्भक्तों के संग से सुधर जाते हैं। एक कवि ने यह जानना चाहा कि सब में कौन बड़ा है, जो बड़ा हो, उसी का महत्व मैं वर्णन करूँ। प्रथम उसने पृथिवी को सबसे बड़ा निश्चय किया क्योंकि पृथिवी ही सबका भरण पोषण करती है, और उसी ने सबको धारण कर रक्खा है। पीछे उसने शेषनाग को बड़ा समझा क्योंकि शेषनाग पृथिवी को अपने शिर पर धारण कर रहे हैं, इसलिये वे ही बड़े हुये। फिर उसने सोचा कि शेषजी से भी बड़े शिवजी हैं क्योंकि उन्होंने शेषनाग को एक अंग में धारण कर रक्खा है इसलिये शिवजी शेषजी से भी बड़े हैं। फिर विचार किया कि शिवजी कैलाश में रहते हैं इसलिये कैलाश उनसे भी बड़ा है। फिर सोचा कि कैलाश तो विश्व का एक अंश है इसलिये विश्व को उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा जी बड़े हैं। कुछ और विचारने से मालूम हुआ कि ब्रह्मा तो विष्णु भगवान् की नाभि में से उत्पन्न हुये हैं इसलिये विष्णु भगवान् सबसे बड़े हैं। यह निश्चय भी उसका बथार्थ न ठहरा। उसने विचार कि विष्णु भगवान् तो भक्तों के हृदय में बास करते हैं इसलिये जो अपने हृदय में भगवान् को रोक रखते हैं, भगवान् जिनके आश्रित हैं, वे भगवद्भक्त ही सब से बड़े हैं इसलिये मुझे उनका महत्व ही वर्णन करना चाहिये। हे मंसाराम! इस सब कहने का तात्पर्य यह है कि भक्तों की महिमा कहने सुनने से बाहर है, कोई कह नहीं सका। जो भगवत् सच्चिदानन्द स्वस्व

शुद्ध, मुक्त अक्रिय, निष्कल, निरंजन हैं वे ही जिन भक्तों के आधीन होकर लीलावतार धारण करके अनेक प्रकार की विचित्र लीलायें करते हैं उन भक्तों की महिमा कौन कह सकता है ! कोई नहीं कह सकता ! हे मंसाराम ! तू धन्य है, जो तूने भक्ति महा-रानी का स्वरूप पूछा है, मैं भी धन्य हूँ जो भक्ति का स्वरूप और भक्तों की कथायें वर्णन करूँगा क्योंकि जैसे भगवत् के चरित्र पाप के नाश करने वाले हैं इसी प्रकार भक्तों के चरित्र भी जन्म जन्मांतर के पापों को भस्म कर देते हैं इसलिये तू भोता और मैं वक्ता दोनों धन्य हैं ! आज से तू और मैं मिल कर भक्तों की कथायें, भक्ति का स्वरूप विभाग तथा भगवत् का स्वरूप इसी का वर्णन किया करेंगे ! जब तक जीना तब तक सीना ! कुछ न कुछ करना तो पड़ेगा ही, तब भगवत् और भगवद्भक्तों के गुण गान करना ही अच्छा है ! इसी में मेरा तेरा कल्याण है । वेदों का समझना कठिन है, छत्रों शास्त्रों में बाल बाल निकाली है, उनका पढ़ना भ्रंश में पड़ना है, ज्ञान के साधन बहुत कठिन हैं, विवेक, वैराग्य, शमादि तथा मुमुक्षुता लेना कठिन है, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, इससे भी कठिन हैं, इनके लिये सूक्ष्म बुद्धि चाहिए, हम तुम ग्राम के रहने वाले, थोड़ा पढ़े लिखे मोटी समझ के हैं ज्ञान के साधन हम तुम से नहीं सकेंगे । योगी भी होना कठिन है क्योंकि मन तो वश में ही नहीं, कमर टूटी कमजोर शरीर है, सोधा बैठना ही दुर्घट है फिर यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि कैसे होगी ? महात्माओं की सेवा करने से

कल्याण हो सक्ता है, परन्तु उनके पास पहुँचना कठिन है, प्रथम तो वे निस्पृही ही होते हैं, अपने पास किसी को आने ही नहीं देते और दूसरे भाई मंसाराम ! तुरु में अभिमान बहुत है और मुझ में तुरु से भी अधिक है इसलिए उनकी सेवा हम तुम से नहीं हो सकेगी। तीर्थ यात्रा यज्ञ दानादि करने को धन और बल चाहिए। सो दोनों नहीं हैं भूखे भी मरा नहीं जाता इसलिए उपवास आदि भी नहीं कर सकते ! अब तो मन चाणी से भगवत् और भगवद्भक्तों की शरण लेना ही सर्वोत्तम है ! उन्हीं को साथारण कहा सुना करेंगे, और मन बहिलाया करेंगे।

नहीं भक्ति सम अन्य, श्रेय करणि भवभय हरणि ।

भक्ति करें ते धन्य, भोला प्रिय हरि हा यथा ॥

भगवत् रस रूप है ।

धीविक्रियासहस्राणां सान्निगां निर्विकारिणाम् ।

सच्चिदानन्दमात्मानमखण्डैकरसं भजे ॥

छप्पय

जे भगवत् रस खानि प्राणि उर अन्तर वासी ।

सच्चिदानन्द राशि द्वास निश्वास प्रकाशो ॥

शोक मोह भय भद्र छेद निज भक्तन प्राता ।

अर्थ धर्म कामादि देव दुर्लभ फल दाता ॥

भोला ! भूले मत तिन्हें पलपल मांहि संभार रे ।

सोवत जागत स्वप्न में देव वही निर्धार रे ॥



सारामः—गुरु जी ! कल आप ने भक्ति-महारानी का स्वरूप बताया था और भक्तों की महिमा वर्णन की थी । आज मैं उन भगवत् का स्वरूप पूछना चाहता हूँ, जिन को प्राप्ति भक्ति महारानी द्वारा होती है और जिस को प्राप्त करके भक्त की गणना भक्तों में हो जाती है और भक्त ब्रह्मादि देवताओं का भी पूज्य हो जाता है । इस प्रश्न का उत्तर देने से प्रथम मेरी एक शंका का निवारण कर दीजिये । शंका यह है कि कल शाम को त्रिवेकचन्द्र पण्डित मुझ से इस प्रकार कहने लगे “भाई प्रसाराम ! तुम तो अभिमानो थे ही, अब तो तुम्हें गुरु भी अभिमानी मिल गए हैं, बस अब क्या है ? लोभी गुरु लालची बैला, दोनों नरक में ठेलमठेला” । भाई ! अभिमान—अहंकार ही न नष्ट हुआ तो भक्ति, ज्ञान वैराग्य खाक हुआ ! कुछ भी न हुआ ! तैली का बैल दिन भर घूमा, फिर भी वहीं का वहीं ! प्रथम अहंकार का त्याग करना चाहिए ! तब ही भक्ति ज्ञान हो सकते हैं” । हे भगवन् ! इस शंका का क्या समाधान है । पंडित जी का कथन मेरी समझ में तो ठीक ही है ! अहंकार ही तो विज्जड़ ग्रंथि है, इस ग्रंथि के खोलने का उपाय अवश्य करना चाहिये, यह ही दुःख देने वाली और जीव को नाना योनियों में भटकाने वाली है ! इसके खोलने के लिए ही भक्ति आदि साधन हैं ।

भगवत् र
स्ताराम—भाई मन्सार
कं है पन्तु भक्त लोगों
प्राप्त अहंकार तो भगवत् ही
प्राप्त सर्वस्व भगवत् के अपेक्षा
वांछा तो अहंकार कहाँ
जिन के अर्थ होते हैं, भक्त अप
तक वह निश्चय होता है
ने समझे हैं, मैं उनका भृत्य
ऐसा ही मैं करता हूँ, मेरा
साईं, भगवत् ही कर्ता धर्
कोर हूँ । ऐसा समझने से
मारी होता क्योंकि सच
तो जना अभिमान करता
एते हैं और जो अपना अ
स को और अपने को समझ
गो होता । सारांश यह है
काक है और भगवत् सम
। ऐसे अहंकार घिना
एसे अहंकार को ग्रहण क
ये, ऐसे अहंकार को लेक
ने ताड़ को और गो
का सुनाई थी
का है, र

मस्तरामः—भाई मन्साराम ! पण्डित जी का कथन तो ठीक ही है परन्तु भक्त लोगों का अहंकार भक्तों का नहीं होता, उनका अहंकार तो भगवत् ही का अहंकार होता है ! भक्त तो अपना सर्वस्व भगवत् के अर्पण कर देते हैं, जब सर्वस्व ही अर्पण कर दिया तो अहंकार कहाँ रहा ? भक्त के सब व्यापार भगवत् प्रीति के अर्थ होते हैं, भक्त अपने लिए कोई व्यापार नहीं करता ! भक्त का यह निश्चय होता है 'भगवत् सब जगत् के स्वामी हैं, मेरे भी स्वामी हैं, मैं उनका भृत्य हूँ, जैसी भगवत् की आज्ञा होती है, वैसा ही मैं करता हूँ, मेरा कोई कार्य नहीं है, सब भगवत् के कार्य हैं, भगवत् ही कर्ता धर्ता हैं, मैं तो उनका उपकरण या तो औजार हूँ। ऐसा समझने से भक्त को किसी देवता आदि से भय नहीं होता क्योंकि सब देवता परमात्मा के ही चाकर हैं, जो अपना अभिमान करता है, उसके कार्य में देवता विघ्न करते हैं और जो अपना अभिमान नहीं करता, भगवत् का ही सब को ओर अपने को समझता है, उसको किसी प्रकार का भय नहीं होता। सारांश यह है कि विषय सम्बन्धी अहंकार हानिकारक है और भगवत् सम्बन्धी अहंकार तो भक्ति में मदद रूप है। ऐसे अहंकार बिना भक्ति नहीं हो सकती। याज्ञवल्क्य ने इसी अहंकार को ग्रहण करके भारद्वाज को रामायण सुनाई थी, इसी अहंकार को लेकर शिवजी ने पार्वती को, कागभुशुंडि ने गरुड़ को और गोसाई जी ने अपने शिष्यों को रामायण की कथा सुनाई थी। जो कोई ब्रह्मनिष्ठ अपने शिष्य को उपदेश करता है, इसी अहंकार को लेकर करता है, बिना अहंकार उप-

उपदेश नहीं दिया जा सकता। यह भुने बीजके समान होता है। जैसे भुना बीज अंकुर उत्पन्न करने को समर्थ नहीं होता, भूख की निवृत्ति कर सकता है इसी प्रकार भक्तों का अहंकार संसार रूप अनर्थ का कारण नहीं होता, भक्तों के चरित्र; भगवत् के गुणानुवाद और भगवत् तत्व के निरूपण करने में समर्थ होता है, इसीलिये यह शंका कभी न करनी चाहिए कि भगवद्भक्तों में अहंकार है, उनका अहंकार आभास मात्र होता है, प्रारब्ध भोगमात्र अथवा दूसरों के हित निमित्त होता है। ऐसा न होता तो भक्ति आदि कल्याण मार्ग का प्रचार होना ही असम्भव था। भाई मन्साराम! हमारी दृष्टि में सिवाय भगवत् के दूसरा है ही नहीं, पण्डित जी का कथन भगवत् को आज्ञा ही समझनी चाहिये, यदि अहंकार नहीं मिटा है तो भगवत् गुणगान से मिटाना चाहिए, यह हम को दृढ़ विश्वास है कि भगवत् गुणगान करने से अहंकार ऐसे उड़ जायगा जैसे गधे के शिर पर से सींग! अच्छा! सुनो, अब भगवत् का स्वरूप, भगवत् रस रूप हैं।

मन्साराम:-महाराज! भगवत् का रस नाम तो आज तक सुनने में नहीं आया। शून्यवादी तो भगवत् को शून्य कहते हैं, विज्ञानवादी विज्ञान कहते हैं, सांख्य वाले पुरुष कहते हैं, योगी ईश्वर कहते हैं, शैव शिव कहते हैं, कालवादी काल कहते हैं, सौरे सूर्य कहते हैं, गणपत्य गणपति कहते हैं, शाक्तिक शक्ति कहते हैं, वैष्णव विष्णु कहते हैं, और वेद में 'प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म' कहा है। आप रसरूप कहते हैं। क्या आपने किसी

कोप में यह नाम सुना है, किसी लुगत में अथवा किसी दिक्श-
नरी में देखा है।

मत्तराम:-भाई मंसाराम ! तुम्हारे तो पर निकल आये
हैं ! जब चेंदो मरने को होता है तब उसके पर निकल आते हैं,
तुम भी अब मरने को हुये दीखते हो ! मन के मरण को श्रुति
में मन का महान् अभ्युदय कहा है, तुम्हारी और मन का एक
राशि है, तुम्हारा भी महान् अभ्युदय होने वाला दीखता है !
जल्दी क्यों काटते हो बीच में ही से बात क्यों काटने लगते हो !
पूरी बात तो सुन लिया करो, तभी बोला करो, देखो ! भक्ति
का पूर्ण-रहस्य जानने वालों ने रससंयुक्त भक्ति की है, भक्तमाल
में पांच रस भगवद्भक्ति के संयोगो लिजे हैं, रस शब्द में सब
कोशों का कोप वेद हो प्रमाण है। श्रुति भगवती कहती है,
जरायुज, अंडज, स्वेदज और उद्भेज, इन चार प्रकार के भूतों
का प्राणियों का पृथिवी रस है, पृथिवी का रस जल है, जल-
का रस ओषधियाँ हैं, ओषधियों का पुरुष रस है, पुरुष को
वाणो रस है, वाणो का रस ऋग्वेद है, ऋग्वेद का रस साम
वेद है, सामवेद का रस उद्गोथ है, यह उद्गोथ
ही रसों में रसतम है यानो रसों का भी रस है। यहां उद्गोथ
भगवत् का ही नाम है। भगवत् का अपरोक्ष प्रत्यक्ष
कोई नाम नहीं है, सब नाम लक्षण वृत्ति से भगवत् का लक्ष
कराते हैं। भगवत् में जगत् का अभाव होने से शून्यवादी भग-
वत् को शून्य कहते हैं। विज्ञान रूप बुद्धि की वृद्धि से भगवत्
का साक्षात्कार होता है इसलिये विज्ञानवादी भगवत् को विज्ञान

कहते हैं। भगवत् सब में पूर्ण है इसलिये सांख्यवादी भगवत् को पुरुष कहते हैं। सब का नियामक होने से योगी भगवत् को ईश्वर कहते हैं, कलाण करने वाला अथवा कलाण रूप होने से शै। भगवत् को शिव कहते हैं, काल की गणना भगवत् बिना नहीं हो सकती इसलिये काल का भी काल होने से कालवादी भगवत् को काल कहते हैं। सब का प्रकाशक होने से सौरि भगवत् को सूर्य कहते हैं, सर्व समुदाय यानी समूह की सिद्धि भगवत् से होती है इसलिये गाणपत्य भगवत् को गणपति कहते हैं, सर्वशक्तिमान् होने से शक्त भगवत् को शक्ति कहते हैं, सब में व्यापक होने से वैष्णव भगवत् को विष्णु कहते हैं। तीन काल के परिच्छेद से रहित ज्ञान स्वरूप होने से भगवत् को वेद में प्रज्ञान कहा है, सब सुखों का परमास्पद होने से आनन्द कहा है और बृहत् होने से ब्रह्म कहा है। रस भगवत् स्वरूप है, भक्तमाल में रस की परिभाषा इस प्रकार की है यानी रस का स्वरूप यह है:-रूपाग्रचित्त की वृत्ति जिस आनन्द में स्वादको चख कर सुख में डूब कर बेसुध हो जाय, उस का नाम रस है। तात्पर्य यह है कि सच्चिदानन्दधन परब्रह्म अपने स्वामी के जिस स्वरूप का ध्यान द्वारा साक्षात्कार हुआ है उस साक्षा में चित्त की वृत्ति दृढ़ हो जाय, वह रस का दूसरा अर्थ यह है: शृंगार, वात्सल्य अथवा सखा इत्यादि रसों की सामग्रियों से भक्तों के हृदय में भगवत् के स्वरूपका जो प्रत्यक्ष होता है ओर उस स्वरूप में चित्त वृत्ति दृढ़ हो जाती है, उसको रस कहते हैं। कई रस भेद के वर्णन करने वालों ने जिस

स्वका का हृदय में साक्षात्कार
अथवा प्रेम लिखा है और उस
वृत्ति दृढ़ हो जाने को रस
व्यापक, पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द
प्रकट होने के कारण एक ही
रसत्व में रस एक और व
प्रकार के घट अलग २ नाम
हैं। सब में एक हो और
रस मिलाया जाय जैसे
लुपानों का रंग एक ही
रस होते हुये भी जहाँ स
व्यापक सहित प्रत्यक्ष है
जहाँ श्रुता, बल, शक्त
होता है, वहाँ उसको वी
और सख्य अन्य उपक
के नाम से पुकारा जात
व्यक्तियों के भेद से रस

मंसाराम:-मह

शक्ति को रस कहा और
नन्द्यन कहा इन दोनों
वृत्ति व्यापक नहीं
कहना नहीं बनता

स्वरूप का हृदय में साक्षात्कार होता है, उसका नाम भाव अथवा प्रेम लिखा है और उस भाव अथवा प्रेम में चित्त की वृत्ति दृढ़ हो जाने को रस निश्चय किया है। यह रस एक व्यापक, पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन है। भिन्न-उपकरणों द्वारा प्रकट होने के कारण एक ही रस के पृथक् २ नाम हो गये हैं, वास्तव में रस एक और व्यापक है जैसे एक ही मिट्टी से कई प्रकार के घट अलग २ नाम और स्वरूप वाले बन जाते हैं किंतु मिट्टी सब में एक ही और व्यापक होती है, जैसे पानी में जैसा रंग मिलाया जाय वैसे ही रंग का दिखलाई देने लगता है, किंतु पानी का रंग एक ही प्रकार का होता है इस प्रकार रस एक होते हुये भी जहां सुन्दरता, आभूषण, सुकुमारता आदि उपकरण सहित प्रत्यक्ष होता है, वहाँ शृंगार रस कहलाता है, जहां शूरता, बल, शस्त्र उत्साह आदि उपकरण सहित प्रकट होता है, वहां उसको वीर रस कहते हैं। इसी प्रकार वात्सल्य और सख्य अन्य उपकरण हैं उनके साथ वह ही रस उन रसों के नाम से पुकारा जाता है। तात्पर्य यह है कि रस एक है, उपकरणों के भेद से रस के अनेक नाम हो गये हैं।

मंसाराम:-महाराज ! प्रथम तो आपने चित्त की दृढ़ वृत्ति को रस कहा और फिर उसको व्यापक पूर्ण सच्चिदानन्दघन कहा इन दोनों में कौन सा स्वरूप यथार्थ है। चित्त की वृत्ति व्यापक नहीं होती क्षणिक होती है, उसको व्यापक रस कहना नहीं बनता।

मस्तराम:- भाई धात यह है कि जैसे जीव का भोजन जीव का जीवन कहने में आता है, वास्तव में भोजन जीव का जीवन नहीं है किन्तु जीवन का उपकरण है, उपकरण होने से जीवन कहलाता है इसी प्रकार चित्त की दृढ़ वृत्ति रस की उपकरण है इसलिये उसको रस कहा जाता है, वास्तव में वृत्ति रस नहीं है। रसों की संख्या मानने में शास्त्रों में परस्पर विरोध है। शृंगार उपासक कहते हैं कि आनन्द स्वरूप केवल शृंगार से प्राप्त होता है, दूसरे रस व्यर्थ हैं, यह उनका कथन समीचीन नहीं है क्योंकि यदि आनन्द का कारण शृंगार ही होवे तो व्याघ्र, मेंढे, गजादि की लड़ाई देखने से आनन्द न होना चाहिये क्योंकि लड़ाई आदि से शृंगार का सम्बन्ध नहीं है और उपरोक्त खेलों में आनन्द होना सब के अनुभव सिद्ध है इसलिये एक शृंगार ही आनन्द उत्पन्न करने वाला हो, यह ठीक नहीं है, कोष शास्त्र में आठ रस कहे हैं, शान्त रसका वर्णन नहीं किया। उपनिषदों में शान्त रस को मूल बताया है और दूसरे रसोंको शान्त रसकी शाखा वर्णन किया है। साहित्य शास्त्र प्रेम, काव्य और रस भेद का प्रतिपादन करने वाला है, उसमें नौ रस वर्णन किये हैं। उनके नाम यह हैं। शृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक बीभत्स, अद्भुत और शान्त। भगवत् उपासकों को किसी से विरोध नहीं है किन्तु उपासना के योग्य होने से इन नौ रसों में से शृंगार और शान्त दो रस ग्रहण करते हैं और इनसे भिन्न सख्य, दास्य और वात्सल्य तीन रस और लेते हैं; इस प्रकार पांच रस अंगीकार करते हैं यद्यपि भगवत् का चितवन

सब ही रसों
सब रसों में
जितनी प्राप्ति
इसलिये पांच
नक और बी
हिरण्यकशिप
द्वारा उद्धार
जाता है। सि
हैं। कोई पु
से, किसी र
करे, रस से
भगवत् सब
हुआ।

मंस
व्यापक हैं

मस्
देते हैं; अंध
हैं, फिर भ
नेत्र खुले ह
को नहीं हो
के लिये वै
को हाथी
पड़ता

सब ही रसों के अवलम्ब से हो सकता है क्योंकि भगवत् सब रसों में व्यापक हैं फिर भी इन पांच रसों से भगवत् की जितनी प्राप्ति शीघ्र होती है, अन्य रसों से उतनी शीघ्र नहीं होती इसलिये पांच रसों की विशेषता है। उपरोक्त रसों में रौद्र भयानक और बीभत्स इन तीन रसों से कोई उपासना नहीं करता, हिरण्यकशिपु, रावण और कंसादि का भगवान् ने इन रूपों द्वारा उद्धार किया था, इस हेतु से उन की गणना रसों में की जाती है। सिद्धांत यह है कि उपासना के सम्बन्धी पांच रस हैं। कोई पुरुष किसी भाव से किसी प्रकार से, किसी विश्वास से, किसी रीति से, और किसी निष्ठा से भगवत् का आराधन करे, रस से भिन्न आराधन नहीं होता सब रसों के रस रूप भगवत् सब में व्यापक हैं इसलिये भगवत् रस रूप हैं, यह सिद्ध हुआ।

मंसाराम:- महाराज ! भगवत् रस रूप हैं और सर्वत्र व्यापक हैं तो सर्वत्र दिखाई क्यों नहीं देते ?

मस्तराम:- भाई आंखों वालों को भगवत् सर्वत्र दिखाई देते हैं; अंधों को दिखाई नहीं देते ! सूर्य नारायण सब को प्रत्यक्ष हैं, फिर भी घुग्घु को नहीं दिखाई देते इसी प्रकार जिनके हृदय नेत्र खुले होते हैं उन्हीं को भगवत् का दर्शन होता है, दूसरे को नहीं होता। जैसी वस्तु देखनी होती है, उस वस्तु को देखने के लिये वैसा ही बनना पड़ता है, यह नियम है। हाथी के देखने को हाथी बनना पड़ता है और चेंटी के देखने को चेंटी बनना पड़ता है, तभी उनको देख सकते हैं। अभी तू भक्ति महारानी

की पाठशाला में भरती हुआ है जब कुछ दिन यहां पढ़ लेगा तब तेरी आंखें खुलेंगी और तभी तू भगवत् को देख सकेगा ! जब दीर्घ काल तक भक्ति पाठशाला के आचार्यों की सेवा निष्कपट होकर करेगा तब तेरी आंखों का जाला कटेगा ! यदि तू निष्कपट हो जाय तब तो आंखें खुलने में देर न लगे, परन्तु दीर्घ काल से तुझे कपट का अभ्यास हो रहा है, इसलिये जल्दी से उसका त्याग नहीं हो सकता । प्राचीन काल में एक पांखंडी पुरुष था । उसने बहुत से ग्रन्थ पढ़ लिये, साधुओं का संग भी करता था परन्तु था कपटो, इसलिये साधु संग करने पर भी उसको भगवत् का साक्षात्कार नहीं हुआ था । एक दिन एक संत भगवत् तत्व का प्रवचन कर रहे थे जब उन्होंने भगवत् को सर्वत्र व्यापक कहा तब पांखंडी पुरुष ने तेरा ही सा प्रश्न किया ।

पांखंडी:- महाराज ! आप भगवत् को व्यापक बताते हो, मुझे तो इतने दिन आपके पास आते हो गये, अभी तक मुझे भगवत् नहीं दीखते ! तब संत कहने लगे:-

संत:- भाई ! लोक में देखने की यह रीति है कि आंखों से तो वस्तु यथार्थ दीखती है, यदि ऐनक लगा कर देखें तो ऐनक के अनुसार वस्तु दिखाई पड़ती है और यदि आंखों पर पट्टी अथवा कोलह के बैल की सां अंधेरी लगा कर देखें तो कुछ भी दिखाई नहीं देता, इसी प्रकार तू ने आंखों पर अंधेरी लगा रखी है और जब कभी अंधेरी उतार देता है तो नई नई ऐनक लगा लेता है इसलिये सर्वत्र भगवत् को तू नहीं देख सका ।

पांखंडी:- महाराज !

रुपा करके समझाइये ।

संत:- देख अंधे

धाम, क्रोध और परि

का अंधेरी से तेरी आ

से तुझे कुछ का कुछ

से समझे, तुझे दिख

अधिके अभिमान ने तु

मता है, दूसरों को ह

वे धर्मात्मा, तपस्वी

तिर मेरे समान कौन

करता है । मैं ब्राह्मण

मुनि की संतान हूं, मे

अभिमान करता है !

सब कुछ कर सकत

हूं, धर्मशालाएँ बन

खोल रखी हैं जो

बल्ले अच्छे महात

पास जाने को

मान किया व

छात्र रखे

को र

पाखंडी:-महाराज ! अंधेरी क्या हैं और ऐनक क्या हैं ?
रुपा करके समझाइये !

सन्त:- देख अहंकार बल और दर्प ये तीनों अंधेरी हैं, काम, क्रोध और परिग्रह ये तीनों ऐनकें हैं। अहंकारादि रूप अंधेरी से तेरी आखें मिच जाती हैं और कामादि ऐनकों से तुझे कुछ का कुछ सुभाई देता है इसलिये भगवत् जो समीप से समीप हैं, तुझे दिखाई नहीं देते! कुल, जाति, धन, ऐश्वर्य दिया आदिके अभिमान ने तुझे अंधा कर दिया है, अपनेको कुलीन समझता है, दूसरों को हीन कुल वाला मानता है, मेरे कुल में बड़े बड़े धर्मात्मा, तपस्वी, दानो होगये हैं, उन्हीं के कुल में मैं हूं, फिर मेरे समान कौन उत्तम कुल वाला है, ऐसा अभिमान करता है। मैं ब्राह्मण हूं, अन्य सब मुझ से नीचे हैं, मैं ऋषि मुनि की संतान हूं, मेरे समान दूसरा कौन है, ऐसे जाति का अभिमान करता है! मेरे समान धनी कोई नहीं है, धन से मैं सब कुछ कर सकता हूं, यज्ञ कर सकता हूं, दान दे सकता हूं, धर्मशालायें बना चुका हूं, क्षेत्र लगा रखे हैं, पाठशालायें खोल रखी हैं जो चाहूं सो ही कर सकता हूं, मैं ही धनी हूं, अच्छे अच्छे महात्मा मेरे घर पर ही आजाते हैं, मुझे किसी के पास जाने की जरूरत नहीं है, इस प्रकार सर्वदा धन का अभिमान किया करता है! छप्पन गाँव का ठाकुर हूं, सरकार में लाख रुपये से भी अधिक सालाना दिया करता हूं, राय बहादुर की उपाधि मिली हुई है, लाटसाहब आदि मेरे घर पर आते रहते हैं, हजारों रुपये उन की आवश्यकत में लगा देता हूं, जिस

को चाहूँ ग्राम में रहने दूँ, चाहूँ जिसे बाहर कर दूँ, सब मेरे अधिकार में हैं, इस प्रकार ऐश्वर्य का अभिमान रखता है विद्या का पूरा अभिमानी है, प्रस्थानत्रय कंठ हैं, यही मुख्य हैं, इनके सिवाय अन्य शास्त्र, पुराणादि भी जानता हूँ कोई बात मुझे जाननी शेष नहीं है, व्याकरण का पूरा पंडित हूँ, न्याय भी जानता हूँ, गुण द्रव्य आदि लक्षण प्रमाण सहित जानता हूँ, इस प्रकार विद्या का अभिमानी है, बलौ अपने समान किसी को नहीं समझता ! दर्प इतना है कि धर्माधर्म का भी विचार नहीं करता । मेरे पास बहुत दिनों से आता है, सो भी दिखाने के लिये आता है, सच्चे मन से नहीं आता, इसी से तू अन्धा हो रहा है, सर्वव्यापी भगवत् को नहीं देख सकता । कामना के कारण वस्तु कुछ को कुछ दिखाई देती है । अनित्य को नित्य देखता है, अशुचि को शुचि मानता है दुःख को सुख मानता है और अनात्मा को आत्मा जानता है । स्वर्गादि अनित्य हैं फिर भी उनको नित्य मानता है, मांसादि के बने हुये अपवित्र शरीर को पवित्र समझता है, विषय भोग दुःख रूप हैं, उनको सुख रूप मानता है, दंहादि अनात्मा का आत्मा मानता है, क्रोध के कारण कुछ का कुछ देखता है, गुरु शास्त्र, माता पिता जो हित करते हैं, वे ही अहितकर दिखाई देते हैं, क्रोध भी तुझ में अत्यन्त है, बात बात में क्रोध करता है । परिग्रह का भी तूने त्याग नहीं किया है, त्याग कैसा ! उलटा बढ़ा रक्खा है, अच्छा मकान हो, अच्छा भोजन हो, बाग हों बगीचे हों, इत्यादि वस्तुओं की इच्छायें किया करता है, जो वस्तु मुफ्त की मिल

जाय, ले लेता है, का
प्रकार आँखें बन्द रख
परमार्थ तत्त्व रूप भ
उसको दिखाई देते
परिग्रह का त्याग
को अपनी न माने,
देख कर मन में क्षे
ब्रह्म का साक्षात्का
वान् ने गता में व
अहंकार
विमुच्य
जिसके म
से लोकों के दिख
सहित साधु मह
जन्म तक भी भ
नहीं है ! जो नि
में आसक्त नहीं
होती है, उसी
भगवत् प्राप्ति
मन से साधुओं
करो, ईश्वर क
नहीं है, पास
जहाँ सच्

जाय, ले लेता है, काम की है या नहीं, यह नहीं सोचता! जो इस प्रकार आंखें बन्द रखता हो अथवा नई नई ऐनकेँ लगा ले, उसे परमार्थ तत्त्व रूप भगवत् किस प्रकार दिखाई दें। भगवान् तो उसको दिखाई देते हैं जो अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह का त्याग करे, ममता रहित और शांत हो, किसी वस्तु को अपनी न माने, सब वस्तुयें ईश्वर की जाने, किसी वस्तु को देख कर मन में क्षोभ न आवे, इस प्रकार शांत हो वह ही पुरुष ब्रह्म का साक्षात्कार करने के योग्य होता है, यह ही बात भगवान् ने गता में कही है।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।

विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्म भूयाय कल्पते ॥

जिसके मन में संसार की कामनायें भरी हुई हैं, ऊपर से लोकों के दिखाने के लिये भक्ति का ढोंग रचता है, कष्ट सहित साधु महात्माओं का संग करता है, उस को करोड़ों जन्म तक भी भगवत् के दर्शन और भगवत् प्राप्ति की आशा नहीं है! जो निष्कपट होकर साधु संग करता है, जो संसार में आसक्त नहीं होता भगवत् प्राप्ति की जिस को उत्कट इच्छा होती है, उसी को भगवत् के दर्शन होते हैं। भाई! यदि तुम्हें भगवत् प्राप्ति की इच्छा हो तो संसार से वैराग्य करो सच्चे मन से साधुओं का संग करो, सच्चे प्रेम से ईश्वर का आराधन करो, ईश्वर की प्राप्ति तुम को अवश्य होगी! ईश्वर कहीं दूर नहीं है, पास से भी पास हैं, सच्चे प्रेम की आवश्यकता है, जहां सच्चा प्रेम किया और भगवत् प्रकट हुये।

पाखण्डी था संस्कारी, कुलीन और विद्यावान् भी था ही, सन्त के यथार्थ वचन सुन कर उसका हृदय स्वच्छ होगया, उसने अपना भूल स्वीकार की, आगे छल छिद्र त्याग कर पूर्ण भाव से सत्संग और ईश्वर आराधन करके अन्त में कृतकृत्य हुआ।

हे मन्साराम ! भगवत् तत्त्व बहुत सूक्ष्म है, जल्दी से भगवत् का साक्षात्कार नहीं होता, अभी तुम पाठशाला में दाखिल हुये हो, कुछ दिन सत्संग करो, भगवद्भक्तों के चरित्र सुनो, उनकी रहनि सहनि सीखो, विषय भोग की इच्छा का त्याग करो, इन्द्रियों को वश में करो, मन को भगवत् ध्यान में अथवा भगवत् चरित्रों में लगाओ, काम क्रोधादि का त्याग करो, शांति संतोष वैराग्यादि ग्रहण करो, तुम को भगवत् का दर्शन अवश्य होगा। देखो भगवत् सर्व व्यापक हैं तो भी उन का साक्षात्कार प्रथम हृदय में ही होता है। इसलिये तुम पहिले मन को वृत्तियों को सर्व विषयों में से रोक कर भगवदाकार करने का प्रयत्न करो ! जब एक भगवत् आकार वृत्ति हो जायगी फिर तो बिना यत्न ही घट के समान भगवत् सर्वत्र प्रत्यक्ष दिखाई देंगे। भगवद्भक्तों ने जिन जिन निष्ठाओं द्वारा भगवद्भक्ति की है, वे सब निष्ठायें मैं तुमको सुनाऊंगा, जिन को सुन कर तुम को भगवत् भक्ति का रहस्य मालूम हो जायगा और भक्ति महारानी की रूपा से भगवत् का दर्शन अवश्य होगा। अस्तु देखो ! भगवान् से प्रातःकाल उठते ही यह प्रार्थना किया कर हे जगदीश्वर ! हे परमेश्वर ! हमारे चित्त का मल दूरकरके हमारा चित्त निर्मल

कर दीजिये, राग, द्वेष, अ
में से दूर होजाय और श
गंभीरता आदि उत्तम
सदा निष्काम होकर ह
दिन प्रति दिन संसार
में हमारी आस्था दिन
इन्द्रिय आदि के सब
अंतर्पामी भगवन् ! ह
यह ही अंतिम प्रार्थन

दो:-नवों रस

भोला भक्ति

भक्ति

परब्रह्म

अप्रम

भक्ति

नी

कर दीजिये, राग, द्वेष, असूया, मदमत्सरतादि दोष हमारे चित्त में से दूर होजाय और शान्ति, संतोष, धीरता, वीरता, उदारता गंभीरता आदि उत्तम गुणों से हमारा चित्त पूर्ण हो जाय ! सदा निष्काम होकर हम आप का अर्चन वन्दन किया करें, दिन प्रति दिन संसार की आस्था कम होती जाय और आप में हमारी आस्था दिन दूनी रात चौगनी बढ़े । हमारे मन बुद्धि, इन्द्रिय आदि के सब व्यापार आप की प्रीति निमित्त हों ! हे अंतर्दामी भगवन् ! हमारे हृदय में शोध आप का आविर्भाव हो, यह ही अंतिम प्रार्थना है ।

दोः—नवों रसों में पूर्ण जे, भगवत् एक अखंड ।

भोला भजि सो अहर्निश, छांडि कपट पाखंड ॥

भक्ति महारानी का शीश महल

परंब्रह्म परं सत्यं सच्चिदानन्द लक्षणम् ।

अग्रमेयमनिर्देश्यमात्मज्योतिरुपास्महे ॥

छप्पय

भक्ति महल अनूप, सूर्य जहं नाहि प्रकाशत ।

नहिं विद्युत नहिं अग्नि, चन्द्रतारा नहिं भासत ॥

बिना तेल बिनु बाति, नित्य रहता उजियारा ।

ज्योतिन का भी ज्योति, शुद्धचित् तमसे न्यारा ॥

भोला ! यदि हम देखलें, शीशमहल यह दिव्य तम ।

ह. वमें दाखें श्याम ही, लड़ें न हम फिर श्याम सम ॥



साराम:- महाराज ! कल आपने भगवत् को रसरूप बताया था । कृपया आज यह बताइये कि भगवत् रहते कहां हैं ? ठौर ठिकाना जाने बिना कोई किसी की खोज नहीं कर सकता, ठौर ठिकाना जान कर ही किसी का

पता लगा सक्त हैं, और पा भी सक्त हैं, नहीं तो कस्तूरी मृग कीसी मसल होगी ! कस्तूरी नाभी में रखी हुई है और मृग बन में दूँडता २ हैरान हो रहा है ! या वह मसल होगी कि बगल में छोरा नगर में ढंदोरा ! बुद्धिमान् को चाहिये कि जो करना हो, उसका आदि अन्त, हानि लाभ, भली प्रकार विचार ले ! जिस वस्तु की खोज करनी हो, उसका अता पता यथा संभव प्रथम से जान ले ! नहीं तो पीछे पड़ताना पड़ता है, महाराज ! बुरा न मानिये, दूध का जला हुआ छाल फूँक २ कर पिया करता है ! जन्म जन्मांतर के अन्धे के समान अंधेरे स्थानों में घूमते २ लाखों ठोकरें खा चुका हूँ, अब ठोकरें खाने से और आपके समान सन्त महात्माओं का संग करने से कुछ २ आंखें खुलती जाती हैं । अब जो कार्य किया करूँगा, सोच विचार कर किया करूँगा, ऐसा निश्चय कर लिया है, कहा भी है:-

‘बिना विचारें जे करें ते पीछे पड़िताई’

कृपा करके बताइये कि क्या भगवत् का सर्वत्र स्थान है अथवा उन्होंने किसी एक स्थान पर आसन

जमा रक्ता है अथवा उठाऊ चुला ही हैं ? च जहां भक्तों ने स्मरण किया ही सिद्ध होता है कि घृष्य नहीं सके और न भक्तों

मस्तराम:- भाई मास्टर थे, प्रोफेसर भी प्रिंसिपल भी रह चुके हैं, हो कि भगवत् कहां रहें प्रथम सिद्धान्त को च कि भगवत् कहां हैं, पि क्षा हो होगा !

लोभी गुरु लाल तुम्हारे सिद्धान्त होंगे और जरूर देश नेता आदि की पदवी को लुटिया दुबो देते तो खुजा खुजा कर अन्धेरा होता ही है दीवानादि अच्छे २ बड़ी बारह खड़ी प्रश्न ऐसा है जैसे प्रकाश देने का

जमा रक्खा है अथवा आपके और मेरे समान वे भी उठाऊ चूल्हा ही हैं ? चाहे जहाँ घूमते रहते हैं ! सुना है कि जहाँ भक्तों ने स्मरण किया, वहीं पहुँच जाते हैं, इससे तो यह ही सिद्ध होता है कि घूमते रहते हैं, अक्रिय तो कहीं आ जा नहीं सके और न भक्तों का कुछ काज ही संभाल सके हैं ।

मस्तराम:- भाई ! मंसाराम ! ग्रेजुयेट हो तुम तो हेड-मास्टर थे, प्रोफेसर भी बहुत दिनों तक रहे हो, कुछ दिनों तक प्रिंसिपल भी रह चुके हो, फिर भी ऐसा भौंडा सवाल करते हो कि भगवत् कहाँ रहते हैं ? भाई ! यह तो बच्चों को सब से प्रथम सिखाने की बात है । जब तुमको स्वयं ही मालूम नहीं कि भगवत् कहाँ हैं, फिर तो लड़कों को पढ़ाया क्या होगा बहिकाया ही होगा !

लोभी गुरु लालची चेला, दोनों नरक में डेलम डेला ।

तुम्हारे सिखाये हुये लड़के अवश्य ज्ञात-ज्ञेय होगये होंगे और जरूर देश का उद्धार करेंगे ! अच्छा हुआ तुम को नेता आदि की पदवी नहीं दी गई, नहीं तो तुम अवश्य भारत की लुटिया डुबो देते ! सच है "खुदा गंजे को नाखून नहीं देता नहीं तो खुजा खुजा कर ही मर जाय !" शरमाओ मत, चिराग नीचे अन्धेरा होता ही है, पण्डित जी के पढ़ाये हुये लड़के मंत्री दीवानादि अच्छे २ ओहदों पर पहुँच जाते हैं और पंडितजी वही बारह खड़ी पढ़ाते रहते हैं । भाई ! मंसाराम ! तुम्हारा प्रश्न ऐसा है जैसे कोई पूछे कि ब्रह्माण्ड को उष्णता और प्रकाश देने वाला सूर्य कहाँ रहता है अथवा सब को शीतलता

देने वाला और पालन पोषण करने वाला चन्द्र कहां रहता है, अथवा सबको अवकाश देने वाला आकाश कहां रहता है, अथवा प्राणी मात्र का उपकारक सबको जिलाने वाला वायु कहां रहता है अथवा औषधि, वनस्पति को सींचने वाला, कीट, पतंग, पशु, पक्षी मनुष्यादि की प्यास बुझाने वाला जल कहां रहता है अथवा सबको धारण करने वाली पृथ्वी कहां रहती है। जैसे ये प्रश्न हैं इसी प्रकार तुम्हारा प्रश्न है। क्योंकि सूर्य चन्द्रादि सबके निर्वाह करने वाले सब को प्रत्यक्ष हैं, और अपने तेज द्वारा सर्वत्र व्यापक हैं, फिर उन के सम्बन्ध में पूछना ही क्या? इसी प्रकार सबके स्वामी सबके अधिष्ठान, सबके नियन्ता, सब के सत्ता स्फूर्ति देने वाले आनन्द स्वरूप भगवत् सर्वत्र भरपूर हैं, उनके लिये पूछना मूर्खता ही है परन्तु तूने अब तक मूर्खों का ही संग किया है, विद्वानों का संग नहीं किया! धिपयी कामी पुरुषों के साथ में रहा है, संत महात्माओं का समागम नहीं किया! पशु पक्षियों की कहानियाँ सुनी हैं, भगवद्भक्त के चरित्र नहीं सुने! ऊपर से आंखों वाला दीखता है, हिये की फूटी हुई है, फिर भगवत् तुझे कैसे दिखाई दें। तभी पूछता है कि भगवत् कहां रहते हैं, फिर भी अपने को चतुर और विचारवान् मानता है, छाल फूंक २ कर पीता है, ऐसा करना अवश्य बतुराई है, यदि ऐसा करता रहा तो किसी न किसी दिन अवश्य चतुर हो जायगा! भाई! भगवत् कहां नहीं हैं? सर्वत्र भगवत् ही तो हैं! जो कुछ दीख रहा है, सब में भगवत् विराजमान हैं! एकाक्षर रूप ॐकार में भगवत् हैं, सोलह स्वर

और उतांस व्यंजनों में भगवत्
जल विशेष में भगवत् हैं, हस्त
हैं, स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत और
में, यजुर्वेद में सामवेद में और
में, कर्म में, व्याकरण में, निरु
भगवत् हैं! वेदान्त में, सांख्य
वैशेषिक में भगवत् हैं! पुरा
में संहिताओं में नाटक में और
में रामेश्वर में, द्वारिका में और
में, गंगामें, सरस्वती में, नर्म
में गंगरा में और सिन्धु में भ
सब में भगवत् हैं! हरिद्वार
में, कांची में, अवन्तिका में
में, गुप्त प्रांत में, पंजाब में,
प्रांत में भगवत् हैं! भारत
विश्व में अफगानिस्तान में
भगवत् हैं! एशिया में, यूरोप
में और दक्षिण में, पश्चिम
नैऋत में, वायव्य में
लोक में, आदि
लोक में, इन
यम लोक

और छत्तीस व्यंजनों में भगवत् हैं, उदात्त अनुदात्त और स्वरित यत्न विशेष में भगवत् हैं, ह्रस्व, दार्घ्य, प्लुत मात्राओं में भगवत् हैं, स्पृष्ट, ईषट्स्पृष्ट, ईषद्विवृत और विवृत में भगवत् हैं। ऋग्वेद में, यजुर्वेद में सामवेद में और अथर्व वेद में भगवत् हैं ! शिक्षा में, कल्प में, व्याकरण में, निरुक्त में, छन्द में और ज्योतिष में भगवत् हैं ! वेदान्त में, सांख्य में, न्याय में, मीमांसा में और वैशेषिक में भगवत् हैं ! पुराणों में, उपपुराणों में, इतिहासों में संहिताओं में नाटक में और काव्य में भगवत् हैं ! जगन्नाथ में, रामेश्वर में, द्वारिकामें और बद्रीनाथ में भगवत् हैं ! जमना में, गंगामें, सरस्वती में, नर्मदा में, कृष्णा में, कावेरी में, सतलुज में घाघरा में और सिन्धु में भगवत् हैं ! हिमालय में और विंध्याचल में भगवत् हैं ! हरिद्वार में, अयोध्या में, मथुरा में, काशी में, काँची में, अवन्तिका में और द्वारिका में भगवत् हैं ! बंगाल में, युक्त प्रांत में, पंजाब में, बम्बई में, मद्रास में, और मध्य प्रांत में भगवत् हैं ! भारत में, ब्रह्मा में, जापान में, चीन में, तिब्बत में अफगानिस्तान में, ईरान में, अरब में, और रूस में भगवत् हैं ! एशिया में, यूरोप में, अफरीका में, उत्तरी एमेरिका में और दक्षिण में, पश्चिम में, उत्तर में ईशान में, आग्नेय में, नैऋत में, वायव्य में, पाताल में, और स्वर्ग में भगवत् हैं ! लोक में, आदित्य लोक में, वरुण लोक में, अग्नि लोक में, इन्द्रलोक में, उपेन्द्र लोक में, पृथ्वी लोक में, यम लोक में, चन्द्र लोक में, ब्रह्म लोक में, विष्णु लोक में और शिव लोक में भगवत् हैं ! भूत में, वर्तमान में, और

भविष्य में भगवत् हैं ! निमेष में, काण्ठा में, क्षण में और मूहूर्त्त में भगवत् हैं ! दिन में, रात में, सप्ताह में पक्ष में, मास में, ऋतु में, अयन में और सन्वत्सर में भगवत् हैं ! युग में मन्वन्तर में, कल्प में और कल्प के क्षय में भगवत् हैं ! सतोगुण में रजो, गुण में और तमोगुण में भगवत् हैं ! आकाश में, वायु में, तेज में, जल में और भूमि में भगवत् हैं ! शब्द में, स्पर्श में, रूप में, रस में, और गंध में भगवत् हैं ! प्राण में, अपान में व्यान में, समान में, और उदान में भगवत् हैं ! श्रोत में, त्वचा में, चक्षु में, रसना में प्राण में भगवत् हैं ! बाणी में पाणि में, पाद में, उपस्थ में और वायु में भगवत् हैं ! मन में, बुद्धि में, चित्त में और अहंकार में भगवत् हैं ! जरायुज में अंडज में, स्वेदज में और उद्भिज्ज में भगवत् हैं ! देव में, दनुज में, मनुष्य में, कीट में पतंग में भगवत् हैं ! स्थूल में, सूक्ष्म में, कारण में, और कूटस्थ में भगवत् हैं ! जाग्रत् में, स्वप्न में, सुषुप्ति में और तुर्या में भगवत् हैं ! विश्व में, तैजस में, प्राज्ञ में, और साक्षी में भगवत् हैं ! विराट् में, हिरण्यगर्भ में, ईश्वर में, और महेश्वर में भगवत् हैं ! ब्राह्मण में क्षत्रिय में, वैश्य में और शूद्र में भगवत् हैं ! हिन्दू में, मुसलमान में, ईसाई में, जैन में, बौद्ध में, यहूदी में, और पारसी में भगवत् हैं ! शेख में, सैयद में, मुगल में, और पठान में भगवत् हैं ! सुन्नी में, शिया, सूफी में भगवत् हैं ! स्त्री में पुरुष में, नपुंसक में, भगवत् हैं ! हे मंसारांम ! ब्रह्मासे लेकर चैटी पर्यंत चराचर जगत् में भगवत् सर्वत्र व्यापक हैं ! यह ही बात नीचे भुजंगी छन्द में कही है:-

ईश्वर सर्वत्र है ।

तुझे देखता हूं जहां देखता हूं, छुपा देखता हूं अथां देखता हूं ।
 यहां है वहां है कहां तू नहीं है, नहीं ठौर कोई जहां तू नहीं है ॥ १ ॥

सभी धर्म में तू सभी पंथ में तू, तुही आदि में है तथा अन्त में तू ।
 सभी रूप तेरे सभी नाम तेरे । सभी देश तेरे सभी धाम तेरे ॥ २ ॥

तुही है स्वरो में तुही व्यंजनों में, तुही संधियों मात्र में बिन्दुओं में ।
 तुही है पदों में तुही वाक्य मांही, तुही है वेद में और वेदांग मांही ॥ ३ ॥

तुही मंदिरों में तुही मस्जिदों में, तुही चर्च में मकबरों, मघटों में ।
 बनों में तुही है तुही है घरों में, नदी पर्वतों में तुही कंदिरों में ॥ ४ ॥

तुही वृक्ष हो फोड़ वृक्षी उगे है, तुही पक्षी होके हवा में उड़े है ।
 तुही गाय होवे तुही अश्व होवे, तुही देव मानुष्य गंधर्व होवे ॥ ५ ॥

तुही विप्र हो वेद चारों पढ़े है, तुही क्षत्र हो युद्ध मांही लड़े है ।
 बने वैश्य तू द्रव्य कूं है कमाता, करे चाकरी शूद्र तुही काहाता ॥ ६ ॥

तुही ब्रह्मचारी गृहस्थी तुही है, तुही है तपस्वी यती भी तुही है ।
 तुही ध्येय ध्याता तुही ध्यान होवे, तुही ज्ञेय ज्ञाता तुही ज्ञान होवे ॥ ७ ॥

तुही पूज्य होवे तुही हो पुजारी, तुही भक्त तू भक्त ब्राता मुरारी ।
 तुही यज्ञ कर्ता तुही दान दाता, तुही स्वर्ग से भूमि पै लौट आता ॥ ८ ॥

तुही रोग सं ग्रस्त है भोगियों में, बने वीर्य वाला तुही योगियों में ।
 कहीं होय है अज्ञ तू मूढ़ मानी, कहीं संत हो भक्त ज्ञानी अमानो ॥ ९ ॥

कहीं हो विधाता कहीं इन्द्र होवे, कहीं विष्णु होवे कहीं रुद्र होवे ।
 बने शारदा तू शची तू बने है । बने है रमा तू उमा हू बने है ॥ १० ॥

तुही बुद्धि मांही तुही चित्त मांही, अहंकार मांही तथा देह मांहीं ।
 सुने भी तुही बोलता भी तुही है । तुही बैठता भागता भी तुही है ॥ ११ ॥
 तुझे वेद वादी असंगी बताया, अकर्ता अभोक्ता अनंगी अमाया ।
 नहीं तू करे है सभी तू करे है, न तेरे बिना एक पत्ता हिले है ॥ १२ ॥
 बिना पैर चाले बिना हाथ धर्ता बिना चाणी ही वेद उच्चार कर्ता ।
 बिना श्रोत्रश्रोता बिना नेत्र देखे, बिना घ्राण सूंघे बिना जीभ चखे ॥ १३ ॥
 यथा रज्जु की सर्पिणी रज्जु ही है, नदी झांझ की वस्तुतः झांझ ही है ।
 यथा सीप चांदी खरी सीप ही है, तथा वस्तुतः विश्व विश्वेश ही है ॥
 सभी विश्व है साक्ष्य विश्वेश साक्षी, हुआ आपही भास्य है आप भासी ।
 न भूले उसे ही सभी भूल जावे । वही भक्त भोला सयाना कहावे ॥ १४ ॥

हे मंसाराम ! ऊपर मैंने तुझे जितनी वस्तुयें बताई, उन सब में सामान्य रूप से भगवत् व्यापक हैं । अब मैं उन स्थानों को बताता हूं, जहाँ विशेष रूप से भगवत् विद्यमान रहते हैं:-
 जहां भगवत् के अथवा भगवद्भक्तों के चरित्र सुनने में आते हैं जहां भगवत् के गुणों का कीर्तन होता है, जहां भगवत् का स्मरण, पूजन अर्चन, होता है, जहां भगवत् की स्तुति गाई जाती है वहां भगवत् विशेष रूप से रहते हैं ।
 जो अपने को भृत्य और भगवत् को स्वामी मान कर अथवा जो भगवत् को अपना सखा मान कर उनका भजन करते हैं, भगवत् ऐसे भक्तों के हृदय में सदा वास करते हैं । जो अपना सर्वस्व भगवत् के अर्पण करते हैं, भगवत् सर्वदा उनके साथ रहते हैं, रऔ शीघ्रही संसार समुद्र से उनको पार करते हैं । ऐसा भक्त

तुम्हारे लक्ष्य तो पूजने योग्य है ।
 जो न से बाधा से, शरीर से किसी के
 जहाँ के हृदय में भगवत् सदा निवास करते
 जहाँ होता है, वहाँ भगवत् वास करते हैं,
 जो पार नहीं होता, वहाँ भगवत् निवास
 जो न भोक्ता नहीं होते, उनके यहाँ भगवत्
 जो न भोक्ता से अधिक सामग्री एकाग्र न
 जो न भगवत् अनुग्रह करते हैं । जो भक्त
 जो न भगवत् सर्वदा उनके साथ
 जो न भगवत् संतुष्ट रहते हैं, भगवत्
 जो न भगवत् आहार विहार करने वाले
 जो न भगवत् करते हैं । जो भगवत् नाम, भ
 जो न सदा सत्याश्रयों का पटन पाठ
 जो न शीघ्र पूर्ण करते हैं । जो सुख
 जो न दुःखों पुरणों के ऊपर करण
 जो न प्रसन्न होते हैं और पाप
 जो न भगवत् करण करके
 जो न भगवत् लगते हैं उनके
 जो न भगवत् आने नहीं वे
 जो न भगवत् होते हैं, उनके पाप
 जो न भगवत् को चर में रहते हैं
 जो न भगवत् ने है
 जो न भगवत्

भगवत् के समान ही पूजने योग्य है।

जो मन से वाणी से, शरीर से किसी को पीड़ा नहीं देते उन भक्तों के हृदय में भगवत् सदा निवास करते हैं। जहाँ सत्य व्यवहार होता है, वहाँ भगवत् वास करते हैं, जहाँ चोरी जूवा मदिरा पान नहीं होता, वहाँ भगवान् निवास करते हैं। जो स्त्री पुरुष व्यभिचारी नहीं होते, उनके यहाँ भगवत् सदा रहते हैं। जो आवश्यकता से अधिक सामग्री एकत्र नहीं करते, उनके ऊपर भगवत् सदा अनुग्रह करते हैं। जो भक्त बाहर और भीतर से पवित्र रहते हैं, भगवत् सर्वदा उनके साथ रहते हैं। जो लोग यथा लाभ में संतुष्ट रहते हैं, भगवत् उनके समीप ही वसते हैं। जो युक्त आहार विहार करने वाले हैं उनके ऊपर भगवत् सदा दया करते हैं। जो भगवन्नाम, भगवत् मंत्र का जप करते हैं और सदा सत्शास्त्रों का पठन पाठन करते हैं, भगवत् उनके मनोरथ शीघ्र पूर्ण करते हैं। जो सुखी पुरुषों के साथ मित्र भाव रखते हैं, दुःखी पुरुषों के ऊपर करुणा करते हैं, पुण्यात्माओं को देख कर प्रसन्न होते हैं और पापी पुरुषों का संग नहीं करते, उनके ऊपर भगवत् करुणा करके शीघ्र उनका उद्धार करते हैं। जो लोग आसन लगाते हैं उनके पास शीतोष्ण, सुख दुःख, आदि द्वन्द्व भगवत् आने नहीं देते ! जो विरक्त पुरुष प्राणायाम परायण होते हैं, उनके पाप भगवत् क्षीण कर देते हैं। जो इन्द्रियों को वश में रखते हैं, उनको भगवत् आरोग्य रखते हैं दीर्घायु देते हैं और उत्तम लोकों की प्राप्ति कराते हैं, जो लोग धारणा, ध्यान और समाधी करते हैं, जिसको संसार के पदार्थों

में वैरग्य होता है, जो शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा समाधान पद साधन संपन्न होते हैं, जो मुमुक्षु होते हैं, उन पर भगवत् परम अनुग्रह करते हैं, जो महावाक्यों का गुरु मुख से श्रवण करते हैं, श्रवण किये हुये का ऊहापोह द्वारा मनन करते हैं और सदा भगवत् के ध्यान में यानी भगवत्तत्त्व के अनुसंधान में लगे रहते हैं, ऐसे पुरुषों को भगवत् अपना आत्मा ही मानते हैं और उनके समीप से भी समीप है।

हे मंसाराम ! यद्यपि भगवत् समान हैं, न वे किसी से राग करते हैं और न किसी से द्वेष करते हैं तो भी जो भक्त भगवत् शरण में आते हैं, उन पर भगवत् अनुग्रह करते हैं और जो भगवत् विमुख होते हैं, उनका निग्रह करते हैं, जैसे अग्नि राग द्वेष रहित है तो भी पास आनेवाले को प्रकाश और उष्णता देती है, इसी प्रकार भगवत् भी भक्तों पर अनुग्रह और अभक्तों का निग्रह करते हैं। भगवत् स्वरूप से निर्विकार अक्रिय और और असंग हैं तो भी अपनी शक्ति द्वारा वे भक्तों और अभक्तों पर अनुग्रह और निग्रह करते हैं। भगवत् की शक्ति विद्या और अविद्या रूप से दो प्रकार की है। विद्या द्वारा भगवत् भक्तों पर अनुग्रह करते हैं और अविद्या द्वारा अभक्तों का विग्रह करते हैं। जैसे दर्पण के समीप जैसा मुख लेकर जाओ, उसी प्रकार दिखाई देता है इसी प्रकार भगवत् भी भक्त के लिये सौम्य हैं, और अभक्त के लिये क्रूर हैं ! सौम्यता और क्रूरता में भक्त अभक्त का भाव ही कारण है, भगवत् तो समान ही हैं ! इसीलिये यह लोकोक्ति है कि भगवत् कैसे ? जैसे को तैसे ! जो पुरुष धन की

कामना, स्त्री पुत्रादि की परलोक की कामना, ऐश्वर्य, इन सब से मुक्त होता है भगवत् प्रेम लिपे दान देता है, भक्तिक, तप करता है, सब इन्द्रियों का व्यस्य का व्यापार है कि जो सब से उज्ज्वल हृदय कमल भक्ति महारानी का है जो भक्त उस भगवत् के दर्शन महल में जाकर भक्तियों का अभेद वह ही भगवत् है। सब महलों है। भक्त का हृदय भक्त उसको भक्त प्रेयस्व होता है इसी प्रकार भक्त महाराज यथार्थ ही

तितिक्षा, श्रद्धा, मुमुक्षु होते हैं, उन अर्थों का गुरु मुहापोह द्वारा मतानी भगवत्तत्त्व भगवत् अपना आत्म है।

न हैं, न वे किसी हैं तो भी जो अनुग्रह करते हैं और करते हैं, जैसे अविप्रकाश और उपर अनुग्रह और अमर्त्य विचार अक्रिय वे भक्तों और अमर्त्य की शक्ति विद्या द्वारा भगवत् अमर्त्यों का विग्रह कर जाओ, उसी प्रभक्त के लिये सौख्य और कूरता में भक्तान ही हैं ! इसीलिये तैसे ! जो पुरुष

कामना, स्त्री पुत्रादि की ममता, विषय भोग की लालसा, लोक परलोक की नामना, धर्माधर्म की चिन्ता, ब्रह्मादि देवताओं का ऐश्वर्य, इन सब से मुख मोड़ कर भगवत् प्रेम के लिये कर्म करता है भगवत् प्रेम के लिये ब्रह्म करता है भगवत् प्रेम के लिये दान देता है, भगवत् प्रेम के लिये कायिक, वाचिक, मानसिक, तप करता है, भगवत् प्रेम के लिये जप करता है, जिसकी सब इन्द्रियों का व्यापार, सब प्राणों का व्यापार, तथा अंतःकरण का व्यापार भगवत् प्रेम के लिये होता है ! सारांश यह है कि जो सब से उपराम होकर भगवत् प्रेम में रंग जाता है उसका हृदय कमल भगवत् का मुख्य निवास स्थान है, वह ही भक्ति महारानी का शीश महल है वहीं भगवत् सदा कोड़ा करते हैं ! जो भक्त उस शीश महल में जाकर भक्ति महारानी और भगवत् के दर्शन करता है, वह कृत्य कृत्य हो जाता है ! शीश महल में जाकर भक्ति, भगवत् और भक्त का भेद नहीं रहता, तीनों का अभेद हो जाता है ! वह ही भक्ति की पराकाष्ठा है, वह ही भगवत् का परम धाम है और वह ही भक्त का आत्मा है ! सब महलों का शीश होने से वस्तुतः शीश महल वह ही है ! भक्त का हृदय कमल उस की प्राप्ति करने वाला है इसलिये भक्त उसको भी शीश महल कहते हैं जैसे प्रज्ञान द्वारा ब्रह्म का प्रत्यक्ष होता है इसलिये वेद में प्रज्ञान को ब्रह्म रूप कहा है इसी प्रकार शीश महल भगवत् की प्राप्ति करने वाला होने से भक्ति महारानी का शीश कहलाता है, ऐसा भक्तों का कथन यथार्थ ही है ! वहां सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि नहीं प्रकाशते

और न यहां बुद्धि, मन, और इन्द्रियाँ प्रकाशती हैं, क्योंकि ये सब यहां तक पहुंच ही नहीं सकते, यह जड़ हैं और उसी परमात्मा रूप शीश महल को चेतनता से चेतन से भासते हैं। परमात्मा रूप शीश महल स्वयं प्रकाश है, किसी अन्य प्रकाश की अपेक्षा वहीं रखता! इस भगवत् रूप शीश महल को जो भक्त देख लेता है, उसको सब भगवत् स्वरूप ही भासते हैं! ब्रह्मा से खंडों तक में वह भगवत् को ही देखता है! किसी से राग अथवा द्वेष नहीं करता! हे मंसाराम! ऊपर जिन २ भिन्न पदार्थों में भगवत् व्यापक बताये हैं उन सब को भिन्न २ देखता हुआ भी भगवद्भक्त भगवत् में भिन्नता नहीं देखता इसलिये समदर्शी होता है, ऐसे भक्त से भगवत् कभी अप्रत्यक्ष नहीं होते और न कभी भगवत् से ऐसा भक्त अप्रत्यक्ष होता है, यह ही बात भगवान् ने गीता के छठे अध्याय में कही है, कि जो मुझ ईश्वर को सर्वत्र देवता है और जो सब को मुझ ईश्वर में देखता है, मैं उस से कभी नहीं छुटता और न वह कभी मुझ से छुटता है। हे मंसाराम! जैसे महाराजा आदिकों के शीश महल में जब मनुष्य जाता है तो एक ही अपने को अनेक रूप हुआ देख कर प्रसन्न होता है और जब कोई कुत्ता शीश महल में जाता है तो एक के अनेक हुये न जान कर वस्तुतः भिन्न २ कुत्ते समझ कर भौंकते २ पागल होकर मर जाता है इसी प्रकार जो भक्ति महारानी के शीश महल में हो आता है वह संसार रूप माया के शीश महल में अपने ही अनेक रूप हुये देख कर प्रमुदित होता है और जो मूर्ख भक्ति महारानी के महल

में नहीं गये हैं, वे एक दूसरे को पोंछा देते हैं, जलते हुये कण्ट पाते हैं, अमेरिका में कही थी कि सन्तान होने से भगवत् एक के ही अनेक हैं, ऐसा कुत्ते के समान एक दूसरे हैं, पानी सब भगवत् (Dog) हो गये हे मंसाराम! यदि सब तो कभी भी कोई दुष्टों को चाहे जितनी फिरकों से भी अधिक् किरौमिशान, चर्च और जैनियों में श्वेताम्बर कोई विचित्र आम्बरी सब का मूल भगवत् मात्मा सब पर अहे मंसाराम! यह मेरे हे मंसाराम है, उस को फिर उसके देखे हुये बड़ी से बड़ी

हैं, क्योंकि ये
उसी परमात्मा
हैं। परमात्मा
श की अपेक्षा
जो भक्त देख
ते हैं! ब्रह्मा से
किसी से राग
जिन २ भिन्न
भिन्न २ देखता
देखता इसलिये
अत्यक्ष नहीं होते
होता है, यह ही
है, कि जो मुक्त
मुक्त ईश्वर में
वह कभी मुक्त
आदिकों के शीश
को अनेक रूप
रुता शीश महल
वस्तुतः भिन्न २
जाता है इसी
ही आता है वह
नेक रूप हुये देख
हारानी के महल

में नहीं गये हैं, वे एक दूसरे को भिन्न २ समझ कर राग द्वेष
करके दूसरे को पोड़ा देते हैं और स्वयं भी ईर्ष्या कर के क्रोध
से जलते हुये कष्ट पाते हैं, यह ही बात स्वामी रामतीर्थ ने
अमेरिका में कही थी कि यद्यपि सब जीव एक भगवत् की
सन्तान होने से भगवत् स्वरूप ही हैं तो भी माया से मोहित हुये,
एक के ही अनेक हैं, ऐसा न जान कर शीश महल में घुसे हुये
कुत्ते के समान एक दूसरे को देख भौंकते हैं और कष्ट पाते
हैं, यानी सब भगवत् (God) होकर भी विषय ज्ञान से
श्वान (Dog) हो गये हैं! शोक! शोक!! महा शोक!!
हे मंसाराम! यदि सब मनुष्य भक्ति महारानी का महल देख लें
तो कभी भी कोई दुःखी न हो, हिन्दुओं के ब्राह्मणादि चार
वर्णों की चाहे जितनी जातियां बन जायं, मुसलमानों के बहत्तर
फिरकों से भी अधिक हो जायं, ईसाइयों के रोमन, कैथोलिक,
फिरीमिशन, चर्च ऑफ इंग्लैंड आदि कितने ही चर्च बन जायं,
जैनियों में श्वेताम्बरी, पीताम्बरी अं र दिगम्बरी से भी अधिक
कोई त्रिचि ताम्बरी बन जायं तो भी किस में कुछ झगड़ा न हो!
सब का मूल भगवत् को न जानने का सब झगड़ा है! पर-
मात्मा सब पर अनुग्रह करें और सब की आंखें खोल दें। हे
मंसाराम! यह मेरी हार्दिक; उत्कट इच्छा है।

हे मंसाराम! जो भक्ति महारानी के महल को देख लेता
है, उस को फिर कुछ देखना, सुनना शेष नहीं रहता, सब देश
उसके देखे हुये हो जाते हैं और सब शास्त्र सुने हुये हो जाते हैं,
बड़ी से बड़ी कहानी उसके लिये "फरफुर" हो जाती है।

मंसाराम:-महाराज ! 'फिरफुर' कैसी ?

मस्तराम:-भाई मंसाराम ! एक चक्रवर्ती महाराजा था । उसने अपने राज्य में एकवार यह मनादी करवाई कि जो कोई मुझे ऐसी कहानी सुनावेगा कि जिस का कभी अन्त ही न हो, मैं उसे अपना राज्य दे दूंगा । नहीं तो गद्दे पर चढ़ा कर देश भर में घुमाऊंगा ! राज्य के लोभ से बहुत से लोग आने लगे और अपनी २ कहानी सुनाने लगे ! किसी की कहानी एक दिन में, किसी की दो दिन में किसी की सप्ताह में, किसी की पक्ष में, किसी की मास में, किसी की ऋतु में, किसी की अयन में किसी की संवत्सर में और किसी की दो चार संवत्सर में समाप्त हो जाय, सब अपना २ मुख काला करवा कर लोक में हंसी करा कर घर लौट जाय ! एक दिन एक विद्वान् ने आकर इस प्रकार कहानी आरंभ की:- महाराज ! सुमेरु पर्वत से भी बड़ा एक महान् पर्वत है ! उस पर्वत में एक बड़ी भारी गुफा है उसमें असंख्य टिड्डियां रहती हैं, गुफा का द्वार एक टींडी मात्र निकल सके, इतना छोटा है ! एक दिन गुफा का द्वार खुला और एक टींडी निकली ! राजा:- फिर ? विद्वान:- फुर ! राजा:- फिर ? विद्वान:- फुर ! राजा:- फिर ? विद्वान:- फुर ! राजा:- यह क्या ? विद्वान:- एक २ टींडी निकलती है ! राजा:- अच्छा फिर ? विद्वान:- फुर ! राजा:- अच्छा ! समझ लिया ! एक २ करके पड़ गई ! आगे क्या हुआ ? विद्वान:- वाह ! क्या कोई बेगार चलनी है ? पूरी कहानी कहंगा ! महाराज समझ गये कि यह पूरे गुरु का पढ़ाया हुआ है, इस की कहानी समाप्त न होगी !

कलनायें अनेक उत्पन्न हो
रहती हैं कलनाओं का अर्थ
अधिष्ठान को जानता है
पूजे वाला पूजता रहेगा,
बाला चुप हो जायगा तब
हो जायगी । महाराज ने
सीप दिया और आप
हैं मंसाराम ! इसीलिये
बेमहल को जो देख लेते
फिर फुर' हो जाती है
तब से लाखों का व्यापार
है और जो ओई पैसे से
से भी बढ़ कर चतुर
चिन्तामणि प्राप्त कर
कहा ही क्या है ! यह
होने से कौड़ी के समान
मणि को प्राप्त कर
राम ! धन से,
कौर्ति से, सब से
में जाकर भगवत्
श्रीण हो जायंगे
जगत् कुछ बाध
हो जायंगे !

कल्पनायें अनेक उत्पन्न होती रहती हैं और समाप्त भी होती रहती हैं कल्पनाओं का अधिष्ठान ज्यों का त्यों रहता है। जो अधिष्ठान को जानता है, उस की कहानी का अन्त, जब तक पूछने वाला पूछता रहेगा, नहीं आ सकता और जब पूछने वाला चुप हो जायगा तब लम्बी से लम्बी कहानी भी सामान्य हो जायगी। महाराज ने ऐसा विचार कर विद्वान् को राज्य सौंप दिया और आप वन में जाकर तपस्या करने लगे। हे मंसाराम ! इसीलिये मैंने ऊपर कहा था कि भक्ति महारानी के महल को जो देख लेता है, उसके लिये बड़ी से बड़ी कहानी 'फिर फुर' हो जाती है। हे मंसाराम ! लोक में जो कोई एक रुपये से लाखों का व्यापार करने लगे वह चतुर समझा जाता है और जो ओई पैसे से ही करोड़ों का व्यापार करे तो वह उस से भी बढ कर चतुर समझा जाता है तो जो कोई कौड़ी से चिंतामणि प्राप्त कर ले वह सब से बढ कर चतुर है, इसमें कहा ही क्या है ! यह देह पृथ्वी तत्व का बना हुआ भस्म रूप होने से कौड़ी के समान ही है। इस देह से जो भक्ति रूप चिंतामणि को प्राप्त कर लेता है वह ही चतुर है इसलिये हे ? मंसाराम ! धन से, ऐश्वर्य से, स्त्री से, पुत्र से, यश से, कीर्ति से, सब से मुख मोड़ कर भक्ति महारानी के शीश महल में जाकर भगवत् के दर्शन कर आओ ! फिर तुम्हारे सब पाप क्षीण हो जायेंगे सब दुःख मिट जावेंगे ! फिर तुम को बाहर का जगत् कुछ बाधा न करेगा ! दुःख सुख हो जायेगा ! शत्रु मित्र हो जायेंगे ! काम तुम को आराम देगा, क्रोध से प्रबोध होगा,

छोम से क्षोभ न होगा, चिंता चिन्तामणि हो जायगी ! रोग भी योग हो जायगा ! सारांश यह है कि सर्व क्लेशों से मुक्त हो कर तुम परम शांति का अनुभव करोगे ! अच्छा ! ब्रह्मा, विष्णु, शंकर आदि भगवत् के सखाओं को और सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती, आदि भक्ति महारानी की सहेलियों को धारम्बार नमस्कार !

शीश महल वृत्तान्त शुभ पढ़े सुने मन लाय ।

भोला भगवत् की कृपा भेद बुद्धि मिट जाय ॥

जीव के अस्तित्व

वां विदित्वा प्रविलेनं दन्ध
येनी याति परं स्यात्

मिन्नं यदि कुशाग्र

भूम्न तत्त्व क्षत्रज

एत हृदा दृष्ट भि

है भूतों से भिन्न

भोला ! भगवद्भक्त

को मायाके भक्त



मन्त्रा है जबकि पृथि

को ! शरीर पृथ्वी आ

तलों का समुदाय है

ही जीव है, भिन्न य

होती है, खाद पर

के से भिन्न जी

जीव के अस्तित्व में आक्षेप ।

यां विदित्वाऽखिलं दन्धं निर्मथ्याऽखिलवर्त्मना ।
योगी याति परं स्थानं सा मां पातु सरस्वती ॥

छप्पय

निर्मल बुद्धि कुशाग्र सार निस्सार लखत है ।
भूक्ष्म तत्व क्षेत्रज्ञ अज्ञ नहीं जानि सकत है ॥
घट दृष्टा दट भिन्न त्योंहि भूतों का दृष्टा ।
है भूतों से भिन्न शुद्ध चिन्मायिक लपटा ॥
भोला ! भगवद्भक्त ही भगवत् दर्शन करि सकें ।
जो मायाके भक्त हैं, ते नहिं माया तरि सकें ॥



सातमः—प्रहाराज ! आप ने भक्ति का स्वरूप कहा, भगवत् का स्वरूप बताया और भक्तों का महिमा कही और वेदमें भा ईश्वर तत्व के जानने के लिये कर्म, उपासना और ज्ञान तीन उपाय बताये हैं परन्तु यह सब तो तब हो सकता है जबकि पृथिवी आदि पंच भूतों से भिन्न कोई जीव तत्व हो ! शरीर पृथ्वी आदि पाँच तत्वों से उत्पन्न हुआ है, पाँच तत्वों का समुदाय ही जीव है, यानी उन पाँचों के मेल का नाम ही जीव है, भिन्न कोई जीव नहीं है क्योंकि जैसे खाट अलग होती है, खाट पर सोने वाला पुरुष अलग होता है इसी प्रकार देह से भिन्न जीव होना चाहिये, देह से भिन्न जीव रूप कोई पदार्थ

देखने में नहीं आता ! यदि होता तो अवश्य-देखने में आता ! खाट का एकाद पाया अथवा पट्टी टूट जानेसे पुरुष का कुछ विगड़ता नहीं इसी प्रकार यदि जीव देह से भिन्न हो तो एकाद तत्व के नाश होने पर जीव का नाश न होना चाहिये । जैसे खाट का एकाद अंग नष्ट होजाने से खाट नष्ट होजाता है इसी प्रकार देह में के एकाद तत्व के नष्ट होजाने से बाकी के चार तत्वों का नाश भी देखने में आता है इसलिये खाट पर बैठे हुए पुरुष के समान देह के तत्वों से जीव भिन्न नहीं है । किन्तु पांच तत्वों का समुदाय ही जीव है । जहां समुदाय नहीं होता वहां जीव भी नहीं होता और जहां समुदाय होता है, वहीं जीव दिखाई देता है इसलिये अन्वयव्यतिरेक से तत्वों का समुदाय ही जीव है, यदि प्राणी जल नहीं पीता तो जल तत्व नष्ट हो जाता है और समुदाय का भंग हो जाने से जीव नष्ट हो जाता है । यदि श्वास बन्द हो जाय तो आकाश नष्ट हो जाता है भोजन न करे तो अग्नि नष्ट होजाता है और व्याधि होने से अथवा सूजन चढ़ जाने आदि से पृथिवी तत्व नष्ट होजाता है । इस प्रकार यदि पांचों में से किसी एक तत्व का नाश हो जाय तो अन्य तत्व भी अपने उत्पत्ति स्थान रूप मुख्य तत्व में मिल जाने से संघात-शरीर समुदाय नष्ट हो जाता है । उपरोक्त पांच प्रकार से किसी एक तत्व के चले जाने पर जीव रहता हो, तो विषय का ग्रहण करे, बोले, सुने अथवा देखे परन्तु ऐसा नहीं होता यानी कोई क्रिया होती हुई नहीं दीखती, जिस से जानने में आवे कि समुदायके नष्ट होजाने पर भी 'जीव'

है। इसलिये पाँच तत्वों के समुदाय को ही जीव कहना चाहिए।
उब 'जीव' नाम का कोई भिन्न पदार्थ है ही नहीं तो परलोक
भा मिथ्या ही है। जब परलोक मिथ्या है तो कोई पुरुष 'गाय'
मुझे तारेगा। इस लोभ से गाय दान करके मर गया तो वह
गाय किसको तारेगा? क्योंकि गाय, गाय का देने वाला और
लेने वाला, ये सब इस लोक में ही लोप हो गये तब उन का
परलोक में कैसे समागम होगा? जिस देहको जला दिया गया,
पशु पक्षी खा गये, अथवा जो वायु में सूत्र गरा अथवा पृथ्वी
में मिल कर पृथ्वी रूपा होगी, वह देह फिर किस प्रकार जी
उठेगा? यदि आप कहो कि तत्वों के समुदाय रूपा देह का नाश
हो जाता है परन्तु देह के मूल भूत कर्म का नाश नहीं होता इस
लिए मूल होने से देह रूपा वृक्ष फिर उपज आता है तो यह आप
का कहना ठीक नहीं है क्योंकि नये वृक्ष के उपज आने का
कारण बीज प्रत्यक्ष देखने में आता है किन्तु नये देह के उत्पन्न
होने का कारण रूप कर्म बीज किसी स्थान पर देखने में नहीं
आता। मूल वृक्ष फिर उत्पन्न नहीं होता किन्तु दूसरे बाज में
से वृक्ष उत्पन्न होता है, फिर मरा हुआ प्राणी कैसे उत्पन्न
होगा? शरीर उत्पन्न होने का जो प्रत्यक्ष बीज देखने में आता
है, वह तो प्रथम से ही उत्पन्न हो चुका है, उसीमें से नया देह
उत्पन्न होता है, बीज उत्पन्न होने के बाद जब वृक्ष नष्ट हो जाता
है, तो फिर नहीं उगता किन्तु पहिले बीज में से नया वृक्ष
उत्पन्न होता है, इसी प्रकार जो प्राणी एकवार मर जाता है
वह तो नष्ट ही हो जाता है, उसके बीज से नई संतति उत्पन्न

होती रहती है। इसी प्रकार बीज में से बीज उत्पन्न होता रहता है।

जीवात्मा के स्वरूप का निर्णय।

मस्तराम:-मंसाराम ! दिये हुए दानका, किए हुए कर्म का और जीव का नाश नहीं होता, मात्र शरीर का नाश होता है, जीव तो इस शरीर में से निकल कर दूसरे शरीर में चला जाता है, जैसे लकड़ी जल जाने से लकड़ी में रहे हुए अग्नि का नाश नहीं होता इसी प्रकार शरीर का नाश होने से उस में रहे हुए जीव का नाश नहीं होता !

मंसाराम:-ब्राह्म ! आप कहते हैं कि अग्नि के समान जीव का नाश नहीं होता, मैं ऐसा मानता हूँ कि लकड़ी जल जाने से अग्नि शान्त होजाता है क्योंकि फिर दिखाई नहीं देता इस से सिद्ध होता है कि उसका नाश होजाता है। इसी प्रकार जीव का भी नाश होजाता है। क्योंकि देह के नष्ट होजाने के बाद जीव कहीं देखने में नहीं आता ! जैसे लकड़ी जलने के बाद शांत हुआ अग्नि नष्ट हो जाता है क्योंकि उसकी गति, प्रमाण अथवा स्थिति कुछ भी जानने में नहीं आती, यानों न तो यह मालूम पड़ता है कि वह कहाँ चला गया, न यह जानने में आता है कि वह कितना बड़ा है और न यह देखने में आता है कि कहाँ पर स्थित है। इस से सिद्ध होता है कि जीव है ही नहीं, होता तो अवश्य जानने में आता !

मस्तराम:-भाई अग्नि काठ का आश्रय है, लकड़ी के सहारे अग्नि जलने में आता है, जब लकड़ी जल जाती है तो

अग्नि के आश्रय रूप लकड़ी के नष्ट हो जाने से अग्नि स्वयं ग्रहण करने में नहीं आता और सूक्ष्म होने से तथा आकाश के समान सर्वत्र व्यापक और नित्य होने से जानने में नहीं आता, इसी प्रकार देह का नाश हो जाने पर जीव अपने आश्रय रूप देह के नष्ट हो जाने से, स्वयं सूक्ष्म होने से और आकाश के समान सर्व व्यापक और नित्य होने से जानने में नहीं आता ! यदि मंथन करने से पूर्व काष्ठ में अग्नि न होवे तो काष्ठ के मंथन मात्र से अग्नि प्रकट न होना चाहिये । काष्ठ में पूर्व अग्नि मौजूद है, मंथन से मात्र प्रकट हो आता है । जैसे कि तिलों के पेलने से तेल प्रकट हो आता है जिस पदार्थ में तेल नहीं होता, उसे चाहे जितना पेलो, कभी तेल नहीं निकलता । इसी प्रकार यदि काष्ठ में अग्नि न होवे तो मंथन करने पर भी प्रकट न होवे परन्तु अग्नि सर्वत्र है इसलिये काष्ठ को मथने से प्रकट हो आता है । इसी प्रकार जीव सर्वत्र है, भूतादि के संयोग होने से, यह मात्र उनमें प्रकट जानने में आता है और संयोग का नाश होने से प्रकट दीखना बन्द हो जाता है, नष्ट नहीं होता ! इसलिये ऐसा समझना चाहिये कि शरीर का नाश होने से जीव आकाश के समान रहता है और अग्नि के समान सूक्ष्म होने से जानने में नहीं आता । जो विज्ञानमय अग्नि प्राणों को धारण करता है, उस का नाम जीव है । देह में वायु से अग्नि की स्थिति है इसलिये वायु ही विज्ञानमय जीव को धारण करने वाला है । श्वास निश्वास रूप वायु के रुक जाने से जीव नष्ट यानी अदृश्य हो जाता है । शरीर में

रहा हुआ वह विज्ञानमय अग्नि जब नष्ट-अदृश्य हो जाता है तब देह अचेतन हो कर पृथिवी पर गिर पड़ता है और पृथिवी में लय हो जाता है, सब स्थावर और जंगम शरीरों को यह ही गति होती है यानी आकाश का भाग आकाश में मिल जाता है, पवन भी आकाश में रहने वाला होने से आकाश में चला जाता है और अग्नि पवन के आचार से रहा हुआ होने से, पवन के साथ चला जाता है। इस प्रकार आकाश, पवन और अग्नि ये तीन भूत तो आकाश में रहते हैं और जल और पृथिवी ये दो भूत पृथिवी में रहते हैं, मूर्तिमान देहधारी के देह के तीन तत्त्व आकाश, वायु और अग्नि मूर्ति रहित हैं इसलिये जहां आकाश रहता है, वहीं पवन रहता है और जहाँ पवन रहता है, वहाँ ही अग्नि रहता है। जल और पृथिवी मूर्ति वाले हैं, इसलिये वे दोनों साथ रहते हैं।

मंसाराम:-प्रहाराज ! शरीर धारियों के शरीर में अग्नि, वायु, आकाश, जल और पृथिवी रहे हुये हैं, यह बात तो समझ में आती है परन्तु शरीर में रहे हुये जीव का क्या लक्षण है ? यह मुझ से कहिए ? जो शरीर पांच भूतों से उत्पन्न हुआ है उस शरीर में रह कर जो पांच विषयों से प्रीति करता है और जो पांच ज्ञानेन्द्रियों के ज्ञान का साधन होने से चेतन जान पड़ता है, वह जीव कौन है ? उसको मैं जानना चाहता हूँ। रुधिर मांस, मेदा, स्नायु और अस्थि का समुदाय रूप यह शरीर जब बण्ट हो जाता है तब शरीर में जीव दिखाई नहीं देता। यदि पांच भूतों का समुदाय रूप शरीर बिना जीव का जड़ होय तो

जीव के अस्तित्व में

तो वह मानस पोड़ा होता है

जहाँ प्रहाराज पाँचे शरीर

तो तो कोई कुछ करना है तो

तो जगत् होता है तो दोनों

तो ही देता, इसलिये मन ही

तो जगत् नहीं है। मनने युक्त

तो ही, पाँचे मन क्या कुछ

तो ही नो सुझता। जब

तो ही पर भा नडाँ देखता

तो ही पर भा नहीं सुन

तो ही पर भी स्वाद

तो ही को नही जानता

तो करता है ? शोक क

तो ही कोन करता है ?

तो ही धन्यारण करता

मंसाराम:-म

तो अपने सजातीय

तो गुण दोनों आ

तो में से उत्पन्न

तो ही वि

तो ही

तो ही

तो ही

तो ही

तो ही

तो ही

तो ही

तो ही

तो ही

तो ही

तो ही

तो ही

शरीर को जब मानस पीड़ा होती है, तो उस पीड़ा को कौन जानता है? महाराज यदि शरीर जीव नहीं है तो मन जीव है क्योंकि जो कोई कुछ कहता है तो कान से सुनने में आता है, यदि मन व्यग्र होता है तो दोनों कान खुले रहने पर भी कुछ सुनाई नहीं देता, इसलिए मन ही जीव है, मनके सिवाय कोई दूसरा जीव नहीं है। मनसे युक्त नेत्रों से ही सब लोग पदार्थों का देखते हैं, यदि मन व्याकुल होता है तो खुली हुई आंखों से भी कुछ नहीं सूझता। जब मनुष्य निद्रा में पड़ा होता है तो नेत्र होने पर भी नहीं देखता, नासिका होने पर भी नहीं सूंघता, कान होने पर भी नहीं सुनता, मुख होने पर भी नहीं बोलता, जिह्वा होने पर भी स्वाद को नहीं जानता और त्वचा होने पर भी स्पर्श को नहीं जानता, शरीर में हृष कौन करता है? क्रोध कौन करता है? शोक कौन करता है? उद्विग्न कौन होता है? इच्छा कौन करता है? चिंतन कौन करता है? और कौन वाणों का उच्चारण करता है?

मस्तराम:-भाई! जिस शरीर में जो श्रोत्र इन्द्रिय है, वह अपने सजातीय शब्द को सुनती है क्योंकि श्रोत्रेन्द्रिय और शब्द गुण दोनों आकाश के सम्बन्ध वाले हैं इसी प्रकार पाँचों भूतों में से उत्पन्न हुआ मन भी एक इन्द्रिय है। इसलिये वह पाँचों विषयों को ग्रहण करता है। मन पाँचों इन्द्रियों का साधन है, यह मन शरीर को नहीं चला सकता, अन्तरात्मा ही इस शरीर को चलाता है, वह ही गंध, रस, रूपा, स्पर्श और शब्द को जानता है। वह अन्तरात्मा इस पंच भूतात्मक शरीर में व्यापक

होकर स्थित है और वह ही पाँचों विषयों को ग्रहण करता है। देह के सुख दुःख को भी वह ही जानता है। उसका वियोग होने पर देह किसी सुख दुःख को जान नहीं सकता, जब आत्मा देह का त्याग करता है तब शरीर का अग्नि शांत हो जाता है। पश्चात् न तो शरीर न उष्णता रहती है, और न वह रूप को ग्रहण कर सकता है किन्तु मर जाता है। शरीर ही मरता है, चेतन नहीं मरता, चेतन तो शरीर को छोड़कर चला जाता है, देहके समान नष्ट नहीं होजाता जिस प्रकार स्थूल देहका नाश होजाता है इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर का नाश नहीं होता किन्तु सूक्ष्म शरीरकी बदली हुआ करती है। जैसे पाँच स्थूल भूतोंका स्थूल शरीर बना हुआ है इसी प्रकार सूक्ष्म पाँच भूतों का सूक्ष्म शरीर बना हुआ है। सूक्ष्म भूत समुदाय को शास्त्र-वेत्ता जल कहते हैं! यह सर्व विश्वजलमय है और देहधारियों का देह भी जल ही है। उस जल में ब्रह्माण्ड भर के लोकों को उत्पन्न करने वाला मानस ब्रह्मदेव रहता है। इस मानस ब्रह्म-देव को 'सूत्रात्मा' कहते हैं यानी सूक्ष्म भूतों के बने हुये सूक्ष्म देह में मन रहा हुआ है। यह मन सब लोकों की कल्पना करता है, जिस प्रकार जिसकी कल्पना करता है उसी प्रकार का वह उस को दिखाई देता है। सूक्ष्म शरीर में रहा हुआ 'सूत्रात्मा' जीव है इसको क्षेत्रज्ञ भी कहते हैं। इस क्षेत्रज्ञ में प्रकृति संबन्धी गुण मिले हैं। जब त्रिगुणात्मक मूल प्रकृति के इन्द्रिय आदि विकारों से क्षेत्रज्ञ मुक्त हो जाता है तब उसको ही परमात्मा कहते हैं। यानी जब मन की सब कल्पनायें निर्मल हो जाती हैं

तब जीव उपाधि रहित होने से ब्रह्म रूप हो जाता है। हे मंसाराम ! तू उस क्षेत्रज्ञ को ही आत्मा जान वह ही सब लोगों को सुख देने वाला और सुख रूप है, पूर्वोक्त स्थूल और सूक्ष्म देहों में यह आत्मा रहा हुआ है। जैसे कमल में जलके विन्दु रहते हैं उसी प्रकार आत्मा देह में रहा हुआ है, इस दृष्टान्त से यह समझना चाहिए कि कमल में जल के विन्दु रहने पर भी कमल जल से भिन्न और निर्लेप है इसी प्रकार आत्मा देह में रहने पर भी देह से भिन्न और निर्लेप है। यह क्षेत्रज्ञ नित्य और आनन्द स्वरूप है, यह ही परमात्मा और यह ही सब लोगों के लिये हित रूप है। जब यह आत्मा तम, रज और सत्व इन तीनों गुणों से युक्त होता है तब 'जीव' कहलाता है, जब देह इन्द्रिय और मन चेतन से युक्त होते हैं तब उनको 'जीवगण' कहते हैं। ये 'जीवगण' अनेक प्रकार की चेष्टा करते हैं और जैसे नट डोरी से बन्धी हुई पुतली को नचाता है उसी प्रकार सर्वात्मक ब्रह्म उन से अनेक चेष्टायें कराता है, वह ब्रह्म जीव से भिन्न और असंसारी है, इसको क्षेत्रज्ञ कहते हैं। यह ही चौदह लोकों की प्रवृत्ति का कारण है और यह ही पुण्य पाप का फल देने वाला है, देह का नाश होने पर भी जीव का नाश नहीं होता, और जो ऐसा कहते हैं कि मर गया, यह मूर्ख पुरुषों का मिथ्या वचन है। जीव मात्र एक देह में से दूसरी देह में जाता है और उसका देह पांच भूतों में मिल जाता है इसलिए उसको दूसरा देह धारण करना पड़ता है। आत्मा सर्व प्राणियों में रुका हुआ और गूढ़ होकर

रहा है। तत्त्ववेत्ता पुरुष सुई के अग्र भाग के समान सूक्ष्म बुद्धि से उसको जानते हैं। तात्पर्य यह है कि बंध और इन्द्रियों में लान होकर रहा हुआ आत्मा देह और इन्द्रियों के अज्ञान से ढका हुआ है इसलिये जानने में नहीं आता किन्तु मैं ग्रहण हूँ इस वाक्य को कारण रूप बुद्धि को वृत्ति से आत्मा जानने में आता है और आवरण करने वाले अज्ञान के नाश पूर्वक देहादि से आत्मा का विवेक करने पर आत्मा का साक्षात्कार होता है। जो युक्त आहार विहार करने वाला धीर पुरुष पवित्र होकर पूर्व रात्रि और पिछली रात्रि में योग द्वारा उसकी खोज करता है, वह आत्मरूप से अपने में आत्मा का दर्शन करता है। जब चित्त निर्मल हो जाता है और चित्त की प्रवृत्ति अन्त-मुख हो जाती है तब शुभाशुभ कर्म का त्यागने वाला और प्रसन्न चित्त वाला पुरुष आत्मा में स्थित होकर मोक्ष सुख को भोगता है। जरायुजादि से ढके हुए शरीर और मन में आविर्भूत हुआ जो अग्नि है यानी अग्नि के समान प्रकाश रूप जो पुरुष है, उसको लोग जीव कहते हैं। वह आत्मा प्रजापति सर्वेश्वर है और उसी से यह प्रत्यक्ष सृष्टि का कर्ता नहीं है किन्तु जीव का शुद्ध स्वरूप जो परमार्थ तत्त्व है, उसमें यह सब प्रपंच कल्पित हैं। हे मंसाराम ! इस सब का सारांश यह है कि वस्तुनः परमात्मा अंश अंशोभाव से रहित, एक अद्वितीय अव्यंज सच्चिदानन्दघन है। वह ही परमात्मा अपनी माया शक्ति से इस सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण है, वह सब का नियामक होने से ईश्वर कहलाता है वह

जो परमार्थ का फल है
जो जानता है और च
जो परमात्मा जब
जो जानता है, तब
जो न ईश्वर
जो तात्पर्य यह है
जो जानता है। उ
जो नहीं जान
जो देखता
जो अनुभव
जो अस्ति
जो आत्मा ही
जो मानता है
जो जानता है, और
जो लोक अनित्य
जो मर्जा आदि
जो विषय भो
जो मृगादि चे
जो पदार्थ, शरीर
आत्मा मानता

ही सबको धर्माधर्म का फल देने वाला है, वह ईश्वर सर्वज्ञ है, अपने को जानता है और चराचर सब जगत् को भी जानता है। वह ही परमात्मा जब अपनी अविद्या शक्ति से दबकर अपने को भूल जाता है, तब जीव कहलाता है, जीव न तो अपने को जानता है और न ईश्वर को जानता। अपने को नहीं जानता, इस कहने का तात्पर्य यह है कि अपना यथार्थ रूप नहीं जानता, कुछ का कुछ जानता है। जो अपने को नहीं जानता, वह दूसरे को भी यथार्थ नहीं जान सकता क्योंकि सर्व वस्तुयें अपने २ केन्द्र पर से हो ठोक दिखाई देती हैं। आत्मा सब का केन्द्र है आत्मा पर से देखने से ही सब वस्तुयें यथार्थ दीखती हैं, जो आत्मा को नहीं जानता, वह अपने माने हुये आत्मा) से (वस्तुओं को देखता है, इसलिये मान हुये आत्मा पर से देखने वाले का अनुभव यथार्थ नहीं होता, किन्तु कुछ का कुछ होता है, इसी को अविद्या या विपर्यय ज्ञान कहते हैं। विपर्यय ज्ञान वाला आत्मा ही जीव कहलाता है। यह जीवात्मा अनित्य को नित्य मानता है अशुचि को शुचि मानता है, दुःख को सुख मानता है, और अनात्मा को आत्मा मानता है यानि स्वर्गादि लोक अनित्य हैं, उनको नित्य मानता है। देह में रक्त, मांस, मज्जा आदि सब अशुचि पदार्थ हैं, ऐसे देह को शुचि मानता है विषय भोग दुःख रूप हैं उन को सुख रूप मानता है, पशु, मृगादि चेतन पदार्थ, और शय्या आसन आदि अचेतन पदार्थ, शरीर, इन्द्रिय और मन ये सब अनात्म हैं, इनको आत्मा मानता है। यह जीवात्मा अपने को न जानने से अन्तः

करण के धर्म अपने में मान कर अपने को कर्ता, भोक्ता, मान कर सुखी दुःखी होता है, अनुकूल पदार्थों में राग करता है, प्रतिकूल पदार्थों में द्वेष करता है यानी सुख और दुःख के साधनों की प्राप्ति की इच्छा किया करता है और सुख और दुःख के साधनों की प्राप्ति नहीं चाहता, यह जीवात्मा जिस पदार्थ को अपना मान लेता है, उस की रक्षा करने की हमेशा इच्छा करता है और यदि वह पदार्थ छीन लिया जाय तो दुःखी होता है। सुख की प्राप्ति और दुःख की अप्राप्ति के लिये जीव अनेका अनेक कर्म करता है और कर्म करने से अनेक प्रकार की योनियों में जाकर नाना प्रकार के भोग भोगता है। कभी शुभ कर्म का फल देवादि योनि प्राप्त करता है, कभी शुभाशुभ कर्म का फल मनुष्य जन्म पाता है और कभी अशुभ कर्मों का फल भोगने के लिये पशु कीट पतंगादि योनियों में जन्म लेता है। मनुष्य शरीर के सिवाय अन्य सब शरीर भोग मात्र ही होता है। मनुष्य शरीर में भोग के सिवाय अन्य उच्च लोकों की प्राप्ति कराने वाले कर्म भी होते हैं, ईश्वर की भक्ति भी मनुष्य शरीर में हो सकती है इसलिये मनुष्य शरीर अन्य सब शरीरों से उत्तम है। मनुष्य भिन्न २ प्रकृति वाले होते हुये भी तीन प्रकार के हैं, एक पापी, दूसरे पुण्यात्मा, और तीसरे भगवत् भक्त। पापी मनुष्य जगत् का और अपना अहित करते हैं। दूसरों को पीड़ा देने से पराया अहित करते हैं और पर पीड़ा रूप पाप के फल से आप यम यातना में अनेक कष्ट भोगते हैं। ऐसे लोग वृक्ष, पशु, पक्षी, चांडालादि योनियों में ही घूमते

अपने अस्तित्व में आश्रय
 को स्वर्गादि उच्च लोकों
 पर, तप दानादि शुभ कर्मों का फल
 और फिर कर्म करते
 जाते जाते ही रहते
 और दूसरे जगत् का
 भक्त तो जन्म
 से इनमें से
 करते हैं, के
 ही कल
 भोग भोग
 होता। इन भक्तों का
 इनमें अपना
 नहीं होता।
 इनके लिये
 को हो देखते हैं, स
 हितोपदेश देते हैं। ऐसे
 इनके नाम
 बनाईगा। ऐसे भक्त
 हैं, तारण तारण
 को भी तार लेजा

रहते हैं इनको स्वर्गादि उच्च लोकों की प्राप्ति नहीं होती, दूसरे पुण्यात्मा यह, तप दानादि शुभ कर्म करते हैं, कूप तड़ागादि बनवाते हैं, इन शुभ कर्मों का फल भोग कर पड़े मनुष्य लोक में आते हैं और फिर कर्म करते हैं, इस प्रकार कभी ऊँचे और कभी नीचे आते जाते ही रहते हैं। भगवद्भक्त दो प्रकार के होते हैं, एक मुमुक्षु और दूसरे ज्ञानी। मुमुक्षु एक दो अथवा अधिक जन्मों में भगवत् तत्व का साक्षात्कार करके मुक्त हो जाते हैं और ज्ञानी भक्त तो जन्म, मरण, भोग, मोक्ष सब को माया मात्र जानते हैं, वे इन में से किसी का न तो आदर करते हैं न किसी से द्वेष करते हैं, केवल भगवद्भक्ति में ही तल्लीन रहते हैं। चाहे कितने ही कलगों तक शरीर रहे, चाहे कलर भर रहे अथवा क्षण भर भी न रहे, भक्त को इस पर कुछ भी ध्यान नहीं होता। इन भक्तों की सब क्रीड़ाएँ भगवत् प्राप्ति के लिये ही होती हैं, इनमें अपना और अपने कर्तव्य का किंचित् भी अभिमान नहीं होता। ऐसे भक्त किसी से राग अथवा द्वेष नहीं करते। इन के लिये शत्रु मित्र समान होते हैं, सब में भगवत् को ही देखते हैं, सब से रागद्वेष रहित वर्तते हैं, सब को हितोपदेश देते हैं। ऐसे भक्तों का माहात्म्य पूर्व में मैं तुम्हें कह चुका हूँ, इन के नाम प्रसंग पर जब इनकी कथा सुनाऊँगा तब बताऊँगा। ऐसे भक्त और उनके अनुकरण करने वाले धन्य हैं, तारण तरण हैं यानी आप भी तर जाते हैं और दूसरों को भी तार लेजाते हैं, भक्तों का जन्म ही सफल है। भक्त ही

जीते हैं, और अन्य सब मृतक के समान हैं। यह ही बात नीचे के पद में दिखलाई है।

हरि भक्त का नाश नहीं होता।

मिथ्या अमिथ्या सब जानते जे, आत्मा अनात्मा पहिचानते जे ॥
विश्वेश प्रेमी मन कर्म बानी। जीते सदा ते हरि भक्त जानी ॥ १ ॥
कामो न क्रोधी सब के हितैषी, रागो नहीं जे नहि लेश द्वेषी ॥
वैरी न जाने नहि मित्र माने। निन्दा प्रशंसा सम एक जाने ॥ २ ॥
हिंसा करें ना दुख दें न काहू, जो दुःख देवे सुख देय ताहू ॥
मेरा पराया मन में न लावें। ते भक्त सांचे जग कीर्ति पावें ॥ ३ ॥
भासक्ति नाही तनु माहि राखे, ना भूल के हू कटु वाक्य भाषें ॥
सच्चे सयाने मन चित्त जीते। आचार सीधा छल छिद्र रीते ॥ ४ ॥
कर्तृत्व का है अभिमान नाही। भोक्तृत्व छाया नहि चित्त माहीं ॥
कर्ता महा ना कुछ भी करें जे। भोक्ता महा ना कुछ भोगते जे ॥ ५ ॥
पृथ्वी फटे या जल बाढ़ आवे, चारों दिशा में लग आग जावे ॥
आंधी चले औ ध्रुव सूर्य जावें। ना भक्त तो भी मन क्षोभ पावे ॥ ६ ॥
भू आदि पांचों लष होय जावें, ब्रह्मादि सारें सुर भी बिलावें ॥
कोई बचे ना सब नष्ट होवें। भोला! सुखारी हरि भक्त सोवें ॥ ७ ॥

हे मंसाराम! जैसे घट का दृष्टा घट से भिन्न होता है इसी प्रकार पंच भूतों का दृष्टा परमात्मा पंच भूतों से भिन्न है। वह ही परमात्मा समष्टि पंच भूतों का अभिमान करने से जीव कहलाता है। और व्यष्टि पंच भौतिक शरीर में अभिमान करने से जीव कहलाता है। जीव कर्मों का कर्ता भोक्ता है और ईश्वर कर्मों का फल देता है, यह ईश्वर ही भक्तों पर अनुग्रह

और कर्मों का निग्रह
प्राप्त होता है इस
से माया छोड़ कर स्व
मन से, मन से और व
और विशेष करके मन
व्यक्त है जो तू ने ज
है स्वरूप जाने बिना
जीव का स्वरूप बता
अव अन्त में यह ही
तो जा! इसी में तेरा

जीव तत्त्व

भोला! ते

और अभक्तों का निग्रह करता है। जीव का ईश्वर भक्ति करने से ही कल्याण होता है इसलिए देह, देह के सम्बन्धी आदि सब की आशा छोड़ कर स्वर्ग और मोक्ष की भी इच्छा न करके तन से, मन से और वाणी से भगवत् को शरण लेना जीव का और विशेष करके मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है। हे मंसाराम ! तू धन्य है जो तू ने जीव का स्वरूप पूछा है, जीव और ईश्वर के स्वरूप जाने बिना ईश्वर की भक्ति नहीं हो सकती, मैंने तुझे जीव का स्वरूप बताया है ईश्वर का स्वरूप भी बता चुका हूँ अब अन्त में यह ही कहना है कि जैसे बने वैसे भगवत्परायण हो जा ! इसी में तेरा कल्याण है।

ओं तत्सत् !

जीव तत्त्व शाश्वत अमर जानत जे हरिभक्त ।

भोला ! ते जीवत सदा, जन्मत मरत अभक्त ॥

नीचे
जे ॥
१ ॥
द्वेषी ॥
२ ॥
ताहू ॥
३ ॥
भापें ॥
४ ॥
माहीं ॥
५ ॥
जावे ॥
६ ॥
बिलावें ॥
७ ॥
गन्न होता
से भिन्न
करने से
अभिमान
का है और
पर अनुग्रह

धर्माधर्म विधातारं धर्माधर्म विवर्जितम् ।
देवं शाश्वतमाशानं भजामि वेद बांदिताम् ॥

धर्म निष्ठा

छप्पय

वेद विहित जे कर्म धर्म ते ही कहलावत !
भगवत् वाणी वेद, श्रेय कर मार्ग दिखावत ॥
जे पालत निज धर्म, लोक परलोक बनावत ।
करि हरि भक्ति अनन्य अन्त पद निश्चल पावत ॥
भोला ! सीधे मार्ग चल, छोटा रस्ता त्यागरे ।
धर्म कर्म भज राग तज, हरि पद करि अनुगारे ॥



साराम-हे भगवन् ! मैंने आपके समान
धीर पुरुषों से ऐसा सुना है कि जो स्त्री पुरुष
सदाचारी और धर्म निष्ठ होते हैं, वे ही भक्ति
के अधिकारी हैं, उन्हीं पर भगवत् शीघ्र अनु-
ग्रह करते हैं कृपा करके शिष्ट पुरुषों का
आचार किस प्रकार का होता है और मनुष्य का धर्म क्या है,
यह बात आज सुनाइये !

मस्तराम:-हे मंसाराम ! यह बात एक बार युधिष्ठिर
ने भीष्म जी से पूछी थी, मैं उन दोनों का संवाद तुम्हें सुनाता
हूँ, ध्यान देकर सुन । एक दिन युधिष्ठिर ने नम्र होकर गंगा
पुत्र भीष्म से कहा:-

युधिष्ठिर:-हे
भगवन्, क्षत्रिय, वैश्य
सा है! श्रेष्ठ पुरुषों क
भीष्म:-हे रा
भ्रातृणा और ब्राह्मणों
मुनः कोध न करना,
करना, क्षमा, अपनी
रहना, किसी से द्रोह
जिनके भरण पोषण
पोषण करना, ये न
चाहियें। अब केवल
हा सुकर धर्म इति
है, नैष्ठिक ब्राह्मण के
करने वाले, अपने
रुत रहने वाले शा
माति हो जाय तो
चाहिये, ब्राह्मण व
और अन्नादि तथ
चाहिये, ऐसा शि
कर्म से निवृत्त हो
कर क्योंकि ब्राह्म
का अर्थ सूर्य है,
प्रकार ब्राह्मण

युधिष्ठिर:-हे पितामह ! सब वर्णों का क्या धर्म है ?
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चारों का भिन्न २ धर्म
क्या है ? श्रेष्ठ पुरुषों का आचार क्या है ?

भीष्म:-हे राजन् ! मैं जगत् के उत्पन्न करने वाले
श्रीकृष्ण और ब्राह्मणों को प्रणाम करके सनातन धर्म कहता हूँ,
सुन; क्रोध न करना, सत्य बोलना, अन्नादि का ठोक २ विभाग
करना, क्षमा, अपनी स्त्रियों में संतति उत्पन्न करनी, पवित्र
रहना, किसी से द्रोह न करना, सरल स्वभाव वाला होना,
जिनके भरण पोषण का भार अपने ऊपर हो, उनका भरण
पोषण करना, ये नव धर्म तो चारों वर्णों को धारण करने
चाहिये । अब केवल ब्राह्मणों का धर्म कहता हूँ, सुन; ब्राह्मण
का मुख्य धर्म इंद्रिय दमन है और दूसरा धर्म वेदाध्ययन
है, नैष्ठिक ब्राह्मण वेदाध्ययन से ही कृतार्थ होता है, दुष्कर्म न
करने वाले, अपने कर्म में चर्तने वाले, प्रज्ञान रूप आनन्द में
तृप्त रहने वाले शान्त ब्राह्मण को यदि अनायास से धन की
प्राप्ति हो जाय तो उसको विवाह करके प्रजा उत्पन्न करनी
चाहिये, ब्राह्मण को वेदाध्ययन करके, दान देकर, यज्ञ करके
और अन्नादि तथा धन का विभाग करके पाँछे भोजन करना
चाहिये, ऐसा शिष्ट पुरुष कहते हैं । जब ब्राह्मण अपने अध्ययन
कर्म से निवृत्त हो जाय तब वह दूसरा कृत्य करे अथवा न भी
करे क्योंकि ब्राह्मण इस जगत् का मित्रदेव कहलाता है । मित्र
का अर्थ सूर्य है, जैसे सूर्य सर्व व्यवहार का प्रकाशक है इसी
प्रकार ब्राह्मण धर्म का प्रकाशक है । हे राजन् ! अब क्षत्रिय का

धर्म कहता हूं सुन, क्षत्रिय को दान देना चाहिये, दान लेना योग्य नहीं है यज्ञ करना चाहिये, यज्ञ कराना उचित नहीं है, विद्या पढ़नी चाहिये, पढ़ाना न चाहिये प्रजा का पालन करना, चोर और डाकुओं को दण्ड देना. सदा उद्योगी रहना और संग्राम में पराक्रम दिखलाना क्षत्रिय का धर्म है। जो क्षत्रिय यज्ञ करके यजन करते हैं, जो वेद पढ़े हुये हैं जो संग्राम में जय प्राप्त करते हैं, वे क्षत्रिय ही जगत् में सर्वोत्तम हैं। शरीर पर घाव लगे बिना जो क्षत्रिय संग्राम में से लौट आता है, उसकी पंडित कीर्ति नहीं गाते। चोरों को दंड देने से बढ़कर कोई दूसरा उत्तम कृत्य क्षत्रिय का नहीं है। दान, अध्ययन और यज्ञ ये तीन कर्म करने से राजा का कल्याण होता है। इसलिये धर्म की इच्छा करने वाले राजा को विशेष करके धर्म युद्ध करना चाहिये, धर्म युद्ध ही राजा का मुख्य यज्ञ है। राजा को अपनी प्रजा को अपने २ धर्म में स्थापन करना चाहिये। जब क्षत्रिय प्रजा पालन रूप कर्म से निवृत्त हो तब दूसरा कार्य करे अथवा न भी करे क्योंकि क्षत्रिय इन्द्रदेव कहलाता है। इन्द्र हाथों का देवता है, इसी प्रकार राजा का मुख्य धर्म रक्षा करना है।

अब वैश्य का सनातन धर्म कहता हूं, सुन, दान करना, अध्ययन करना, यज्ञ करना, पवित्र रीति से धन का संचय करना वैश्य का धर्म है। वैश्य को उद्योगी होकर पशुओं को पालना चाहिये और पिता के समान उनकी संभाल करना चाहिये, उसके सिवाय यदि वह दूसरा कर्म करे तो उसे विकर्म

कहना चाहिये। वैश्य पशुओं का पालन करने से महान् सुख प्राप्त करता है क्योंकि प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि को निर्माण करके पशु वैश्य को दिये हैं और अन्य प्रजा ब्राह्मण और क्षत्रियों को दी है। वैश्य की जोविका कहता हूँ, सुन, यदि वैश्य छैः गाय पाले तो एक गाय का दूध अपने निर्वाह के लिये लेवे, सौ गाय पालने वाला वैश्य एक बैल को जोड़ यानी दो बैल रखे, व्यापार में जो लाभ हो, उसमें सातवाँ भाग अपने निर्वाह के लिये लेवे। इसी प्रकार साँग वाले, खुराले पशु और कारीगर के कार्यों में से भी जो लाभ हो, उसमें से सातवाँ भाग लेवे। घास दाने आदि मँ से भी सातवाँ भाग लेवे और घास तथा दाना वार्षिक संग्रह करे। वैश्य को यह इच्छा न करनी चाहिये कि मुझे पशु पालने नहीं हैं और जब तक वैश्य पशु रखने की इच्छा करे तब तक दूसरों को पशु रखना उचित नहीं है। अब शूद्रों का धर्म सुन, ब्रह्मदेव ने शूद्र को प्रजा का दास कहा है इसलिये शूद्र को तीनों वर्ण की सेवा करनी चाहिये। तीनों वर्ण की सेवा करने से ही शूद्र महान् सुख पाता है। शूद्र को अनुक्रम से तीनों वर्णों की सेवा करनी चाहिये और किसी दिन भी संचय करना न चाहिये। जो शूद्र अपने से उत्तम वर्ण का धन लेकर स्वाधीन में रखता है, उसको पापी जानना, धर्मों शूद्र को राजा की आज्ञा दिये स्थान में निवास करना चाहिये। शूद्र को वृत्ति और उपजीविका कहता हूँ सुन, तीनों वर्णों की प्रजा का शूद्र को अवश्य पोषण करना चाहिये। शूद्र सेवा करने की इच्छा से जिस के पास आवे, उस को स्वयं ही शूद्र की वृत्ति

कल्पनी चाहिये क्योंकि धर्म के जानने वालों ने उसको निरालो
 सृष्टि कहीं नहीं कल्पी है, विना पुत्र वाले शूद्र को भोजन देना
 और दुर्बल शूद्र का पोषण करना चाहिये जो यज्ञ तीनों वर्णों
 के करने का है, वह ही शूद्र को करना चाहिये, मात्र स्वाहा और
 घण्टकार आदि का उच्चारण करना और वेद मंत्र बोलना न
 चाहिये यानी मंत्र बिना शूद्र को यज्ञ करना चाहिये। यज्ञ किये
 विना भी शूद्र को यज्ञ का फल मिलता है क्योंकि शूद्र सबका
 सेवक है तो स्वामी के किये हुये यज्ञ के फल का भाग
 उसको भी मिलता ही है। हे राजन्! यहाँ तक मैंने तुझ से
 मनुष्य के साधारण धर्म और प्रत्येक वर्ण के भिन्न २ धर्म
 दिग्दर्शन मात्र कहे, अब शिष्टाचार कहता हूँ, सुन, प्रभात का
 उठना, स्नान करना, माता पिता, गुरु की बन्दना, सत्य बोलना,
 सुदृढता, मीठे वचन, धिवेकी जनों का संग, विद्या पढ़ना; किसी
 को बुरा न कहना, जिसका लवण खाना, उसकी निष्ठल होकर
 सच्चे मन से सेवा करना, मित्र से कपट न करना, जो कोई
 विद्या सिखावे, भगवद्भक्ति में लगावे, उसको गुरु जानना, भगव-
 द्भजन इत्यादि शिष्ट पुरुषों का आचार है। झूठ बोलना, चोरी
 करना, पर स्त्रीगजन, हिंसा, जुवा खेलना, मद्य पीना, असाधु
 जनों का संग, मिथ्या उत्पात उठाना, कपट करना, मूर्खता
 अकृतज्ञता, इत्यादि त्यागने योग्य हैं। नदी में स्नान करने
 में हथानी बरसने में, चलते हुये और झौर कराते हुये दूसरी ओर
 चित्त न देना, बासी, गरिष्ठ, झूठा, तीक्ष्ण, खट्टा, तथा क्षार
 इत्यादिक न खाना, चिकना स्वादिष्ट मिष्ट आहार का भोजन

रात को पहाड़ पर
 से पोष्य हैं।

मस्तराम:-हे मंसा
 साधारण कर्म बता
 हैं, उनका करना और
 दो वर्ण के कर्म क
 पा है-

यतः प्रवृत्ति

स्वकर्मणा तम

अर्थः जिस ईश्वर

और जिस ईश्वर ने
 उस ईश्वर को अपने क
 गत होता है। इसी प्र

कुर्वन्नेवेह

एवं त्वयि

अर्थः-यहाँ

रनों चाहिये, इससे
 ऐसा करने से मनु
 वेद में बताये शुभ
 अवश्य करना च
 करते हैं, वे न
 भोगते हैं

करना, रात को पहाड़ पर न चढ़ना, इत्यादि शिष्टाचार ग्रहण करने योग्य हैं।

मस्तराम:-हे मंसाराम ! ये जो सब वर्णों के साधारण और असाधारण कर्म बताये और इनके सिवाय जो वेद विहित कर्म हैं, उनका करना और वेद निषिद्ध कर्मों का न करना धर्म है। अपने २ वर्ण के कर्म करना ईश्वर की भक्ति है, गोता में कहा है:-

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

अर्थ:-जिस ईश्वर से आकाशादि भूतों की उत्पत्ति हुई है और जिस ईश्वर ने इस सब विश्व को व्याप्त कर रक्खा है, उस ईश्वर को अपने कर्म से संतुष्ट करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होता है। इसी प्रकार श्रुति में कहा है:-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषच्छनः समाः ।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यन्ते नरे ॥

अर्थ:-यहाँ सौ वर्ष तक कर्म करते हुये ही जीने की इच्छा करने चाहिये, इसके सिवाय तेरे लिये दूसरा मार्ग नहीं है, ऐसा करने से मनुष्य कर्म से लिप्त नहीं होता है। हे मंसाराम ! वेद में बताये शुभ कर्मों का आचरण और अशुभ कर्मों का त्याग अवश्य करना चाहिये। जो कोई वेद की आज्ञा से विरुद्ध कर्म करते हैं, वे नरकगामी होकर अति कठिन यम यातन का दुःख भोगते हैं और चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने का ऐसा

कठिन दंड है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। क्योंकि नरक में से उद्धार होने का तो समय निश्चय है और जन्म मरण आवा-गमन घट यंत्र के समान ऊपर नीचे चलता ही रहता है। संयोग वश बड़े पुण्य से मनुष्य शरीर प्राप्त होता है, मनुष्य शरीर संसार से तरने के लिये नौका के समान है, यदि मनुष्य शरीर प्राप्त करके संसार से छूटने का उपाय कर लिया तब तो बेड़ा पार है नहीं तो फिर उसी दुःख में पड़ना पड़ता है। कर्मशास्त्र की आज्ञा का अनुसरण करना सोडा के समान है। जैसे सोडा द्वारा मनुष्य ऊँचे से ऊँचे महल पर सहज में ही चढ़ जाता है उसी प्रकार कर्म करने से मनुष्य परिश्रम रहित ही उत्तम पद प्राप्त कर लेता है। जो लोग कर्म नहीं करते उनका उद्धार होना बहुत कठिन है। कोई २ मनुष्य ऐसे देखने में आते हैं कि उनकी कर्म करने में प्रीति नहीं है और उत्तम पद प्राप्त करना तो चाहते ही हैं ऐसे लोग कभी भी सिद्ध पद को पहुँचने वाले नहीं हैं, विचारना चाहिये कि जब भगवत् स्वयं वेदाज्ञा और कर्म शास्त्र के प्रकाश और प्रवृत्ति निमित्त के अवतार धारण करते हैं तो दूसरों को कर्म क्यों नहीं करना चाहिये। जब भगवत् ने आप अपने को कर्म करने से निवृत्त नहीं किया है तो दूसरा बिना कर्म किये उद्धार चाहे तो कैसे हो सकता है। गीता में भगवत् का वचन है। "कि मैं आप कर्म करता हूँ, यदि मैं कर्म न करूँ तो दूसरे लोग भी कर्म छोड़ दें तो मैं ही जगत् का नाश करने वाला होऊँ"। रावण का वध करने के बाद जब श्री रघुनाथजी को मालूम हुआ कि रावण का जन्म ब्राह्मण वंश में

था तो उन्होंने प
और कर्मशास्त्र क
ए मनुष्य की
समुद्र से पार हो

मंसाराम
वैष्णव मनुष्य क

मस्तराम
सहारे से सँकड़

मंसाराम
मल्लाह है, कर्म

वैष्णव होना च
सकती।

मस्तराम

इसलिये जड़ व

देते हैं। दूसरे

करता हो, सो

नहीं चढ़ सका

पार नहीं हो

सहायक होते

मंसाराम
उन के भोगने
शरीर धारण
होना पड़े

था तो उन्होंने पाप दूर करने के निमित्त अश्वमेध यज्ञ किया और कर्मशास्त्र को मर्याद से पैर बाहर नहीं रखता तो साधारण मनुष्य की बात ही क्या है कि बिना कर्म किये संसार समुद्र से पार हो जाय !

मंसाराम:-महाराज ! कर्म तो आप जड़ है, जड़ कर्म चैतन्य मनुष्य को कैसे मुक्त कर सकता है ?

मस्तराम:-भाई ! नौका जड़ है, फिर भी मल्लाह के सहारे से सैरुड़ों को पार पहुंचा देता है !

मंसाराम:-महाराज ! नौका को चलाने वाला तो चैतन्य मल्लाह है, कर्म को चलाने वाला कौन है ? चलाने वाला चैतन्य होना चाहिये, जड़ वस्तु दूसरे चैतन्य को पार नहीं कर सकती ।

मस्तराम ! भाई प्रथम तो कर्मों का नियामक ईश्वर है इसलिये जड़ कर्म ईश्वर के सहारे से संसार समुद्र से पार कर देते हैं । दूसरे सर्वदा यह नियम भी नहीं है कि चैतन्य ही पार करता हो, सोढी जड़ है, बिना सोढी के कोई भी प्राणी ऊपर नहीं चढ़ सकता इसी प्रकार कर्म बिना कोई संसार समुद्र से पार नहीं हो सकता, कर्म ही संसार समुद्र से पार करने में सहायक होते हैं और उत्तम पद पर पहुंचा देते हैं ।

मंसाराम:-महाराज ! यदि शुभ कर्म किये जायेंगे तो उन के भोगने के लिये अवश्य शरीर धारण करना पड़ेगा, जब शरीर धारण किया जायगा तो एक दिन मृत्यु का ग्रास भी घोना पड़ेगा, यों तो जन्म मरण का चक्र लुटेगा ही नहीं क्योंकि

जब तक कर्म होता रहेगा, शरीर होता रहेगा और जब तक शरीर होता रहेगा, मृत्यु भी होती रहेगी ! फिर कर्म करने से कैसे छुट सकते हैं ?

मस्तराम:-भाई ! कम दो प्रकार के हैं, एक सकाम, जो किसी कामना की सिद्धि के निमित्त किये जाते हैं, ये कर्म अवश्य बन्धन करने वाले हैं क्योंकि जब २ इन कर्मों का फल समाप्त होगा तब २ स्वर्गादिसे पृथ्वी पर आना पड़ेगा ! दूसरे निष्काम कर्म हैं, ये बन्धन के कारण नहीं हैं, किंतु उद्धार करने वाले हैं, निष्काम कर्म का अर्थ यह है कि जो कर्म करे, कामना रहित करे, किसी प्रकार का फल न चाहे जो कर्म करे भगवत् के अर्पण कर दे ! भगवत् अव्युक्त अनन्त और अविनाशी हैं इस लिये जो फल भगवत् को अर्पण किया जायगा, वह भी अच्युत, अनन्त और अविनाशी हो जायगा और उसी से प्रसन्न होकर भगवत् अपना स्वरूप भक्त के हृदय में प्रकाशित कर देंगे यानी भगवत् चरणों में प्रीति हो जायगी और भगवत् चरणों में प्रीति होते ही बेड़ा पार है, भगवत् उसे आप अपना बना लेंगे ! लोक में भी रिवाज है कि जब कोई कंगाल मनुष्य महाराजा आदि का सेवा में दो चार पैसे की कोई वस्तु ले जाता है तो महाराजा आदि उस वस्तु का मोल नहीं देखते और मनुष्य की योग्यता भी नहीं देखते किंतु अपनी ओर देखकर उसको इतना द्रव्य देते हैं कि उसका दारिद्र्य दूर हो जाता है, लोगों में भी ऐसा व्यवहार देखने में आता है कि जब कोई बिना मोल किसी को कोई वस्तु देता है तो वह उसका कृतज्ञ होता है और उसका

बड़े से बड़ा कार्य भी प्रसन्नता पूर्वक कर देता है। जब सामान्य पुरुषों का यह चर्चा है तो भगवत् तो कृतज्ञता को मशौदा जानने वालों में मुकुटमणि हैं, वे अपने भक्त के मनोरथ क्यों न पूरा करेंगे ? तात्पर्य यह है कि जब मनुष्य को भगवत् में प्रीति होती है तो नित्य के कर्म सहायक होकर दिनों दिन भगवत् को प्रीति बढ़ाते हुये ऐसे अनन्त हो जाते हैं कि भक्त का हृदय स्वच्छ और निर्मल हो जाता है, स्वच्छ हृदय में भगवद्भक्ति दृढ़ हो जाती है और उस भक्ति की कृपा से भगवद्भक्त कृतार्थ होकर भगवत् पद को प्राप्त कर लेता है और फिर उसका जन्म नहीं होता, वह सदा के लिये अजर, अमर, अखंड सुखी हो जाता है।

यह कर्मशास्त्र भगवत् की आज्ञा है। नियम यह है कि जब कोई सेवक अपने स्वामी की आज्ञा पालन में तत्पर रहता है तो वह स्वामी भृत्य पर प्रसन्न होकर उसके मनोरथ सिद्ध कर देता है। भगवत् तो सब स्वामियों के भी स्वामी हैं, जो भक्त उनकी आज्ञा का पालन करेगा, उस पर प्रसन्न होकर उसका कार्य क्यों नहीं सिद्ध करेंगे ? और उसे आवागमन की पीड़ा से क्यों नहीं मुक्त करेंगे ? अवश्य करेंगे निष्काम कर्म का अद्भुत प्रभाव है। निष्काम कर्म करने से संसारी कामनायें स्वयं ही भगवत् पूरी कर देते हैं, प्रह्लाद अजुन, युधिष्ठिर, ध्रुव इत्यादि भक्तों की कथा से प्रसिद्ध है।

मंसाराम:-महाराज ! यह जो आपने कहा, सो तो ठीक है परन्तु एक बड़ी भारी शंका और होती है कि शुभ कर्म तो

इसलिये न रहे कि भगवत् में जा मिले परन्तु अशुभ कर्म भी मनुष्य के होते ही हैं उनका निवृत्ति कैसे होगी ? क्या उन्हें भी भगवत् ले लेंगे ।

मस्तराम:-भाई ! बात यह है कि कर्म दो प्रकार के होते हैं, एक अज्ञात और दूसरे ज्ञात । इन दोनों में से अज्ञात कर्म तो संख्या बलिवैश्वदेव, श्राद्ध अभ्यागत पूजन इत्यादि नित्य कर्मों से दूर हो जाते हैं । क्योंकि नित्य कर्म भगवत् को अपंग होने से अनन्त फल देने वाले हो जाते हैं, वे अज्ञात पाप कर्मों को तुरन्त ही भस्म कर देते हैं, दूसरे ज्ञात कर्मों का वृत्तान्त यह है कि जिस की निष्ठा शुभ कर्मों में होती है, उससे कोई महापातक तो होता ही नहीं और यदि कोई दैवयोग से हो भी जाता है तो जो भगवत् शुभ कर्म के लेने वाले हैं, वे ही अशुभ कर्मों के पातक को धो डालते हैं । यह बात श्रुति स्मृति से प्रसिद्ध है और न्याय भी यह है कि जिसने शुभ कर्मों का फल भगवत् को अपंग कर दिया है, उसके अशुभ कर्म उसके निमित्त क्यों रहेंगे ? नहीं रहेंगे ! सकाम और निष्काम के सम्बन्ध में यह लौकिक दृष्टान्त है कि जब किसी ठेकेदार अथवा नौकर से कुछ कार्य बिगड़ जाता है तो ठेकेदार या नौकर को हानि उठानी पड़ती है और यदि दास, दासी, अथवा पुत्र से कुछ काम बिगड़ जाता है तो उसकी हानि मालिक को उठानी पड़ती है । सकाम कर्मों ठेकेदार या नौकर के समान हैं और निष्काम भक्त दास या पुत्र के समान हैं । सिद्धान्त यह है कि निष्काम कर्मों का करना वेद की आज्ञा है, वेद की आज्ञा पालना

जितने ज्ञानी और भक्त होते हैं वे ही उतने कर्मों में लिखे हैं कि वे सब कर्मों से प्राप्त हुए थे सब कर्मों से प्राप्त हुए थे । वेदों में भी प्रसंग से लिखते हैं कि वे सब कर्मों से विशेष लाभ होता है ।

मस्तराम:-महाराज

जो अज्ञान के अनुसंधान में भी तो जगह नहीं है ।

मस्तराम:-भाई !

सोचो कि वेदों का पापों को अस्मरण प्राप्त नहीं है कि वेदों को सहज है कि वेदों के प्रायश्चित्त के फल में लिख दिया है कि वेदों का वन काले । सारांश यह है परन्तु और उनके कर्मों से चिन्ता चाहिए । शास्त्र में लिखा है कि वेदों को

उचित है, जितने ज्ञानी और भक्त पूरे में हुए हैं, अब हैं और आगे होंगे के ल उत्तर कर्मों के प्रभाव से हुये हैं, और होंगे। भगवद्गीता में लिखा है कि जनकादि को चित्त की स्थिरता कर्म करने से प्राप्त हुई थी सब शास्त्रों का सम्मत है कि विना कर्म उद्धार नहीं होता। वेद को आज्ञा में तर्क करना वर्जित है, फिर भी प्रसंग से लिखते हैं कि ऊपर प्राण का उठना आदि जितने कर्म बताये हैं, वे सब परलोक के हेतु तो हैं ही, यहाँ भी उन से विशेष लाभ होता है।

मंसाराम:-महाराज ! बहुत से तो ऐसा कहा करते हैं कि अजी ! शास्त्र के अनुसार कौन चल सकता है ? पाँच धरने को भी तो जगड़ नहीं है !

मस्ताराम:-भाई ! इससे तो ऐसा सिद्ध होता है कि इन लोगों को वेदाज्ञा का पालन करना तो दूर रहा, वेदाज्ञा सुनने का भी अवसर प्राप्त नहीं हुआ। वेद में जो विधि निषेध आज्ञा है, वह इतनी सहज है कि उस पर सब चल सकते हैं। बहुत स्थल पर पाप के प्रायश्चित्त के निमित्त चांद्रायण व्रत लिखा है वहाँ ग्रह भी लिख दिया है कि न हो सके तो तीन दिन का या एक दिन का व्रत करले। सारांश यह है कि शास्त्राज्ञा सब सहज में ही सकती हैं परन्तु पाप को बाहुल्य से उनका सुनना समझना, और उनके करने पर कटिबद्ध होना कठिन हो रहा है। यह भी सोचना चाहिये कि यदि उनका पालन नहीं सकता होता तो शास्त्र में लिखी क्यों जाती ? कोई २ वेद को मिथ्या कहते हैं और कोई अन्य सामान्य विद्याओं के समान समझते हैं, उनकी

दुर्गति होने में कोई संदेह नहीं है, जो स्वर्ग नरक को मिथ्या कहते हैं, वे भी अधोगति को प्राप्त होते हैं। अब संक्षेप से उन महात्माओं की कथा सुनाता हूँ, जो धर्मनिष्ठ हुये हैं, ये कथायें भक्तमाल में प्रसिद्ध हैं।

राजा हरिश्चन्द्र

राजा हरिश्चन्द्र सूर्यवंशी अयोध्या के बड़े प्रतापी राजा हुये हैं, इनकी कथा पुराणों में प्रसिद्ध है। इन्होंने विश्वामित्र का ऋण चुकाने के लिये अपनी रानी और पुत्र को बेच दिया था और स्वयं एक चाँडाल के यहाँ बिक गये थे अन्त में काशी राजा की आज्ञा से अपनी रानी को तलवार खींच कर मारना चाहते थे यह देखकर धर्ती काँपने लगी आकाश में हाय २ शब्द होने लगा, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सब देवताओं ने राजा का हाथ पकड़ लिया भगवत् ने प्रसन्न होकर जब वर मांगने को कहा तो भक्ति के सिवाय राजा ने और कुछ वर न मांगा, भगवत् ने भक्ति वरदान देकर कुंवर रोहिताश और काशीराज के लड़के को जिला कर अयोध्या में राज्य करने की आज्ञा दी। आयु पर्यंत न्याय पूर्वक राज्य करते रहे और अन्त में पुत्र को राज्य देकर परम धाम को गये। सच है कि धर्म की दृढ़ता से सब कुछ प्राप्त हो सकता है।

हुआ सत्यवादी हरिश्चन्द्र दानी ।

दर्ह राजधानी तजे पुत्र रानी ॥

पुनः आप चाँडाल के जा बिकाना ।

नहीं धर्म त्यागा सहे कष्ट नाना ॥

राजा बलि विरोचन के

प्राप्त और प्रतापी हुये हैं

जिनसे इन से भोज्य मांगा था।

जिनने अपनी प्रतिज्ञा से नहीं

पार्य, और भगवान् के

सब कद भी त्रिलोकोनाथ

को! तू ही एक बला है अन्त

रमण्य इंद्र पदों पर वि

ता

बलि भक्त शि

तिहुं लोक

छलिया हरि

दर का

रा

राजा दधोचि जा

बाले थे, इन्होंने

पुत्र बना

तो इस

कॉ

राजा बलि ।

राजा बलि विरोचन के पुत्र और प्रह्लाद के पौत्र परम भगवद्भक्त और प्रतापी हुये हैं। भगवान् ने इन की परीक्षा लेने के लिये इन से भोज्य मांगा था। गुरु शुक्राचार्य के मने करने पर भी बलि अपनी प्रतिज्ञा से नहीं हटा, सब कुछ भगवान् के अर्पण कर दिया, और भगवान् को अपना द्वारपाल बना लिया। आज कल भी त्रिलोकनाथ इसके द्वार पर रहते हैं! वाह! बलि! तू ही एक बल है अन्य सब दुबल हैं! भविष्य कल में तू अवश्य इंद्र पदवी पर विराजमान होगा!

तोटक छन्द

बलि भक्त शिरोमणि दान किया ।

तिहुं लोक नषा तनु नाश दिया ॥

छलिया हरि कूं छलि आप लिया ।

दर का अपने दरवान किया ॥

राजा दधोचि

राजा दधोचि ज्ञानी, भक्त और कर्म शास्त्र में पूर्ण निष्ठा वाले थे, इन्होंने अस्थि देवताओं को दे डाली थी, इंद्र उनका वज्र बना कर वृत्रासुर को वध करके सुखी हुआ! सिद्ध पुरुष तो इस प्रकार बिना प्रयोजन भी कर्म शास्त्र की आज्ञा का पालन करें, और हम दो चार वेदान्त वाक्य सुन कर ज्ञानी बन जायें और कर्म त्याग दें! धन्य है!

भक्ति चिन्तामणि

उपेन्द्रवज्रा छन्दः

दर्पावि राजा उपकार कीन्हे ।

प्यारे तजे प्राणन अस्थि दीन्हे ॥

वज्राज बांका सुरराज कीन्हा ।

पापिण्ड वृत्रासुर मार हीन्हा ॥

दशरथ महाराज

दशरथ महाराजाधिराज परम भगद्भक्त धर्म कर्म निष्ठ हुये हैं, पूरा ब्रह्म भगद्भक्त ने दश होकर बालचरित्र करके जिनको आनन्द दिया, उनके भाग्य की बड़ाई कौन कर सकता है? इन्होंने पूरे में कैकेई रानी को वरदान दिया था, इसलिये चौदह वर्ष का श्री रामचन्द्र जी को वनवास देकर रावणादि दुष्टों का ध्वंस करा के देवताओं को सुख दिया और अपना यश का सेतु संसार समुद्र में बांध दिया, जिसके प्रभाव से अब भी बहुत से तर रहे हैं और आगे भी तरेंगे। इन्होंने अपने प्राण और प्रिय पुत्र का त्याग किया परन्तु सत्य का त्याग नहीं किया!

धर्म वीर दशरथ भये, तजे पुत्र पुनि प्राण ।

तजा नहीं पर सत्य व्रत, किया शोक वद्वेषण ॥

भीष्म पितामह

भीष्म जी परम भगद्भक्त कानी हुये, बारह महा भागवतों में इनकी गणना है, इतना होने पर भी कर्म में इनकी पूर्ण निष्ठा थी। श्राद्ध के समय इनके पिता का हाथ निकला, परन्तु इन्होंने हाथ में पिंड न दिया, वेदी पर ही रख दिया। दुर्योधन

का प्राण खाने से यह यु
हें उदर से इनकी उत्पत्ति
सी किया। दयालु इतने
रण बता दिया। भगवान्
म तोड़ दिया वहस्तर वि
में श्रीकृष्ण चन्द्र को अंश
प्यारे ।

भु
प्रे भीष्म धर्मज्ञ शास्त्रज्ञ
राज्य सिद्धि कृष्ण की विद्वत्

सुर

ये दोनों सगे भा
प्रे हैं, राजा ने मंत्री क
राजा भंग के अपराध
दिया। तेल ठंडा हो ग
घोड़े को रोकने से जु
भगवान् को प्राप्त हुये म
में लिये ।

का अन्न खाने से यह युधिष्ठिर की तरफ नहीं गये। गंगाजी के उदर से इनकी उत्पत्ति है। पिता की प्रसन्नता के लिये विवाह नहीं किया। दयालु इतने कि युधिष्ठिर को अपने मरण का उपाय बता दिया। भगवान् ने इनका प्रण सत्य करने को अपना प्रण तोड़ दिया बहत्तर दिन तक शर शय्या पर रहे और अन्त में श्रीकृष्ण चन्द्र को आंखों के आगे देखते हुये परम धाम को पधारे।

भुजंगी छन्दः

हुये भीष्म धर्मज्ञ शास्त्रज्ञ ज्ञानी। पिता भक्त पूरे याती शूर दानी ॥
बड़ाई जिन्हें कृष्ण दी विश्व साखी। तजी आपनी भक्त कांटेक राखी ॥

सुरथ और सुधन्वा

ये दोनों सगे भाई राजा नालंज के पुत्र परम भागवत् हुये हैं, राजा ने मंत्री की शत्रुता से सुधन्वा को बिना विचारे आज्ञा भंग के अपराध में जलते हुये तेल के कड़ाह में डलवा दिया। तेल ठंडा हो गया फिर अन्त में सुधन्वा ने अश्वमेध के घोड़े को रोकने से ३ जुन से युद्ध किया, दोनों भाई खेत आये और भगवत् को प्राप्त हुये महादेवजी ने उनके शिर अपनी मुरडमाला में लिये।

परम भक्त पावन महा, सुरथ सुधन्वा स्नात ।

मालकः निज कण्ठ में, धारत जिनके माथ ॥

हरिदास

राजा हरिदास परम भक्त हुये, धर्म शास्त्र की आज्ञा पर हड़ रहे। यह पारन नगर के राजा जाति के तोदर राजपूत थे।

यह राजा शिवि के समान शरणपाल, राजा दधोचि के समान दानी, वचन पालने में बलि के समान, भक्ति में प्रह्लाद के समान और राजा जगदेव के समान रिक्कार थे। इनको दृष्टि मात्र से एक वैरागी को ज्ञान होगया था। तोदर कुल में यह सूर्य समान हुये। कलियुग में बड़े धर्मात्मा हुये, तिलक माला से बहुत प्रीति रखते थे।

हरिदास महा इरि भक्त भये। कुल तोदर स्वच्छ पवित्र किये ॥

शिवि ज्यों कहणा समता मन में। बलि ज्यों प्रण के परिपालन में ॥

मंसाराम:-राजा जगदेव की कथा क्या है, उनको रिक्कारता कैसी थी ?

राजा जगदेव

मस्तराम:-राजा जगदेव बड़े शूरावीर, न्यायनिष्ठ और उदार थे। एक दिन एक नटनी ने आकर तमाशा किया। राजा उसके नाच, राग और कला से प्रसन्न होकर कुछ द्रव्य देने का विचार करने लगा परन्तु कोई वस्तु नटनी के गुण के समान उस के ध्यान में न आई। तब राजा उसको शंश देने लगा। नटनी ने कहा कि शिर मेरा हो चुका, जब जरूरत आन पड़ेगी, ले जाऊंगी, रिक्कारता आप पर समाप्त होगई अब मैं किसी के आगे अपना दाहिना हाथ नहीं फैलाऊंगी। नटनी यह कह कर चली गई और जब उसने किसी दूसरे राजा को कला दिखलाई तो राजा कुछ देने लगा, नटनी ने बाया हाथ पसार। राजा ने कारण पूछा तो नटनी ने कहा कि मेरा दायां हाथ राजा जगदेव के भेट हो चुका है, उस के बराबर कोई दानी नहीं है। राजा

बोला कि बता, उसने तुझे क्या दिया है, मैं तुझे इस से दश गुणा दूंगा। नटनी ने बहुत कहा कि आप नहीं दे सकते परन्तु राजा न माना और दश गुणा देने की प्रतिज्ञा की। नटनी राजा जगदेव से शिर मांग कर ले गई और राजा को दिखला कर कहने लगी कि तू भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर! राजा लज्जित होकर उठ गया और फिर मुख नहीं दिखलाया। नटनी ने शिर राजा जगदेव के धड़ पर रख कर वह ही राग गाया, कि जिस पर वह रीझा था, राजा तुरन्त जी उठा! यह राजा जगदेव की बात संसार भर में फैल गई।

थे राजा जगदेवजी, गुणग्राहक यतिराय ।

रीझे शिर अर्पण किया, नटनी कं सुख पाय ॥

भागवत् धर्म प्रचारक निष्ठा ।

सर्वान्तरः स्वयं ज्योतिः सर्वाधिपतिरस्ति यः ।

समस्तसत्तां सर्वात्मा तन्नमामि महेश्वरम् ॥

धर्म प्रचारक सन्त शान्ति कारक भव तारक ।

लिखा भागवत् धर्म, शोक भय मोह निवारक ॥

भगवत् चरणन प्रेम, नित्य भगवत् गुण गाते ।

कहत सुनत मन लाय, परस्पर रहत सुनाते ॥

भोला ! ऐसे भक्तवर चरण कमल शिरधाररे ।

गाथा तिनकी पाप हर कहि सुनि पाप निवाररे ॥



साराम:-हे भगवन्! कल अपने धर्म का वर्णन किया था और धर्म निष्ठ भक्तों को गाथ,यें सुनाई थीं, कृपा करके आज यह बताइये कि धर्मनिष्ठा और भागवत् धर्म में क्या अन्तर है और भागवत् धर्म प्रचारकों की कथा भी सुनाइये, भगवद्भक्तों के चरित्र सुनने से अल्प मन का मेल दूर हाता है, ऐसा मुझे अनुभव होता है जब से हरिश्चन्द्रादि का कथा सुना है, तब से मेरे मन में बहुत आल्लाह हो रहा है और चन्द भक्तों की कथा सुनने को उत्साह होता है,

मस्तराम:-भाई धर्म निष्ठा का अभिप्राय कर्म से है, कर्म दो प्रकार का होता है एक सकाम और दूसरा निष्काम । इन दोनों प्रकार के कर्मों का धर्मनिष्ठा में अन्तर्भाव है । भगवद्भक्ति के सम्बन्ध से सेवा पूजा भजन, स्मरण, कीर्तन इत्यादि जो कुछ किया जाता है, उसका नाम भागवत् धर्म है । यह भागवत् धर्म निष्काम ही करने में आता है, क्योंकि भक्त के सब कर्म भागवत् अर्पण रूप होते हैं । ऐसा करने से भक्त का अन्तःकरण बहुत शीघ्र ही शुद्ध और निर्मल हो जाता है । जब भक्त का मन सावधान होकर भागवत् धर्म में लग जाता है और प्रति क्षण उसी में चित्तवृत्ति लगी रहती है तो फिर भक्त को अन्य कर्म करने की आवश्यकता नहीं रहती, अन्य कर्म करे अथवा न करे, इसमें भक्त स्वतंत्र होता है, बहुत से आचार्यों का यह मत है कि कर्मों के प्रभाव से भगवद्भक्ति प्राप्त होती है इसलिये

जब देहानुसंधान को भू
जब तक संन्या
करे यद्यपि यह
सो जचती है परन्तु
की भागवत् धर्म में
वे सब भगवद्भक्ति रूप
न चाहिये । यह भाग
में पार करने वाला जह
धर्म प्रचारक मल्लाह
और दूसरों की भी प
तारण है, वह इन्हीं

प्रजाजी को वेद क
वत् धर्म की प्रवृत्ति
भागवत् इस धर्म
मात्र वेदों से क
के लिये वेदान्त
छै शास्त्रों की
वाल्मीकीय रा
रचना भी भग
रण है, इस
कीर्तन क
कि लोग

जब तक देहानुसंधान को भूल कर भगवत् स्वरूप में मग्न न हो जाय तब तक संध्या आदिक नित्यकर्म करता रहे, कर्म का त्याग न करे यद्यपि यह बात ऊपर की दृष्टि से देखने से विरुद्ध सी जचती है परन्तु सिद्धान्त में कुछ विरोध नहीं है क्योंकि भागवत् धर्म में एकाग्र चित्त वाला जितने कर्म करता है वे सब भगवद्भक्ति रूप ही हैं, इसलिये उनको कर्म समझना ही न चाहिये। यह भागवत् धर्म बहुत ही जल्दी संसार समुद्र से पार करने वाला जहाज रूप है। इस जहाज के चलाने वाले धर्म प्रचारक मल्लाह के समान हैं, जो आप भी पार जाते हैं और दूसरों को भी पार पहुंचा देते हैं। जिस पदका नाम तरण तारण है, वह इन्हीं भक्तों के आधीन है।

भागवत् धर्म के प्रचारक स्वयं भगवत् हैं। भगवत् ही ब्रह्माजी को वेद का उपदेश देते हैं और वेद के अनुकूल भागवत् धर्म की प्रवृत्ति में लगे रहते हैं; विशेष रूपालुता के कारण भगवत् इस धर्म के प्रचार करने में निरन्तर कटिबद्ध रहते हैं। मात्र वेदों से कार्य न चलते देख कर वेदों का अर्थ प्रकट करने के लिये वेदान्त, पातञ्जल, मीमांसा, सांख्य, न्याय, वैशेषिक छै शास्त्रों की रचना ऋषीश्वरों द्वारा भगवत् ने ही कराई है। वाल्मीकीय रामायण, महाभारत आदि इतिहास पुराणों की रचना भी भगवत् की इच्छा से हुई है इन सबमें वेदों का विवरण है, इससे भागवत् धर्म की प्रवृत्ति होती है और इनके श्रवण, कीर्तन करने से जीव कृतार्थ होते हैं। जब भगवत् ने देखा कि लोगों की रुचि काव्य के पद पदार्थ में है तो उन्होंने नाटक

रामपू, काव्य, साहित्य शास्त्रों द्वारा भागवत धर्म की शिक्षा दी। जब उनके बोध से भी लोगों की बुद्धि भ्रमित और श्रमित देखी तो टीका करने का प्रचार किया। जब उनको भी लोग ठीक न समझने लगे तो सूरदास, तुलसी दास, नाभा, अग्रदास, कृष्णदास इत्यादि को कलियुग में प्रकट करके उनसे भगवत् चरित्र और भागवत् धर्मों को रचना भाषा में कराई। इसके सिवाय भागवत् धर्म के प्रचार के लिये दूसरा उपाय यह किया कि आप अपने मुखारविन्द से उन धर्मों को स्पष्ट करके समझाया और लक्ष्मी जी, अपने पाषद ब्रह्मा, शिव, सनकादिक, नारद, शुक्राचार्य बृहस्पति, वशिष्ठ व्यासादि हजारों को आचार्य बना कर भागवत् धर्म का प्रचार किया। कलियुग में शंकराचार्य, रामानुज स्वामी, निम्बाक स्वामी, माधवाचार्य, विष्णु स्वामी, बल्लभाचार्य, हित हरिवंश इत्यादि संकड़ों आचार्य अपनी विभूति कला, अंश, आवेश अवतार से प्रकट किये। जिनकी कृपा से करोड़ों जीव महा पापियों का भी उद्धार होता है। फिर भगवान् ने तीसरा यह विचार किया कि अपने मन्दिर, मूर्ति और भजन तप के स्थान बदरिकाश्रम आदि और अपने धाम मथुरा अयोध्या आदि और गंगा, यमुना, पुष्कर आदि तीर्थ प्रकट किये, जिनके प्रभाव से भक्ति का प्रचार हुआ और हो रहा है, सारांश यह है कि भगवत् को भागवत् धर्म का प्रचार करना और उसको दृढ़ रखना इतना प्रिय है कि जब कभी उसमें थोड़ासा भी विघ्न आन पड़ता है अथवा आने वाला होता है तो स्वयं भगवत् अवतार लेकर विघ्न करने

भागवत् धर्म प्र

को बंध करके अपने धर्म का वचन है कि हे भगवत् की बुद्धि होती है तब मैं प्रसा करने के लिये, दुष्टों को संरक्षा करने के लिये जाता हूँ।

हे संसाराम! जब

तो प्रत्येक भक्त को च

भागवत् धर्म के प्रचार क

दुष्टों को भी ऐसा करने

भागवत् को प्रसन्नता हे

बाला भगवत् की विभ

स्थल पर लिखा है कि

भागवत् संमुख कर दे

पत्र का फल होता है

नाश्रम, कुटी, धर्मश

सुदवाना, पाठशाल

जिन से भजन कर

सब भागवत् धर्म

प्रत्नों के टीका

धर्म में लगा

अथवा ब

प्रत त

वालों को बध करके अपने धर्म को स्थिर रखते हैं। गीता में भगवान् का वचन है कि हे अर्जुन ! जब २ धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब मैं अपने को उत्पन्न करता हूँ, भक्तों की रक्षा करने के लिये, दुष्टों का नाश करने के लिए और धर्म की संरक्षा करने के लिये मैं युग २ में अवतार धारण करता हूँ।

हे मंसाराम ! जब भगवान् को यह धर्म इतना प्यारा है तो प्रत्येक भक्त को चाहिए कि जहाँ तक हो सके स्वयं भागवत् धर्म के प्रचार करने में परिश्रम और प्रयत्न करे और दूसरों को भी ऐसा करने को प्रेरणा करे क्योंकि ऐसा करने से भगवत् की प्रसन्नता होती है और इस धर्म का प्रचार करने वाला भगवत् की विभूति अवतारों में गिना जाता है। एक स्थल पर लिखा है कि जो कोई एक भगवत् विमुख जीव को भगवत् संमुख कर देता है तो उस को दस हजार अश्वमेध यज्ञ का फल होता है। भगवत् कथा करना, ठाकुर द्वारा, भजनाश्रम, कुटी, धर्मशाला बनवाना, चाटिका लगाना, कूप, तड़ांग खुदवाना, पाठशाला खोलना, तथा ऐसे मन्दिर बनवाना कि जिन से भजन करने वालों को और प्रजा को आराम हो, यह सब भागवत् धर्म हैं, भगवत् चरित्रों के कवित्त बनाना, प्राचीन ग्रन्थों के टीका करना, प्राणियों को अधर्म से हटा कर भगवत् धर्म में लगाना, यह भी भागवत् धर्म है। सब स्थानों पर अथवा बदरिकाश्रम, अयोध्या, हरिद्वार आदि स्थानों पर सदा-व्रत लगाना, एकादशी को भगवत् कीर्तन का समाज होना,

जिस दिन भगवत् के अवतार हुये हैं, उन दिनों में उत्सव मनाना, यह सब भगवद्भक्ति है। विद्या के पढ़ने पढ़ाने में परिश्रम और उपाय करना, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार के पत्र निकालना अथवा ऐसे कोई काम करना जिनके करने से लोगों का मन भगवत् के संमुख हो, ये सब भगवत् धर्म के बढ़ाने की सामग्री है। इस सामग्री का बढ़ाने वाला भगवत् समझा जाता है, ऐसा पुरुष समाधिनिष्ठ योगीसे उत्तम है क्योंकि योगी केवल अपनी शान्ति का यत्न करता है और यह भक्त तो सर्व साधारण का हित चाहने वाला है। ऐसे भक्त के लिये ही भगवान् ने गीता में कहा है कि जो मेरे इस कहे हुये धर्म को मेरे भक्तों को सुनावेगा, वह मुझे सबसे अधिक प्यारा है, उसके समान कोई श्रेष्ठ नहीं है। जिन भगवद्भक्तों की मनोवृत्ति केवल लोगों के उद्धार और उपकार के निमित्त है, उनकी बढ़ाई तो शेष शारदा भी नहीं कर सके, ऐसे लोग तो कृतार्थ रूप ही हैं। यदि कोई अपने यश और संसार के दिखाने को भी भगवत् धर्म का प्रचार करता है तो वह भगवत् को प्यारा है क्योंकि उसके प्रभाव से हजारों को शुभ गति प्राप्त होती है, इस धर्म के प्रभाव अथवा किसी भक्त के आशीर्वाद से ऐसे पुरुष का मन भी भगवत् में लग ही जाता है। भगवत् धर्म प्रचारकों की महिमा शास्त्रों में इतनी लिखी है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। प्रपन्नामृत पोथी में अनन्ताचार्य की कथा लिखी हुई है। उस कथा से भगवद्भक्तों की महिमा प्रकट होती है, वह ही कथा सुनाता, हं, ध्यान देकर सुन:-

भगवत्

भक्त

गहर से ठाकुर ड
गा था। आने जाने वा
प्रपन्नाचार्य जी दो
जने लगे और अपनी
जो अब प्रसव काल
तो स्रोत होने लगा
जने और लो को वि
में भाग दोकरी दोने
एते कोई पनिहारा
एते हुये दीड़े "अ
से क्यों साझी होत
ही थे कि भगवान्
देख कर वहां से
मों पीछे २ सोटा
कि भगवत् के थ
चार्य समझ गये
कले गये थे, हा
राने लगे:-

हे दीन

माया अपा

आपकी

अनन्ताचार्य की कथा

शहर से ठाकुर द्वारे को जाने के मार्ग में एक गढा पड़ गया था। आने जाने वाले को बहुत कष्ट होता था। यह देख कर अनन्ताचार्य जी टोकरी और फावड़ा लेकर उस गढे को भरने लगे और अपनी गर्भवती स्त्री को भी उसी धंधे में लगा लिया जब प्रसव काल समीप आया और टोकरी ढोने में स्त्री को क्लेश होने लगा तो भगवत् पनिहारे का रूप धारण करके आये और स्त्री को विश्राम करने की आज्ञा देकर उसके बदले में आप टोकरी ढोने लगे। जब अनन्ताचार्य ने देखा कि स्त्री के बदले कोई पनिहारा टोकरी ढो रहा है तो सोटा लेकर यह कहते हुये दौड़े "अरे! तू कौन है? हमारे मार्ग में बलात्कार से क्यों साझी होता है"? समीप पहुँच कर सोटा लगाने को ही थे कि भगवान् घबराये और भागने के सिवाय अन्य उपाय न देख कर वहाँ से भाग कर मन्दिर में जा घुसे! अनन्ताचार्य भी पीछे २ सोटा लिये हुये मन्दिर में पहुँचे तो क्या देखते हैं कि भगवत् के श्री अंग मिट्टी और धूल में भरे हुये हैं। अनन्ताचार्य समझ गये कि भगवत् स्त्री पर दया करके टोकरी ढोने चले गये थे, हाथ जोड़ कर प्रेम में मग्न होकर इस प्रकार विनय करने लगे:-

हे दीनबन्धो! हे करुणासागर! आपकी महिमा और माया अपार है! कौन पार पा सकता है? आपके भक्त ही आपकी महिमा को जानते हैं और वे ही माया से पार हो

देनों में उत्सव
दाने में परिश्रम
र के पत्र निका-
ने से लोगों का
र्म के बढ़ाने की
भागवत् समझा
है क्योंकि योगी
यह भक्त तो सर्व
के लिये ही भग-
हुये धर्म को मेरे
प्यारा है, उसके
मनोवृत्ति केवल
उनकी बड़ाई तो
गुताथ रूप ही
वाने को भी भग-
वत् को प्यारा है
ति प्राप्त होती है,
आशीर्वाद से ऐसे
है। भगवत् धर्म
स्त्री है कि उसका
अनन्ताचार्य की
की महिमा प्रकट
र सुन:-

सकते हैं, भला ! सबके स्वामी होकर आप करुणा वश किंकर का काम करने लगे, इतनी दयालुता का क्या ठिकाना है ! परन्तु यह कुछ नई बात नहीं है । हे भगवन् ! कृपा करके सब भक्तों की बुद्धि सुधार दीजिये कि माया के वश न हों और आप के चरणों में सदा प्रीति करें ! आपके चरणों की प्रीति के सिवाय दूसरा कोई कल्याण का मार्ग नहीं है ! आपका भजन ही सार है, जो भजन करते हैं, उनका वेड़ा पार है, जो आप से विमुख हैं, जन्म २ दुःख पाते हैं, जो आपके शरण हैं उनको यहां वहां, लोक परलोक में सुख ही सुख है ।

हे मंसाराम ! भगवत् का अपने भक्तों पर इतना प्रेम है कि भक्त के लिये वे सब कुछ करने को तैयार हैं, इसलिये ऐसे करुणानिधान स्वामी की प्रसन्नता के लिये अपने २ सामर्थ्य और विश्वास के अनुसार सब लोगों को उचित है कि इस परम धर्म के प्रवृत्त करने में तन से, मन से और प्राण से उपाय और परिश्रम करें । जिस किसी को जिस भाषा की विद्या प्राप्ति हुई है और काव्य रचना में जिसकी चित्तवृत्ति हो उसको उसी भाषा में भगवत् चरित्रों की रचना करनी चाहिये क्योंकि जिस काव्य में भगवत् चरित्रों का वर्णन नहीं होता; वह काव्य कैसा ही निराला क्यों न हो, निष्फल और अभ्रम ही है । जैसे चन्द्रवदनी स्त्री को विना वस्त्र देखने का निषेध है । ऐसे ही भगवत् चरित्र रहित काव्य के देखने का भी दोष है ।

भागवत् धर्म प्रचारक

धन की प्राप्ति का

मंसाराम ! सब जानते हैं

कहा है धन कोई साथ

धन है, यही रह

धन है, सदा पति के

भगवत् नहीं रहते, तुरन्

जाना है । जहां भगवत् क

है इसलिये जिस कि

भगवत् के भजन में

और ऐश्वर्यवान् हो गये

कहा ! जो कोई तड़ा

कहा नाम अब तक

प्राप्ति रहेगा ! धन

लेगाना उत्तम गति है,

व्यय गत है और च

अग्नि से जल जाय या

लेगाना चाहिये ।

न करें, उनके लिये

कहा

धन की प्राप्ति का उपाय ।

हे मंसाराम ! सब जानते हैं कि संसार का व्यवहार धन से चलता है धन कोई साथ तो लाता नहीं, ले भी नहीं जाता, यही का धन है, यहीं रह जाता है। लक्ष्मी भगवत् को पतिव्रता पत्नी है, सदा पति के साथ रहती है, जहां उसके स्वामी भगवत् नहीं रहते, तुरन्त उस स्थान को छोड़ कर चली जाती है। जहां भगवत् को भाक्त होती है, वहीं लक्ष्मी टिकती है इसलिये जिस किसी को धनवान् बनने की इच्छा हो, उसको भगवत् के भजन में लगना चाहिये। हजारों साहूकार और पेशवयवान् हो गये हैं, किसी का नाम भी कोई नहीं जानता ! जो कोई तड़ाग, धर्मशाला आदि बनवा गये उनका नाम अब तक प्रकाशित है और आगे भी प्रकाशित रहेगा ! धन की तीन गति हैं, धनका धर्म में लगना उत्तम गति है, अपने को सुख देने में खर्च होना, मध्यम गति है और चोर डाकू ले जाय, राजा छीन ले अथवा अग्नि से जल जाय यह अधम गति है। इसलिये धन को धर्म में लगाना चाहिये। धन को पाकर जो भागवत् धर्म का प्रचार न करें, उनके लिये शोक है !

विद्या की आवश्यकता ।

ईश्वर, जीव, संसार, स्वर्ग, नरक, भक्ति ज्ञान और वैराग्य तथा शिष्ट पुरुषों की रीति और संप्रदाय का मत जानना ये सब विद्या के आध्मीन हैं। जब से ब्राह्मण, क्षत्रिय,

वैश्य और शूद्रों में से शास्त्रों का पढ़ना उठ गया है, तब से सब धर्मों का नाश हो गया है और होता चला जा रहा है। दक्षिण देश चीनापट्टन, तैलंग, द्रावड़, बारह मल्हार में यह रिवाज है कि जो कोई लड़का शास्त्र पढ़ने में मन नहीं लगाता तो उसके बड़े लोग वहाँ के देशाधिपति की आज्ञा लेकर उसके पैरों में बेड़ी डालकर पाठशाला में भेज देते हैं और जब तक वह शास्त्र न पढ़ जाय तब तक बेड़ी नहीं खोलते। इसलिये वहाँ के सब लोग धर्म में स्थिर हैं और ब्राह्मण से लेकर शूद्र पर्यन्त वहाँ का कोई मनुष्य इष्ट उपासना से शून्य और अज्ञ नहीं होता, और न किसी विरुद्ध धर्म के फंदे में आ सकता है! विना विद्या के धर्म जानने में नहीं आता इसलिये यथा संभव तन से मन से और धन से अपने और पराये को शास्त्र पढ़ने पढ़ाने में सहायता देनी चाहिये। जो संस्कृत न पढ़ सके तो न सही, भाषा का पढ़ना ही पर्याप्त है। भाषा पढ़ने से ही मनुष्य अपने मनोरथ को पहुँच सकता है। सूरसागर और तुलसीकृत रामायण को भगवत् ने ऐसा प्रताप दिया है कि जो उनको नियम पूर्वक पढ़ते हैं, वे अवश्य भगवत् के प्यारे हो जाते हैं। इसी प्रकार नन्ददास, कृष्णदास, अग्रदास आदि की वाणी को प्रताप है और भक्तमाल का तो कहना ही क्या है, लोक परलोक दोनों में सुख देने वाली और भगवत् की प्राप्ति कराने वाली है। जितनी लौकिक विद्या पढ़ने की आवश्यकता है उससे भी अधिक भगवत् सहस्रनाम, गीता और स्तवराज आदि स्तोत्रों का पढ़ा देना प्रयोजन वाला है। जो लोग अपने बच्चों को

भगवत् धर्म प्रचारक निष्ठा
 जो लोग भगवत् धर्म
 से जीवन पर्यन्त जो पाप
 के शिर हैं क्योंकि पढ़ा देना
 धर्म न किया इसलिये धर्म
 है, जिनके वंश में भगवद्भक्त
 तो जाता है, इस में प्रह्लाद अ
 है संसाराम! नन्द यशदा
 तस प्रकार ध्यान करता है:-
 सूर्यनारायण को पुत्रो नचि
 जगन्मोक्षो के तट पर एक
 भगवत् निर्मल जलसे पूर्ण पाँच
 रहे हैं, बीच का तड़ाग सं
 से अनीलो है, रंग २ के क
 १०० फुल फूलों से लद रहे
 का रही है। फूलों की स
 गेर, कोयल, तोता, मैना,
 गद से चहचहाते हुये घा
 तड़ाग को रोशनी पर ध
 धाम, धन
 विहार
 गण

भागवद्धर्म में नहीं लगाते अथवा भागवत् धर्म सम्बन्धी विद्या नहीं पढ़ाते, तो जीवन पर्यन्त जो पाप बच्चों से होते हैं, वे उनके बड़ों के शिर हैं क्योंकि पढ़ा देना उनका धर्म था और उन्होंने अपना धर्म न किया इसलिये धर्म पूरा न करने के वे ही उत्तर दायी हैं, जिनके वंश में भगवद्भक्त होते हैं, उनका नरक से उद्धार हो जाता है, इस में प्रह्लाद आदि भक्तों की कथाएँ साक्ष्य हैं। हे मंसाराम ! नन्द यशोदानन्दन श्याम सुन्दर का एक भक्त इस प्रकार ध्यान करता है:-

सूर्यनारायण की पुत्री नचिकेता के गुरु यमराज की बहिन श्रीयमुताजी के तट पर एक परम मनोहर बाटिका है, वहाँ सुन्दर निर्मल जल से पूर्ण पाँचदिव्य तड़ाग हैं, सबमें फव्वारे चल रहे हैं, बीच का तड़ाग संगमरमर का है, उसकी शोभा सब से अनोखी है, रंग २ के कमल शोभा दे रहे हैं, बाटिका के वृक्ष फल फूलों से लद रहे हैं, फूलों की महक मस्तिष्क को तर कर रही है। फूलों की छबि मन को आल्लाह देने वाली है, मोर, कोयल, तोता, मैना, कबूतर, सारस, हंस आदि मधुर शब्द से चहचहाते हुये घूमते हुये मन को मोहित कर रहे हैं, तड़ाग की रोशनी पर श्री नन्दनन्दन, भक्त उरचन्दन, शोभा धाम, घनश्याम अपने सखाओं के साथ आनन्द से टहलते हुये विहार कर रहे हैं, मुख कमल की उपमा सूर्य, चन्द्रमा, मणि-गण अथवा कमल, गुलाब आदि पुष्पों से ढी जाय तो थोड़ी है क्योंकि उन सब की शोभा पृथक् २ है और मुख की मनोहरता में सब की शोभा एकत्र संपूर्ण है, मरयू पक्ष का जड़ाऊ मुकुट

शीश पर धारण किये हुये हैं, कानों में कुंडल शोभित हैं, कुंडलों में फूलों के गुच्छे गुथे हुये हैं, गले में मोतियों की माला है, उस माला के ऊपर फूलों की माला है, हाथों में कड़े हैं, सुवर्णतारी का दुपट्टा बांकी धज से कंधे पर पड़ा हुआ है, पीताम्बरी धोती कटि में पहिने हुये हैं चरण कमलों में भाँक शोभा दे रहे हैं, माथे पर दौड़ धूप से पसोने की छोटी २ बूंदे अद्भुत शोभा के साथ झलक रही हैं, घूँघरवारी अलकें पवन से बिखर कर कपोलों पर आ गई हैं, ऐसी अनोखी शोभा देख कर भक्त का चित्त आनन्द में होगया है और वह इस प्रकार प्रार्थना करता है:- हे नटनागर ! करुणासागर ! दीनबन्धो ! इस किंकर की तरफ किंचित् रुपा दृष्टि कीजिये, आपके चरण कमलों के सिवाय इस दासानुदास के लिये अन्य कोई शरण नहीं है ! यदि मेरे कर्मा की तरफ आप दृष्टि करेंगे तो करोड़ों कल्प तक मेरा उद्धार होना कठिन है, मुझे तो केवल आपकी रुपा का आसरा है, यद्यपि जानता हूँ कि आपके त्रिमुख ससारी श्रीमानों की जितनी खुशामद और मन रंजन करता हूँ उसका हजारवाँ भाग भी आपके स्मरण भजन में लगाऊँ तो तुरन्त ही बेड़ा पार है, फिर भी यह मन ऐसा भाग्यहीन, दुष्ट और पापी है कि भजन में नहीं लगता, विषयों का ही चिंतन करता है, हे भगवन् ! जैसा इस समय मुझे आपका ध्यान हो रहा है। इसी प्रकार सदा बना रहे, ऐसी रुपा कीजिये, ब्राहि ! ब्राहि !! प्रभो ब्राहि !!!

भागवत् धर्म प्रचारक

भागवत् धर्म प्रचारक

कथा ब्रह्माजी

ब्रह्माजी इस चराचर जगत्

में सब से प्रथम, श्रेष्ठ और भ

विशेष कमल से इनका जन्म

स्वर्ग की उत्पत्ति करने का भा

ग्यो जिन संसार में भागवत्

तन्हीं का उपदेश चला

जिनको उपदेश देते हैं, इस

लोक में से ब्रह्मलोक

का उपदेश करते हैं, जिस

में भी भागवत् धर्म में बा

होता है तो ब्रह्माजी भ

पते हैं। भगवत् का अवतार

को भागवत् धर्म को प्रवृत्ति

विज्ञान आदि में प्रसिद्ध है

ग्या, आत्मभू, ...

लेख, स्व...

कला...

कि...

हे मंसाराम ! अब मैं तुम्हें धर्म प्रचारक भक्तों की गाथा सुनाता हूँ ।

कथा ब्रह्माजी की ।

ब्रह्माजी इस चराचरजगत् के पिता और धर्म प्रचारक भक्तों में सब से प्रथम, श्रेष्ठ और भगवद्विभूति स्वरूप हैं । भगवान् के नाम कमल से इनका जन्म हुआ है । पश्चात् तप करने से संसार की उत्पत्ति करने का ज्ञान और सामर्थ्य इनको प्राप्त हुआ है इन्होंने संसार में भागवत् धर्म का प्रचार किया है । आज तक इन्हीं का उपदेश चला आ रहा है । जैसे ये इन्द्रादि देवताओं को उपदेश देते हैं, इसी प्रकार जो कोई उत्तम कर्म करके मनुष्य लोक में से ब्रह्मलोक को जाता है, उसको भक्ति, ज्ञान का उपदेश करते हैं, जिसके प्रभाव से मुक्ति प्राप्त होती है । जब कभी भागवत् धर्म में बाधा पड़ती है और देवताओं को क्लेश होता है तो ब्रह्माजी भगवत् के अवतार होने का उपाय करते हैं । भगवत् का अवतार होने से दुष्टों का नाश होता है और भगवत् धर्म की प्रवृत्ति होती है । ब्रह्माजी की कथा पुराण इतिहास आदि में प्रसिद्ध है, इसलिये संक्षेप से तुम्हें सुनाई है । ब्रह्मा, आत्मभू, सुरज्येष्ठ, परमेष्ठिन, पितामह, हिरण्यगर्भ, लोकेश, स्वयंभू, चतुरानन, धाता, अजयोनि, दुहिण, विरञ्चि, कमलासन, स्रष्टा, प्रजापति, वेधा, विधाता, विश्वसृज् और विधि ये बीस नाम ब्रह्माजी के हैं ।

कुंडली

जाये भगवत् नाभि से ब्रह्मा जग कर्तार ।
 चारि वेद रचि जगत् में कीन्हा धर्म प्रचार ॥
 कीन्हा धर्म प्रचार, श्रेय कर मार्ग बताया ।
 कर्म भक्ति वैराग्य, ज्ञान विज्ञान सिखाया ॥
 नारद ऋषि सनकादि, सीख दे जगत् पठाये ।
 ब्रह्मा हितकर देव, नाभि भगवत् से जाये ॥

कथा शिवजी की ।

भागवत् धर्म प्रचारकों में शिवजी राजा हैं, इनकी पदवी भक्तराज है भक्ति के प्रचार करने में इनको इतना उत्साह है कि स्वयं आचार्य बन कर प्रजा को उपदेश देते हैं। शिवजी विष्णु स्वामी संप्रदाय के आचार्य हैं। जब भारत में सेवकों की अधिक वृद्धि हुई तो स्मार्त संप्रदाय में शंकराचार्य का अवतार लेकर इन्होंने स्मार्त मतका प्रचार किया। देवासुर संग्राम में जब देवता और दानवों ने मिल कर समुद्र मथा और क्षार सागर में से हलाइल त्रिप निकला, तब सब देवता भस्म होने लगे। शिवजी दया करके उस त्रिप को पी गये। तभी से लोक में इनका नाम नीलकण्ठ प्रसिद्ध है। एक बार सतीजी ने रघुनाथ जी को परीक्षा लेने के लिये जानकी जी का रूप धारण कर लिया था। शिवजी ने उसी समय सती का त्याग कर दिया। जब सती जी ने वह शरीर त्याग कर हिमाचल के यहाँ जन्म लिया और बड़ी कठिन तपस्या की, तब शिवजी ने उनको अंगोकार किया। बाह दयालुता ! बाह भक्त राजता ! एक बार पार्वतीजी विष्णु सहस्र नाम का पाठ कर रही थीं, शिवजी

न उनको बुलाया तो कहने लगीं कि पाठ कर रही हूं। शिवजी ने कहा हे प्रिये ! एक राम नाम लेने से हजार नाम जपने का फल होता है। पार्वती जी दृढ़ विश्वास करके राम नाम लेकर शिवजी के पास चली आई। तब से शिवजी ने प्रसन्न होकर उनको अपने बायें अंग में रख लिया है। एक बार सनकादि ने शिवजी को प्रसाद दिया तो आनंद से बेसुधि हो कर पार्वती को भूल गये और प्रसाद पालेया। तब पार्वती जी ने शाप दिया कि आज से तुम्हारा निर्माल्य जो खायागा, वह नरक में जायगा ! तब से शिव निर्माल्य त्याज्य है। एक बार शिवपार्वती दोनों उजाड़ बरत में जा रहे थे। मार्ग में दो स्थानों पर उतर कर शिवजी ने साष्टांग दंडवत् किया। पार्वती जी ने कारण पूछा तो भोले नाथ बोले 'हे प्रिये ! एक स्थान पर तो हजार वर्ष हुये एक भगवद्भक्त हो गया है और दूसरे स्थान पर हजार वर्ष बाद एक भक्त होने वाला है इसलिये मैंने पूजाम किया है क्योंकि ये दोनों स्थान दंडवत् करने और पूजने योग्य हैं' ! वाह भक्त वत्सलता ! शिवजी के ऐसे अनेक चरित्र हैं जिनको सुन कर भक्तजन प्रसन्न होते हैं और भगवद्भिमुख मोहको प्राप्त होते हैं। कोई कहते हैं कि भगवान् रामचन्द्रजी के बाल स्वरूप के शिवजी उपासक हैं, यह ठीक है परंतु भगवत् के अन्य स्वरूपों में भी शिवजी की वैसी ही प्रीति है। एक बार श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के रास विलास में सखा रूप धारण करके पहुंचे थे और एक बार वीर रस की शोभा बड़े उत्साह से जा कर देखी थी शिवजी महाराज भगवत् के ज्ञानी भक्त हैं। शम्भु, ईश, पशुपति, शिव, शूलिन, महेश्वर, ईश्वर, शर्व, ईशान, शंकर, चन्द्रशेखर,

भूतेश, खंडपरशु, गिरिश, गिरीश, मृड, मृत्युञ्जय, कृत्तिवासस्, पिनाकी, प्रमथाधिप, उग्र, कपर्दी, श्रीकंठ, शितिकंठ, कपाल-भृत, वामदेव, महादेव, विरूपाक्ष, त्रिलोचन, कुशानुरेता, सर्वज्ञ, धूर्जटि, नीललोहित, हर, स्मरहर, भर्ग, त्र्यंबक, त्रिपुरा-न्तक, गंगाधर, अंधकारिण, क्रतुध्वंसी, वृषध्वज, व्योमकेश, भय, भीम, स्थाणु, रुद्र, उमापति, अविबुध्य, अष्टमूर्ति, गजारि और महानट, ये बावन नाम शिजी के हैं। एक प्रेमी भक्त कहता है:—

कुंडली

भगवद्भक्त अनन्य शिव, कोऊ तिन सम नांय ।
लात मारि सब विश्वपे, भीख मांगि भव खांय ॥
भीख मांगि भव खांय, शून्य मर्घट में बसते ।
करें निरंतर योग भोग में भूल न फसते ॥
भक्तन करें निहाल आप कुछ पास न राखत ।
भगवत् प्यारें रुद्र रुद्र कं प्यारे भगवत् ॥

कथा अगस्त्यजी की

अगस्त्यजी ऋषोश्वर, रामोपासक परम भक्त हैं। यह अनेक विद्याओं के आचार्य हैं। इनको रची हुई अगस्त्य संहिता प्रसिद्ध है। इनका जन्म घट से हुआ था इसलिये इनको घट-यानिज भी कहते हैं। एकवार इन्होंने समुद्र का पान कर लिया था और फिर उपस्थ द्वारा बाहर निकाल दिया था। कहते हैं तभी से समुद्र खारी हो गया है। एक बार जब देवता और दानवों के बोझ से पृथिवी उत्तर की तरफ नीची और दक्षिण की तरफ ऊंची हो गई तब अगस्त्यजी दक्षिण दिशा में जा बसे।

इनके प्रभाव से उत्तर की धरती ऊंची और दक्षिण की नीची होगई। एक बार मन्दराचल पर्वत बहुत ऊंचा हो जाने से सूर्य का प्रकाश रुकने लगा। अगस्त्य जी उसके पास गये जब उसने इनको पूजाम किया, अगस्त्यजी ने आज्ञा की कि जब तक हम न आवें तब तक तू पड़ा रह। पर्वत अब तक पड़ा हुआ है। अगस्त्यजी अब उत्तर को नहीं जाते। अगस्त्य, कुम्भसंभव, मैत्रावरुणि ये तीन नाम अगस्त्यजी के हैं, इनको सहवर्मिणी स्त्री का नाम लोपामुद्रा है।

दोहा:-भगवद्भक्त अगस्त्य मुनि, महिमा अपरम्पार।

मंदराचल बैठा दिया, सागर कीन्हा खार ॥

कथा स्वामी रामानुज जी की।

जिस प्रकार भगवत् ने संसार के उद्धार के लिये चौबीस अवतार धारण किये इसी प्रकार भगवत् ने कलियुग में चार अवतार धारण करके भागवत् धर्म का प्रचार किया और चार सम्प्रदाय स्थापित किये एक सनकादि सम्प्रदाय, दूसरा श्री सम्प्रदाय तीसरा शिव सम्प्रदाय और चौथा ब्रह्म सम्प्रदाय। सनकादि सम्प्रदाय के आचार्य निम्बाकस्वामी हैं, श्री सम्प्रदाय के आचार्य रामानुजस्वामी हैं शिव सम्प्रदाय के आचार्य विष्णु स्वामी हैं, और ब्रह्म सम्प्रदाय के आचार्य माधवाचार्य हैं। संक्षेप से सबका वृत्तांत सुनाऊंगा। रामानन्द, व्यास, हित हरि-वंशादि ने जिन सम्प्रदायों को प्रकट किया है, वे सब इन सम्प्रदायों के अन्तर्गत हैं। ये चारों सम्प्रदायें भक्ति की भूमि स्थिर रखने को दिग्गजों के समान हैं। जैसे चारों दिशाओं के चार दिग्गज भूमि को स्थिर रखते हैं, नीचे नहीं जाने देते इस

प्रकार ये चारों सम्प्रदायें भक्ति को दृढ़ करने वाली हैं। चारों सम्प्रदायों में से श्री सम्प्रदाय के आचार्य रामानुज स्वामी हैं। इनके प्रभाव से करोड़ों महापातकी और महापापी संसार समुद्र से तर गये हैं और अब भी तरते हैं। इनकी भक्ति और इनके प्रताप का महिमा सूर्य के समान प्रकट और विख्यात है। जन्म से लेकर परमधाम जाने के दिन तक का वृत्तान्त स्वामी रामानुज जी के पुण्यनामृत ग्रन्थ में सम्पूर्ण लिखा है। इनको चौरासो गादी हैं। गुरु परम्परा रामानुज स्वामी तक इस प्रकार है:- १ नारायण, २ लक्ष्मी जी ३ त्रिशक्तेन, ३ शङ्कोप, ५ श्रीनाथ, ६ पुण्डरीकाक्ष, ७ राममित्र, ४ यमुनाचार्य, ६ पूर्वाचार्य और १० रामानुज स्वामी। इनको गादियों को परम्परा का पता लगाना कठिन है। इन्होंने यमुनाचार्य जी के संकेत से तीन प्रतिज्ञायें की थी एक तो यह कि श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में रह कर उसकी सम्प्रदाय की रक्षा करूँगा, दूसरी यह कि ब्रह्मसूत्र पर श्री भाष्य रचूँगा और तीसरी यह कि पुराणों के गूढार्थ को समझाने के लिये अभिधान आख्या बनाऊँगा। तीनों प्रतिज्ञायें इन्होंने पूर्ण कीं। संन्यास लेने के बाद इनका नाम 'यतिराज' विख्यात हुआ। गोष्ठपूर्व नामक श्रीवैष्णव ने इनको जगत् के उद्धार के लिये एक गोप्य मंत्र बताया था। गुरु के मने करने पर भी इन्होंने उस मंत्र को बहुत लोगों को बता दिया। गुरु ने कारण पूछा तो कहने लगे 'हे स्वामिन्! गुरु द्रोहके कारण मैं अकेला नरक में चला जाऊँ तो भलेही चला जाऊँ, आपकी कृपा से अन्य लोगों का तो कल्याण होगा। दूसरों के उद्धार के लिये



सैकड़ों उ
होते रहे
पीपा, र
भक्त

मुझे नरक में जाना शिर आँखों से स्वीकार है ! गुरु ने यतिराज की दयालुता देख कर उन्हें गले से लगा कर अपनी बहुत ही पुसन्नता प्रकट की। बाह दयालुता ! धन्य हैं ऐसे परम उपकारी ! वेदान्त पर श्रीभाष्य के सिवाय इन्होंने वेदान्त सार आदि कई ग्रन्थ बनाये हैं।

कुबडली

स्वामी रामानुज भये, मुख्य भक्ति आचार्य ।
भगवद्भक्तिसिवाय जिन, किया अन्य नहिं कार्य ॥
किया अन्य नहिं कार्य, भक्ति ही केवल कीन्हे ।
रचे अनेकन ग्रंथ, अर्थ खोले अति शीने ॥
पर हित गुरु का कोप, सहा भक्तन हित कामी ।
मंत्र बताया गोप्य-धन्य रामानुज स्वामी ॥

कथा स्वामी रामानन्द जी की।



रामानन्द स्वामी परम भगवद्भक्त होने के सिवाय सिद्ध और भक्ति के आचार्य हुये हैं। इन्होंने भक्ति का इतना प्रचार किया कि संसार समुद्र से उतारने के लिये अपनी सम्प्रदाय का पुल बांध दिया, जिस पर होकर सैकड़ों जीव सहज ही में पार हुये, हो रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। अनन्तानन्द, सुरेश्वरानन्द, सुखानन्द, भावानन्द, पीपा, सेन, धन्नाजाट, रैदास, कबीर, इत्यादि जितने प्रसिद्ध भक्त हुये हैं, उन सबको इन्हीं की कृपा से उपदेश मिला था।

यह स्वामी दक्षिण देश में एक संन्यासी से उपदेश लेकर स्मार्त रीति से बहुत दिनों तक भगवत् आराधन करते रहे। एक दिन यह फूल लेने के लिये एक फुलवाड़ी में गये। वहाँ इनको रामानुज संप्रदाय के राघवानन्द स्वामी मिले और कहने लगे 'भाई! तुम को कुछ अपने वृत्तांत की खबर है? तुम्हारी आयु अब शेष नहीं रही है, अन्त का समय है अन्त समय में भगवत् शरण हो जाना चाहिये। रामानन्द स्वामी कुछ न बोले और अपने गुरु संन्यासी के पास आकर सब वृत्तांत सुनाया। संन्यासी ने ध्यान धर देखा तो मालूम हुआ कि बात ठीक है। रामानन्द जी की आयु का अन्त आ गया। कुछ उपाय समझ में न आने से दोनों स्वामी राघवानन्द जी की सेवा में आकर उनके शरण हुये। राघवानन्द जी ने उन पर दया करके मंत्र का उपदेश दिया और जप करने की विधि बताई। मंत्र के जपसे योगाभ्यास द्वारा रामानन्द जी का प्राण दशरथ द्वार ब्रह्मरंध्र में पहुँच गया और मृत्यु की घड़ी टल गई। पश्चात् राघवानन्द जी ने उनको जिला कर चैतन्य कर दिया और बहुत जीर्ण का वरदान दिया। रामानन्द जी ने बहुत काल तक गुरु की सेवा की और तीर्थाटन को चल दिये। कुछ दिन काशी निवास किया, पंच गंगाधार पर निवास रहा। वहाँ उनकी खड़ाऊँ विराजमान हैं। जब यह यात्रा से लौट कर गुरु की सेवा में गये तो आचारी लोगों ने इनकी क्रिया और आचार का वृत्तान्त पूछा तो मालूम हुआ कि उन के निश्चय के अनुसार इनके आचार धर्म में भेद पड़ गया है तब उन्होंने इनको अपनी संप्रदाय से बाहर कर

दिया, तब इनके गुरु राघवानन्द ने इनको आज्ञा दी कि तुम अपना पन्थ जुदा चलाओ। तब इन्होंने रामावत नाम सम्प्रदाय चलाया, इसी को रामानन्दी सम्प्रदाय भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय में श्रीरघुनन्दन महाराज और श्रीजानकी महारानी का ध्यान और उपासना है और अन्य आचारी लोगों के समान आचार नहीं है। इनका यह सिद्धान्त है कि जो कोई भगवच्छरण हो गया उसको वर्णाश्रम का बन्धन नहीं है। भगवच्छरण होते ही सब अच्युत गोत्र समझे जाते हैं और सब का भोजन एक पंक्ति में होता है। सो यह शास्त्र के विरुद्ध नहीं है किन्तु शास्त्र के अनुसार है क्योंकि नारद पंचरात्र आदिक शास्त्रों में लिखा है कि जैसे चारों आश्रम हैं इसी प्रकार भगवद्भक्ति भी आश्रम है। इसलिये सब भगवद्भक्त एक वर्ण हैं। भागवत् में लिखा है कि जो ब्राह्मण अपने कर्मों में सावधान हो परन्तु भगवद्भक्त न हो तो उस से नीच वर्ण वाला भगवद्भक्त बरिष्ठ है। एक यह भी प्रसिद्ध प्रमाण है कि राजा युधिष्ठिर के यज्ञ हो जाने के पीछे वाल्मीकि श्वपचको भगवद्भक्ति के कारण सब वर्णाश्रम वालों से अधिक प्रतिष्ठित माना था। बहुत प्रमाण होने से वर्णाश्रम की रीति इनकी सम्प्रदाय में नहीं है। कपिल जी का स्थान गंगासागर में लुप्त हो गया था, उस को रामानन्द जी ने निर्देश करके प्रकट किया। गुरु परम्परा इनकी रामानुज से लेकर गोविन्ददास तक इस प्रकार है:- १ रामानुज, २ देवाचार्य, ३ प्रधानानन्द, ४ राघवानन्द, ५ रामानन्द, ६ अनन्तानन्द, ७ कृष्णदास, ८ कीलहदास, ९ अप्रदास,

१० नारायणदास और ११ गोविन्ददास । गलता और रामगढ़ में इनकी दो गद्दी अब तक लिखी जाती हैं ।

छप्पयः—

गुरुराघवानन्द, मृत्यु से प्राण बचाये ।
स्वामी रामानन्द, भक्ति का पंथ चलाये ॥
आश्रम वर्ण बुझाय, गोत्र अक्षुप्त फैलाये !
सब कूँ संग जिमाय, भक्ति का मान बढ़ाये ॥
श्री रघुनन्दन जानकी, इष्टदेव करि मानते ।
रामानन्दी सन्त सब, देव न दूजा जानते ॥

कथा कृष्णदास पयाहारी की

कृष्णदास जी ब्राह्मण कुल में जन्मे थे । अनन्तानन्द के शिष्य थे । यह ऐसे परम भगवद्भक्त हुए कि इन्होंने लोगों का संसार समुद्र से उद्धार किया । कीलह, अग्रदास, केवलराम, हठीनारायण, पद्मनाभ, गदाधर, देवा और कल्याण इत्यादि इनके सैकड़ों शिष्य ऐसे सिद्ध प्रेमी भक्त हुए कि लोगों का उद्धार किया । पहिले गलता जी में योगी रहा करते थे, कृष्णदास की सिद्धता देख कर भाग गये इन्होंने पृथ्वीराज को जैताया और एक दरिद्री लड़के को राजा बना दिया । ऐसे २ इनके विलक्षण चरित्र हैं ।

दो०—कृष्णदास हरिभक्ततम, दूधाधारी सन्त ।

कीलह अग्र आदिक किये शिष्य प्रसिद्ध अनन्त ॥

कथा गोविन्ददास जी की ।

नारायणदास नाभा जी का नाम है । गोविन्ददास इनके शिष्य थे । यह परम भक्त हुए । नाभा जी ने भक्तमाल सब से प्रथम इन्हीं को पढ़ाई थी । इन्हींने भक्तमाल का जगत् में प्रकाश किया ।

दो०—नाभा जी के शिष्य वर, पंडित गोविन्ददास ।

भक्तमाल की शुभ कथा, कीन्हीं जगत् प्रकाश ॥

कथा विष्णु स्वामी की ।

विष्णु स्वामी महाराज दक्षिण देश में ब्राह्मण कुल में परम भक्त हुए, इन्होंने भगवद्भक्ति का बहुत प्रचार किया । चारों सम्प्रदायों में जो रुद्र सम्प्रदाय विख्यात है यह स्वामी जी उस सम्प्रदाय के आचार्य हैं । यद्यपि यह सम्प्रदाय प्राचीन है, परन्तु इस का प्रकाश इन स्वामी जी ने किया है । शिवजी के नाम से विख्यात होने का कारण यह है कि इस सम्प्रदाय के आदि मुख्य आचार्य शिवजी महाराज हैं क्योंकि इस उपासना का उपदेश प्रथम शिवजी ने परमानन्द मुनिको किया था । इस सम्प्रदाय में ईश्वर को शुद्ध अद्वैत मानते हैं और वह ईश्वर नन्दनन्दन वृन्दावन चन्द्र गोलोक निवासी सर्वदा सात वर्ष की अवस्था वाले अपने सखाओं के साथ खेल विहार करते हैं । व्रजभूमि और गोलोक में कुछ भेद नहीं है । इस सम्प्रदाय वालों की जो मुख्य रीति है, उस के अनुवर्ती वैष्णव गुजरात में विशेष हैं, विशेष करके वल्लभाचार्य की चलाई हुई रीति के

अनुसार इस संप्रदाय की अधिक प्रवृत्ति है। यद्यपि इन दोनों की प्राचीन रीति में कुछ भेद नहीं है क्योंकि सब बालस्वरूप के उपासक हुए हैं तो भी बल्लभाचार्य जी ने कोई २ भाव अपने अन्तःकरण की प्रेम को तरंग में ऐसे निकाले हैं कि बरबस चित्त को खेंचते हैं। बल्लभाचार्य की कथा में उन भावों का वर्णन करूंगा। बाबालाल इसी संप्रदाय में हुये थे। आलमगीर के भाई दाराशिकोह का बाबालाल पर बड़ा विश्वास था। कोई २ कहते हैं कि बाबालाल माधवी संप्रदाय में थे परन्तु निश्चय करके यह इसी संप्रदाय के अनुगामी थे। विष्णु स्वामी महाराज की संप्रदाय में करोड़ों भक्त इस उपासना के प्रताप से भगवत् पद को प्राप्त हुए हैं। इनके मुख्य और विख्यात गुरु द्वारि गोकुल में और गुजरात देश में हैं। इनके गुरु तिलोत्तम देव थे और इनके शिष्य लक्ष्मण भट्ट आदि थे।

दो०—सम्प्रदाय शिव का किया, विष्णु स्वामी प्रचार।

सखा सहित गोलोक पति, प्रभु के भक्त उदार ॥

कथा बल्लभाचार्य जी की।

बल्लभाचार्य जी परम भगवत्, प्रेमी, संप्रदाय के आचार्य संसार समुद्र से पार उतारने वाले हुये। अपनी जन्म भूमि को छोड़ कर प्रथम यह गोकुल में और फिर वृन्दावन में आये, इन्होंने भगवत् से यह प्रार्थना की कि वात्सल्य निष्ठा का संसार में प्रचार हो इसलिये प्रथम गोकुल में निवास करके भगवत् आराधन किया। इन्होंने भगवत् सेवा, पूजा और वात्सल्य निष्ठा की ऐसी रीति और पद्धति नियत की, कि इनके भाव का

वर्णन नहीं हो सकता। स्वप्न में भगवत् ने इनको विवाह कर लेने की आज्ञा दी। उसका कारण यह है कि जो कोई भक्त जिस दृढ़ भाव से भगवत् की आराधना करता है, भगवत् उसी भाव से उसे साक्षात् दर्शन देते हैं और उसे सिद्ध पद पर पहुँचा देते हैं। भगवत् ने एक ब्राह्मण को प्रेरणा की। उस ब्राह्मण ने अपनी कन्या इनको भेंट दी। विवाह होने के कुछ दिन पीछे विठ्ठलनाथ महाराज ने जन्म लिया। इनकी कथा वात्सल्य निष्ठा में सुना-जंगा। इनके सात पुत्र हुए, जिनके नाम से सात गद्दी गोकुल में अब तक विराजमान हैं। किसी गद्दी में सात बार और किसी में नव बार सेवा करने की रीति है। श्री राधिका महारानी को स्वकीय भाव से भगवत्पूया जान कर आराधन करते हैं और पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्दधन श्रीकृष्ण महाराज को मानते हैं। इस संप्रदाय के अलौकिक भाव की कथा कुछ कही नहीं जा सकती। जिस प्रकार बाबा नन्द और यशोदा महारानी भगवत् का लाड़ लड़ाते होंगे, उसी प्रकार गोकुल के गोसाइयों का भाव है। आंगन से घर को बहुत ऊँचा नहीं रखते, इस विचार से कि कहीं ऐसा न हो कि बालक घुटवन चलते-२ गिर पड़े। शयन के समय ऊँचे शब्द से नहीं बोलते कि कहीं सुकुमार बालक कच्ची नींद में जाग न उठे। ऐसे-२ इनके अलौकिक भाव हैं। अपनी निष्ठा में इसका यहां तक पक्का और दृढ़ भाव है कि जिस समय भगवत् शयन करते होते हैं, अथवा वे समय होता है तो कोई मनुष्य संपूर्ण संसार का धन चढ़ाने वाला आजावे तो भी कभी मंदिर नहीं खोलते! जयपुर के महा-

गज इस बात की परीक्षा कर चुके हैं। अब तक वह ही भाव रीति वर्तमान है। किसी गद्दी में पचास हजार, किसी में तीस हजार, किसी में चालीस हजार रुपये साल की आमदनी है, सब भगवत् आराधन, सजावट शोभा, सामग्री बाल स्वरूप और राग भोग इत्यादिक में उठा देते हैं और फिर भी ऋणी रहते हैं। ये गोसाईं गोकुलस्थ पदवी से विख्यात हैं। जैसा भाव इन गोकुलस्थ गोसाइयों का देखा है और सुना है, वह लिखने में नहीं आ सकता और उनके चेहों की जैसी भाव भक्ति गोसाइयों में है, वह भी वर्णन नहीं हो सकती। इस सम्प्रदाय के सेवक मारवाड़ और गुजरात में बहुत हैं। वल्लभाचार्य के कुल में बहुत पहुंचे हुये भक्त और सिद्ध हुये हैं। जो उनकी कृपा के अवलम्बन से भगवत् परायण हुये हैं, इनकी गिनती कौन कर सकता है। वल्लभाचार्य के भाव को ध्यान करके देखना चाहिये, उन्होंने अपने भाव के अनुसार अपना भाव विख्यात किया है, जिस जाति में बाबा नन्दराय जी थे, उस जाति में 'वल्लभ' गोप जाति को कहते हैं इसलिये इन्होंने अपने कुल को वल्लभ कुल यानी गोपकुल विख्यात किया। एक समय एक साधु व्रज में आया और सालिग्राम का बटुआ एक वृक्ष की डाली पर टांग कर वल्लभाचार्य के दर्शनों को गया जब उनके दर्शन करके लौटा तो क्या देखता है कि बटुआ गायब है। लौट कर आचार्य जी के पास गया और सब वृत्तान्त सुनाया। वल्लभाचार्य बोले 'भाई! तुम कैसे सेवक हो कि स्वामी को छोड़ कर इधर उधर घूमते हो? जाओ और उसी वृक्ष पर भली

पूकार से देखो" ! साधु लौट कर आकर क्या देखता है कि सैंकड़ों बटुवे उसी पूकार के लटक रहे हैं ! साधु आश्चर्य करता हुआ आचार्य जी के पास गया और सब वृत्तान्त निवेदन किया । आचार्य जी बोले 'भाई तुम कैसे सेवक हो कि अपने स्वामी को नहीं पहिचान सकते' ! साधु चरणों में गिर पड़ा और उनके कहने से लौट कर वृक्ष के पास आया और अपना बटुआ लटकता पाया । सालिग्राम का बटुआ लेकर साधु पूर्ण प्रेम से भगवत् आराधन में लगा । हे मंसाराम ! अभिप्राय यह है कि जैसे मूर्ख को अपने शरीर में प्रीति और अहंकार होता है इसी पूकार उपासक को भगवत् में निष्ठा और प्रीति होनी चाहिये । यह नहीं कि स्वामी डार में और सेवक बाजार में । हे मंसाराम ! इन आचार्य की बुद्धि बड़ी प्रखर थी, यह महान् पंडित थे, इन्होंने विजय नगर के राजा कृष्ण देव की सभा में शास्त्र पंडितों को परास्त किया था । तभी से इनकी गणना वैष्णवाचार्य में होने लगी । इनको श्रीकृष्ण भगवान् का साक्षात्कार हुआ था । इनका विशेष चरित्र 'श्रीवल्लभ चरित्र' नाम के ग्रन्थ में है । इनके बनाये हुये जमुनाष्टकादि षोडश ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं । इनके अपूर्व भावों का वर्णन नहीं हो सका ! यह ऊपर कह आया है, नीचे की कुंडली इनकी महिमा को बताती है ।

कुंडली

श्रीवल्लभ वल्लभ भये, वल्लभ कुल में प्रभु ।

अनुपम जिनके भाव सुनि, होत परम आनन्द ॥

होत परम आनन्द, वित्त का मैल धुलत है ।

होय बुद्धि अति स्वच्छ कृष्ण पद प्रेम बद्धत है ॥

भोग तथा अपवर्ग, मार्ग दोनों अति दुर्लभ

कीन्हें परम सुलभ्य, वाह श्री वल्लभ वल्लभ ॥

कथा माधवाचार्य जी की ।

माधवाचार्य स्वामी ब्रह्म संप्रदाय में परम भागवत् भक्त, आचार्य थे । इन्होंने ब्रह्म संप्रदाय का प्रचार किया । यद्यपि यह संप्रदाय प्राचीन है परन्तु इन स्वामी ने इस संप्रदाय को सम्पूर्ण संसार में प्रकाशित किया और इनका नाम माधवी संप्रदाय रक्खा । इसका नाम ब्रह्म संप्रदाय इस कारण से है कि प्रथम भगवत् ने इस संप्रदाय की रीति ब्रह्माजी से वर्णन की । ब्रह्मा जी ने गुरु शिष्य की परम्परा से भक्त लोगों को उपदेश करके इसका प्रचार किया । कोई २ इस को गौड़िय और कोई महा-पुरु संप्रदाय कहते हैं । उसका कारण यह है कि श्रीकृष्ण चैतन्य महापुरु गौड़ देश के रहने वाले इस संप्रदाय में आचार्य और नाम भक्त भगवत् अवतार हुए । इन्होंने सम्पूर्ण बंगाले देश को शिक्षा देकर भगवत् संमुख किया । माधवाचार्य जी का जन्म द्राविड देश में उड़पी कृष्णगाँव में ब्राह्मण वंश में हुआ । यह ग्राम कांचीपुरी से पश्चिम दक्षिण कोने पर है । इन्होंने शारीरक सूत्र और गीता जी पर भाष्य बनाया । इनका निश्चय यह है कि ईश्वर तदस्थ है । ईश्वर की प्रेरणा से माया जगत् की रचना करती है । यद्यपि इस निष्ठामें प्राचीन रीतिसे विष्णु नारायण का ध्यान और आराधन होता है परन्तु अब माधवाचार्य

के समय से इस सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण अवतार की आरा-
 धना होती है और पूर्ण सच्चिदानन्दधन गोलोक निवासी
 श्रीकृष्ण स्वामी को ईश्वर मानते हैं। माधुर्य निष्ठा से भगवत्
 का ध्यान और चिंतन करते हैं। यद्यपि माधुर्यनिष्ठा में युगल
 स्वरूप का ध्यान और चिंतन होना चाहिये और युगल
 स्वरूप का ही आराधन और सेवा इस सम्प्रदाय में वर्तमान
 है। इस सम्प्रदाय वाले राधिका महारानी में परकीया
 भाव रखते हैं परन्तु ईश्वरता अद्वैतता, और पूर्ण ब्रह्मता श्री
 कृष्ण स्वामी में चिंतन करते हैं। इनके भाष्य और ग्रन्थों से
 यह भी बात सिद्ध होती है। इस सम्प्रदाय में लाखों नामी भक्त
 और सिद्ध हो गये हैं और होते हैं। आवागमन के दुःख को दूर
 करने के लिए यह सम्प्रदाय एक उत्तम उपाय है। इस सम्प्रदाय
 के अवलम्ब से विना परिश्रम ही करोड़ों महा अधम भगवत्
 को प्राप्त होते हैं। यद्यपि दक्षिण देश में इस उपासना का पूचार
 बहुत है, बड़े २ गुरु द्वारे वहीं हैं परन्तु इस समय ब्रज और
 बंगाल में भी इस सम्प्रदाय का विशेष पूचार है। वृन्दावन में
 कई गुरुद्वारे प्रसिद्ध और विख्यात हैं। मन्दिर गोविन्ददेव,
 मदन मोहन, शृंगारवट इत्यादि इन्हीं के गुरु द्वारे हैं। इनका
 प्रभाव प्रसिद्ध है। जिन को भगवत् के दर्शन करने की दीक्षा
 लेने की इच्छा होती है वे आकर यहाँ दीक्षा लेते हैं। माधवा-
 चार्य जी महाराज की विशेष महिमा कहने की आवश्यकता
 नहीं है, इतना कहना ही बहुत है कि इन का नाम लेकर और
 इनकी सिद्धांत पद्धति के अभ्यास से करोड़ों महापापी

भगवद्भक्त होकर वांछित पदको प्राप्त हुये हैं और हो रहे हैं। इस सम्प्रदाय में हजारों गुरुद्वारे हैं, उन की परम्परा मिलाना और लिखना कठिन है।

छप्पयः—

माधव भगवद्भक्त, परम दिख्यात विरागी ।
राधा कृष्ण पदाब्ज, मधुपत्न्यां मन अनुरागी ॥
भगवद्भक्ति सिवाय, कीन्ह पापीन कृतारथ ।
विषय भोग छुड़वाय, दिया दिखला परमारथ ॥
पावन दक्षिण देश में, गुरुद्वारे सुन्दर घने ।
वृन्दावन शुचि नगर में, मुख्य २ मंदिर बने ॥

कथा श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की।

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु नित्यानन्द जी के छोटे भाई श्रीकृष्ण महाराज के अंशावतार हुये। गीता में भगवत् का वचन है कि जब धर्म का नाश और अधर्म की प्रवृत्ति होती है तब धर्म के स्थापन और अधर्म के नाश के हेतु मेरा अवतार होता है। सो जब गौड़ देश बंगाल में भागवत् धर्म और भगवद्भक्ति का लोप होने लगा और विपरीत धर्म प्रवृत्त होने लगा तब भगवत् ने वेद मार्ग स्थिर करने के लिये जैसे ब्रज में अवतार लिया था, इसी प्रकार बंगाल में शची के उदर से प्रकट हुये। सात वर्ष की उमर में केशव भट्ट काश्मीरी ब्राह्मण को क्षण मात्र के बाद में जीत कर कृपा कर के भगवद्भक्त बना दिया। एक समय जगन्नाथराय स्वामी के आगे कीर्तन करते हुये महाप्रभु प्रेम में ऐसे बेसुध हो गये कि तन्मय होकर चतुर्भुज रूप

वन गये । देख कर लोग कहने लगे कि यह तो इस पुरी का प्रभाव ही है, इसमें सिद्धता ही क्या है। तब महाप्रभु ने अनुजार्ई सेवकादि के विश्वास और भक्ति को दृढ़ता के हेतु छै भुजा धारण करलीं । तब सब को दृढ़ विश्वास हो गया । तब से पुरी में महाप्रभु के छै भुजा स्वरूप के आज तक दर्शन होते हैं । जैसे विचित्र चरित्र इनके हैं, उनको लिखने को किसी को लेखनी में शक्ति नहीं है । बाणी शुद्ध और सरल करने के लिये दो शब्द मात्र कह करही कथा समाप्त करता हूं ।

कुसडली

प्राता नित्यानन्द के, कृष्ण अंश अवतार ।

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु, करन जगत् उद्धार ॥

करन जगत् उद्धार, देश बंगाले जाये ।

सात वर्ष के बाल, भट्ट कं भक्त बनाये ॥

धारण की भुज चारि भक्त वत्सल जन प्राता ।

छै भुज लीफिर धारि नित्य आनन्द लवुप्राता ॥

कथा निम्बार्क स्वामी की ।

निम्बार्क स्वामी परमभक्त ऋषीश्वर भागवत् धर्म प्रचारक हुये । गोदावरी के पास भुंशेर ग्राम में महाराष्ट्र ब्राह्मण अरुण ऋषीश्वर की धर्मपत्नी जयन्ती के गर्भ से इन का जन्म हुआ था । यह स्वामी प्रसिद्ध सनकादिक संप्रदाय के प्रवृत्त करने वाले आचार्य हैं । यद्यपि इस संप्रदाय की परम्परा भगवत् के हंस अवतार से है परन्तु इस संसार में निम्बार्क स्वामी से प्रकाशमान हुई है । इसलिये यह संप्रदाय निम्बार्क स्वामी के

नाम से विख्यात हुआ है। ईस भगवान ने इस निष्ठा का उप-
देश प्रथम सनकादि को किया था, इस संप्रदाय को सनकादिक
संप्रदाय कहते हैं। इस संप्रदाय के सेवकों का कथन है कि
शारीरक सूत्रों पर निम्बार्क स्वामी ने भाष्य किया है, परन्तु
वह इस देश में नहीं मिलता। स्वामी जी के रचे हुये स्तोत्र
विशेष करके मिलते हैं। उन स्तोत्रों में उपासना की रीति और
ईश्वर, जीव, और माया का स्वरूप बताया है। स्तोत्रों की
ध्याख्या विस्तार सहित है, जिस से उपासना का वृत्तांत स्पष्ट
जानने में आता है, स्तोत्रों में मुख्यतर दश श्लोकी स्तोत्र हैं।
उनके अनुसार इस निष्ठा का तात्पर्य निश्चय सिद्धांत यह
समझ में आता है कि ईश्वर द्वैताद्वैत है। जैसे सर्प का कुंडल
सर्प से भिन्न नहीं है और जल तरंग से भिन्न नहीं है परन्तु
नाम मात्र को भिन्न दिखाई देता है। यह ईश्वर एक पूर्ण ब्रह्म
सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण गोलोक निवासी हैं। माधुर्य रीति से
इन का ध्यान और चिंतवन किया जाता है। माधुर्य शृंगार
की एक शाखा है, इस निष्ठा का विस्तार से माधुर्य निष्ठा में
घर्षण करूंगा यद्यपि इस उपासना में युगल स्वरूप श्री राधा-
कृष्ण का ध्यान और सेवा की रीति पुष्ट है परन्तु आदि
आचार्यों के बनाये हुये ग्रन्थों से पूर्ण ब्रह्मता श्रीकृष्ण स्वामी
की सिद्ध होती है और उनका ही ध्यान करना पाया जाता है।
निम्बार्क स्वामी का सिद्धांत संक्षेप से यह है:- श्रीकृष्ण
चरणारविन्द के सिवाय दूसरी कोई गति नहीं है,
वे चरण परम गति हैं, ब्रह्मा और शिव इन चरणों को

दण्डवत् करते हैं श्रीकृष्ण महापुत्र का स्वरूप मन और बुद्धि की तक से परे है, उनकी मूर्ति गूढ़ है, उनका अवतार विचार में नहीं आसक्ता, भक्तों की अभिलाषा पूर्ण करने को वे अनेक प्रकार के अवतार धारण करते हैं । एक स्थान पर युगल स्वरूप ध्यान लिखा है, दूसरे स्थल पर केवल श्री कृष्ण स्वामी का लिखा है । विचार कर देखने से यह कुछ विरोध नहीं है क्योंकि जब गोलोक स्वामी की उपासना दृढ़ होगी तो युगल-स्वरूप का ही ध्यान करना उचित होगा । निम्बार्क स्वामी के अलौकिक चमत्कार बहुत से हैं उन में से एक चमत्कार यहां वर्णन करता हूं । एक बार एक संन्यासी स्वामीजी के स्थान पर उतरा । स्वामी जी ने उसका शिष्टाचार किया परन्तु रसोई के सिद्ध करने में संन्या हो गई । संन्यासी संन्या होने के पीछे भोजन नहीं करता था स्वामी जी ने यह सोच कर कि यदि संन्यासी भोजन नहीं करेगा तो रात भर पेट पीटता रहेगा, विचारे को नींद भी नहीं आवेगी, इसलिये दया के कारण आंगन के नोखे के वृक्ष पर स्वामी जी ने संन्यासी को सूर्य दिखा दिया और उसने संतुष्ट होकर भोजन कर लिया । जब संन्यासी भोजन करके उठा तो चार घड़ी रात बीती हुई देखी संन्यासी को बड़ा आश्चर्य हुआ, तब से इनका नाम निम्बार्क करके विख्यात हुआ । अर्क सूर्य का नाम है । कोई २ इनका मुख्य नाम अर्क ही कहते हैं । इनका नामी गुरु द्वारा दक्षिण देश अरुण में है और दूसरा सलेमाबाद में है । इनके सिवाय और हजारों स्थानों पर गुरु द्वारे हैं ।

कुण्डली

भगवत् प्यारे भक्तवर, स्वामी श्रीनिम्बार्क ।

भिक्षुक भूखा देख कर निम्ब दिखाया अर्क ॥

निम्ब दिखाया अर्क, मार्ग समकादि चलाया ।

जैसे सिंधु तरंग, ईश जग एक बताया ॥

भगवद्भक्ति सिखाय, भक्त लाखों ही तारे ।

स्वामी श्रीनिम्बार्क, भक्तवर भगवत् प्यारे ॥

कथा शंकर स्वामी की ।

शंकर स्वामी कलि में धर्म के रक्षक और भागवत् धर्म के प्रवर्तक, शिखी के अवतार और वेदान्त के आचार्य हुये । जितने अनोखरवादी, पाखंडी, भगवत् विमुख और दुबुद्धि थे, उन सब को ध्वस्त करके शास्त्रों की पद्धति पर चलाया । दक्षिण देश में राजा विक्रमादित्य के समय में इन स्वामी का अवतार हुआ, स्मार्त मत की रीति से दण्ड धारण करके संन्यासी हुये और उसी धर्म की पद्धति से भागवत् धर्म का प्रचार किया । मीमांसा मतवादी ब्रह्मावतार मण्डन मिश्र को वाद में निरुत्तर किया । मीमांसक कर्म को ही ईश्वर मानते हैं । बीछे मिश्रजी को स्त्री सरस्वती ने स्वामीजी से वाद किया और कामशास्त्र के सम्बन्ध में पूछे किये । स्वामी जी बालब्रह्मचारी, यती संन्यासी थे स्वप्न में भी इस गलीमें होकर नहीं निकले थे । इस विषय में उनको किंचित् भी बोध न था । सरस्वती से छे महीने की मोहलत मांगकर अमरक राजाके शहर में गये । अमरक

राजा उसी दिन मर गया था उस के शरीर का दाह होने नहीं पाया था। योग बल से उस शरीर में अपने प्राणों का प्रवेश करके छे महीने तक स्वामी जी उसी शरीर में रहे और अमरक शतक नाम ग्रन्थ की बहुत ललित पदों में रचना की। राजा अमरक की सब रानियों ने जान लिया कि यह कोई योगेश्वर है राजा के देह में आ गया है, इसका देह किसी गुप्त स्थान में रखा होगा, उस को जलवा देना चाहिये, ऐसा करने से यह शरीर बना रहेगा, पूजा का हित होगा, और हमारा सुभाग भी चिरकाल स्थायी हो जायगा। यह सोचकर रानियों ने स्वामी जी के शरीर को ढुंढवाकर जलाने की आज्ञा दी। आग लगा दी गई थी। उसी समय स्वामी जी के प्राण ने राजा का शरीर त्याग कर अपने जलते हुये शरीर में प्रवेश किया और अग्नि की रक्षा के हेतु नृसिंह भगवान् का स्मरण किया। भगवान् ने अग्नि शीतल कर दी। स्वामी जी ने चिता से निकल कर मंडन मिश्र की स्त्री सरस्वती को निरुत्तर कर दिया। मंडन मिश्र स्वामी जी के शिष्य हुये। पश्चात् स्वामी जी ने चार्वाक मत वालों को परास्त करके धर्म परायण किया। आज कल चार्वाक मत अनुगामी कोई भी नहीं दिखाई देता, सुनते हैं कि कोई २ मुसलमान अब भी चार्वाक मत के मानने वाले हैं, वे दहरिया कहलाते हैं। पीछे स्वामी जी ने सांख्य शास्त्र और हठयोग वालों को शिक्षा दी, पीछे सेवड़ों के साथ बड़ा ही भारी मतवाद युद्ध हुआ। निदान पहिले वाद में उनको जीत कर फिर उनकी धूर्तता, मंत्र चैत्रादि को दूर किया। जब सेवड़ों ने इन्द्रजाल किया तो मंत्र

उन्हीं के सिर पर पड़ा, कुछ तो कोटों पर से गिर २ कर मर गये, कुछ नदी में डूब गये और बचे खुचों को उस समय के देशाधीश ने नावों में भरवा कर नदों में डुबा दिया। जो २ भगवत् शरण में आये, वे उपद्रव से बच गये। तात्पर्य यह है कि जो भगवत् से विमुख होता था अथवा वेद विरुद्ध चलता था, उसको विद्या के बल से, प्रभाव दिखा कर अथवा उसको बोध कराके भगवत् धर्म पर आरुढ़ किया पीछे स्थान २ पर मन्दिर, शिवालय आदि बनवाये, प्रत्येक देवता के स्तोत्र रचे और पूजा आदिकी रीति की शिक्षा दी, उपनिषद्, गीता, शारीरक सूत्र और विष्णुसहस्रनाम इन सब पर अलग २ भाष्य की रचना की। शंकर दिग्विजय में स्वामी जी की कथा का विस्तार से वर्णन है। दिग्दर्शन मात्र उनका वृत्तांत यहाँ मैंने सुनाया है, निगुण उपासक तो यह कहते हैं कि यह स्वामी केवल निगुण ब्रह्म के उपासक थे और सगुण उपासकों का यह कथन है कि यह वैष्णव थे। स्मार्त सगुण उपासना की पद्धति यह है कि अपने इष्ट को अंगी और दूसरे देवताओं को अंग मानते हैं। जिस प्रकार भगवत् की पूजा अन्य संप्रदायों में होती है इसी प्रकार इस संप्रदाय में भी पूजा, स्मरण, जप इत्यादि वैसा ही होता है। निगुण ब्रह्म का वर्णन किसी अन्य समय पर सुनाऊंगा। शंकर स्वामी के बहुत से शिष्य ऐसे हुये हैं जिन्होंने इस संप्रदाय का अधिकतर प्रचार किया। इनके मठ और गुरु बहुत हैं परन्तु चार शिष्यों के चार स्थान मुख्य हैं। पूर्व में गोखंडन मठ, दक्षिण में सिंगेरी मठ, पश्चिम में शारदा मठ और उत्तर में

ज्योती मठ है। इन चारों मठों के क्रम से पद्मपादाचार्य, पृथिवीधराचार्य, सुरेश्वराचार्य और तोटकाचार्य ये चार शिष्य आदि मठाधीश हुये हैं।

कुसडली

शंकर सुखकर श्रेयकर, लीन रुद्र अवतार ।
पाखंडी मत ध्वंसि सब, श्रुति मत कीन्ह प्रचार ॥
श्रुति मत कीन्ह प्रचार, दूध जल कीन्हा न्यारा ।
सुलभ कीन्ह हरि भक्ति, सार सिद्धांत निकारा ॥
शोधा वन वेदान्त, छांटि सब शंकड़ शंकर ।
कीन्ह जगत् उद्धार, श्रेयकर सुखकर शंकर ॥

छप्पयः—

शंकर शिव नरसिंह, विपिन अद्वैत विहारी ।
द्वैतमत गजराज, मान मद मर्दन कारी ॥
रचि अति सुन्दर भाष्य, वेद का अर्थ दिखाया ।
सरल कीन्ह वेदान्त, तत्व परमार्थ लखाया ॥
शंकर शिष्यन पाद रज, भोला शिर पर धार रे ।
जिनकी कृपा कटाक्ष ने, भव ते कीन्हा पार रे ॥

सत्संग निष्ठा ।

जन्मान्तरशताभ्यस्ता मिथ्या संसारवासना ।
क्षीयते यत्प्रसादेन तं वन्दे साधु संगमम् ॥

छप्पयः—

संत संग सुख मूल, संग दुर्जन दुखदाई ।
करे सदा सत्संग, दुष्ट जन दूर विहाई ॥
करे सन्त का संग, भक्ति भगवत् की पावे ।
भवसागर हो पार, लौट नहिं जगमें आवे ॥
भोला ! करि सत्संग नित, सद्ग्रन्थन अवलोक रे ।
सत्य चितवन करि सदा, तज भय विता शोकरे ॥



सारामः— महाराज ! कल आपने धर्म प्रचारकों की कथायें सुनाई थीं। शास्त्रों का सिद्धान्त यह है, कि इस जीव को संसार बन्धन से यानी आवागमन के चक्र से छूटने के लिये सत्संग ही मुख्य साधन है, सत्संग के सिवाय अन्य कोई साधन नहीं है। 'रुपा' करके आज सत्संग शब्द का अर्थ और सत्संग की महिमा सुनाइये।

मस्तरामः— भाई मंसाराम ! सत्संग की महिमा अपार है, कोई वर्णन करने को समर्थ नहीं है, फिर भी तू ने प्रश्न किया है इसलिए दिग्दर्शन मात्र मैं तुझे सत्संग की महिमा सुनाता

हैं। सत्संग के प्रभाव से शीघ्र ही भगवत् की प्राप्ति होती है और भगवत् प्राप्ति होने से जीव कृतकृत्य और सर्वदा के लिये सुखी हो जाता है, फिर उसे स्वप्न में भी दुःख से सम्बन्ध नहीं होता ! साधु सेवा से सत्संग की प्राप्ति होती है इसलिये साधु सेवा की महिमा भी किञ्चित् वर्णन करूंगा।

देख, सत् का अर्थ सत्य है। सत्य केवल भगवत् ही हैं। भगवद्भक्त भी भगवत् स्वरूप हैं इसलिये वस्तुतः भगवद्भक्तों के संग का नाम ही सत्संग है शास्त्रों का अध्ययन करना और तीर्थों का सेवन करना भी सत्संग कहलाता है। शास्त्रों के पढ़ने, विचारने अभ्यास करने और शास्त्रानुसार वर्ताव करने से सार असार का ज्ञान होता है, ईश्वर, माया और जीव का स्वरूप जानने में आता है, नरक के दुःखों से भय लगता है और भगवत् की परम शोभा और अनुपम माधुरी का लाभ होता है। भगवत् शास्त्रों के सार हैं। जब भगवत् में बुद्धि लग कर दृढ़ स्थिर हो जाती है तो जीव कृतार्थ होकर सुख दुःख भलाई बुराई से अलग होकर आनन्द स्वरूप हो जाता है, इसलिये शास्त्रों का अवश्य अध्ययन और विचार करना चाहिये। जिन में भगवच्चरित्र और भगवत् स्वरूप का वर्णन हो, उनको शास्त्र कहते हैं। जैसे श्रुति, स्मृति, भागवत् आदि पुराण, महाभारत रामायणादि इतिहास। यदि संस्कृत भाषा का संस्कार न हो तो भाषा ग्रन्थ तुलसीकृत रामायण, विनय पत्रिका, सूर सागर, ब्रज विलास, कृष्णदास की वाणी, इत्यादि का अध्ययन और अभ्यास करे ! इनके अवलम्बन से वह ही बोध हो जाता है,

जो संस्कृत से होता है। दो चार महीने परिश्रम करने से भाषा पढ़ने की गति हो जाती है, फिर भी कोई न पढ़े तो दुर्भाग्यता ही है। बहुत लोग विरुद्ध धर्मियों के रचे हुये ग्रन्थों के भाषांतर करने में विशेष करके काल व्यतीत करते हुये देखने में आये हैं, ऐसा करना सर्वथा त्यागने योग्य है। न तो विरुद्ध धर्मियों के रचे हुये ग्रन्थ पढ़ने चाहियें, न उनके भाषांतर किये हुये अपने ग्रन्थ ही देखने चाहिये क्योंकि उन भाषांतर करने वालों को ग्रन्थ का मुख्य अभिप्राय ही मालूम न था। अपने आचार्यों के तिलक से उनके किये हुये भाषांतर का मिलान किया जाय तो मुख्य अभिप्राय ही लुप्त और ध्वस्त हुआ जानने में आता है। सिवाय इसके कोई तजुमा-टीका (Translation) ऐसा नहीं है कि टीकाकारों ने अपने दीन के विरुद्ध होनेके कारण प्रकट अथवा किसी व्याज से हिन्दू मत की निन्दा न लिखी हो। अबुलफजल का किया हुआ महाभारत आदि ग्रन्थों का टीका जला देने योग्य है। उनमें विशेष करके अर्थ का अनर्थ कर दिया है। यदि किसी ने दूषण रहित टीका किया भी है तो लिखावट ऐसी है कि भगवत् और महात्माओं के सम्बन्ध में कुछ मर्याद नहीं रखी है उन के वचन कठोर और तीक्ष्ण हैं कि बाण के समान हृदय में लगते हैं। इसके सिवाय ऋषीश्वरों और भगवद्भक्तों की वाणी है तरस और प्रभाव है, वह अन्य मतवालों के टीकाओं में नहीं है किन्तु प्रतिकूल है। जैसा विरुद्ध भाव टीकाकार का हो वैसा ही पढ़ने सुनने वालों का भाव हो जाता है। उनके पढ़ने वालों को उत्तम फल की प्राप्ति नहीं होती। उनमें से

गहन होते हुये
जाता है
निवास नहीं कर
तों ने थोड़ी संस्कृत
प्रापण हैं और जि
प्रापण, महाभारत
पढ़े हैं- उनको किसी
धर्मियों के किये
टीका पढ़े हुये का
उनके देखने चाहिये
टीका है, भागवत् पर
गीता पर देश
गङ्गा, यमुना
संग है। किसी
भगवत् ने यह प्रत
पान करने से हृदय
कि भगवद्भक्त वि
एकत्र होते हैं उ
पुण्य और जल
प्राप्त होती है
भक्ता अ
वर्णन व
तीर्थों के

कोई भगवद्भक्त होते हुये देखने में नहीं आया किन्तु ऐसा देखा जाता है कि वह प्रायः संत महात्माओं का विश्वास नहीं करता। विचार कर देखते हैं तो जिन लोगों ने थोड़ी संस्कृत या भाषा पढ़ी है, वे थोड़े बहुत भगवत्परायण हैं और जिन्हें विरुद्ध धर्मियों के किये हुये भागवत्, रामायण, महाभारत, योग वासिष्ठ आदि अन्य ग्रन्थों के टीके पढ़े हैं- उनको किसी प्रकार का फल नहीं हुवा। इसलिये विरुद्ध धर्मियों के किये हुये टीके पढ़ने उचित नहीं हैं। यदि बिना टीका पढ़े हुये कार्य न चलता हो तो हिन्दुओं के किये हुये टीके देखने चाहिये रामायण पर टोडरमल का किया हुआ टीका है, भागवत् पर एक कायस्थ का टीका किया हुआ है, और गीता पर देशवासियों के किये हुये अनेक तिलक हैं।

गङ्गा, यमुना, पुष्कर आदि तीर्थों पर जाना दूसरा तीर्थ सत्संग है। किसी २ का यह कथन है कि तीर्थों के जल को भगवत् ने यह प्रताप दिया है कि जल के दर्शन, स्नान और पान करने से हृदय पवित्र हो जाता है किसी २ का यह मत है कि भगवद्भक्त किसी नियत समय पर जिस एक स्थान पर एकत्र होते हैं उस स्थान को तीर्थ कहते हैं। भक्तों के संग के पुण्य और जल के प्रभाव से मनुष्यों के चित्त को उज्ज्वलता प्राप्त होती है क्योंकि भगवद्भक्तों के चरण पडने से जलमें पवित्रता आ जाती है, इसलिए शास्त्रों में तीर्थों की अधिक महिमा वर्णन की है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि दोनों ही प्रकार से तीर्थों के सत्संग और यात्रा से मनुष्य पवित्र होकर भगवत् परायण

हो जाता है। यहां तक प्रथम प्रकार के सत्संग का निर्णय हुआ, अब दूसरे प्रकार के सत्संग का वर्णन करता हूं। सब शास्त्रों ने जिस सत्संग का वर्णन किया है, उसका तात्पर्य भगवद्भक्तों से है। इस में कुछ भी सन्देह नहीं है कि जो भगवद्भक्तों का सत्संग करते हैं उनको उनका वाञ्छित अर्थ प्राप्त होता है। भगवद्भक्तों का मिलना भगवत् का ही मिलना है। भगवत् का वचन है कि एक क्षण के सत्संग के बराबर स्वर्ग और अपवर्ग का सुख नहीं है। दशम स्कंध में कहा है कि संसार से मुक्त होने का और अपवर्ग प्राप्ति का केवल सत्संग ही उपाय है। एकादश में भगवत् का वचन है कि मैं योगादि से बंध नहीं होता परन्तु सत्संग से शीघ्र ही बंध हो जाता हूं। पद्म पुराण, स्कंद पुराण, विष्णु पुराण आदि में भी यह ही निश्चय वचन है।

मंसाराम:- महाराज ! अन्य साधनों से भगवद्भक्तों के सत्संग को श्रेष्ठ क्यों माना है ? अन्य साधन भी तो भगवत् की प्राप्ति के कारण हैं ही।

मस्तराम:- भाई ! प्रथम तो भगवत् और शिवजी का वचन है कि जहाँ भगवद्भक्त रहते हैं, वहाँ भगवत् स्वयं विराजमान रहते हैं इसलिये जिस पुरुष को भगवत् भक्तों का संग प्राप्त होगा, उसको भगवत् अवश्य मिल जायगे। यह बात प्रचेता और नारद जी के संवाद से सिद्ध होती है। प्रचेता और नारद का संवाद भागवत् में प्रसिद्ध है। दूसरे तीर्थ, व्रत, जप, तप, यम नियमादि जो अन्य साधन हैं, वे ऐसे हैं कि उनमें

भक्त का मन
जाता है और
मन लगा रहत
भजन कीर्तन
लिये यदि क
भगवत् के संग
का यह वृत्तांत
परन्तु साधने
तैयार है परन्तु
है कि भक्त औ
वाला कोई नह
आदि भक्ति प
भर में वर्षों क
पास ये ठग आ
हैं क्योंकि ये स
के सत्संग की
होती है, जिस
वद्भक्तों के पार
भक्ति की इच्छा
हो, उसको सत्
है, परन्तु हमा
पड़ती क्योंकि
भी अपने ही

निर्णय
। सत्र
। सत्संग
। भग-
अर्थ प्राप्त
ही मिलता है।
के बराबर सर्वा
में कहा है कि
का केवल सत्संग
है कि मैं योगादि
ही वश हो जाता हूँ।
आदि में भी यह ही
धर्मों से भगवद्भक्तों के
साधन भी तो भगवत्
भगवत् और शिवजी का
है, वहाँ भगवत् स्वयं विरा
को भगवत् भक्तों का स
मिल जायगी। यह बात प्रचे
होती है। प्रचेता और न
है। दूसरे तीर्थ, व्रत, जप, र
धन हैं, वे ऐसे हैं कि

भक्त का मन अनुक्षण नहीं लगता, संसार के स्वाद में चला जाता है और भगवत् भक्तों के सत्संग से भगवत् में अनुक्षण मन लगा रहता है क्योंकि वहाँ भगवत् चरित्र, कथा, सेवा, भजन कीर्तन आदि के सिवाय अन्य कुछ कार्य नहीं होता इसलिये यदि कभी मन किसी तरफ चला भी जाता है तो फिर भगवत् के संमुख हो जाता है। तीसरे तीर्थादि अन्य साधनों का यह वृत्तांत है कि कहीं भगवद्भक्ति के साधन तो प्राप्त हैं परन्तु साधने वाला भक्त नहीं है, कहीं भक्त साधना करने को तैयार है परन्तु भक्ति को पद्धति नहीं मिलती कहीं ऐसा संयोग है कि भक्त और पद्धति दोनों एकत्र हैं परन्तु संदेह दूर करने वाला कोई नहीं है अथवा काम, लोभ, मोह, मद, मत्सर ईर्ष्या आदि भक्ति पथ के ठगों में से कोई कभी आ जाता है कि पल भर में वर्षों को एकत्र की हुई पूंती को लूट ले जाता है भक्तों के पास ये ठग आ नहीं सकते इसलिये सत्संग से अन्य साधन न्यूनतर हैं क्योंकि ये सब सामग्री के प्राप्त करने वाले नहीं हैं। भगवद्भक्तों के सत्संग की यह विशेषता है कि वहाँ समस्त सामग्री एकत्र होती है, जिस २ वस्तु का प्रयोजन होता है, वह ही वस्तु भगवद्भक्तों के पास मिल सकती है इसलिये जिस किसी को भगवत् भक्ति की इच्छा हो और जो संसार समुद्र से पार होना चाहता हो, उसको सत्संग करना चाहिये। यद्यपि सत्संग सर्वत्र प्राप्त है, परन्तु हमारी कुतर्क और कुचेष्टा है कि हम को सूझ नहीं पड़ती क्योंकि हम पाप और अवगुण युक्त होने से दूसरे को भी अपने ही समान जानते हैं और उसके सौम्यस्वभाव, भजन

आदि पर दृष्टि न करके उसके अवगुण ही देखते हैं यदि शुद्ध
रूपभाव की दृष्टि से देखें तो सत्संग सर्वत्र प्राप्त ही है।
यदि दुर्भाव, अवगुण और दूषण ही देखना है तब तो कोई जड़
चित्तन दूषण रहित नहीं है। वृन्दावन, चित्रकूट, प्रयाग, अयोध्या
काशी, जगन्नाथपुरी, उज्जैन, कांची, हरिद्वार, पुष्कर आदि
सैकड़ों स्थानों पर इच्छानुसार सत्संग मिल सकता है परन्तु
यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि सत्संग का यह अर्थ नहीं
है कि चलो साहब कोई नये साधु आये हैं उनके दर्शन कर
आवें, गये, कुछ भेट धर कर बैठे रहे और फिर घर पर लौट
आये। सत्संग उसका नाम है कि भगवद्भक्तों को भगवत् का
रूप जान कर उनके वचनों में इतना दृढ़ विश्वास हो कि कभी
भी अविश्वास न हो, ऐसा सत्संग अणुक्षण करना चाहिये।
जब तक भगवच्चरणों में पूरा स्थिति न हो जाय तब तक नियम
पूर्वक, आदर सत्कार सहित, दीर्घकाल तक सत्संग करे! ऐसा
करने से पापी से पापों को भी भगवत्प्राप्ति हो सकती है। नारद,
व्यास, बाल्मीकि अजामिल, शबरी, बारमुखी, अगस्त्य, प्रचेता,
ध्रुव प्रह्लादादिक हजारों भक्तोंकी कथाओं से यह बात प्रसिद्ध
है कि सत्संग के प्रभाव से कैसे २ पापियों को क्या २ पदवी
प्राप्त हो चुकी हैं, ऐसा सत्संग आज कल बिना प्रयास ही मनुष्य
को मिल सकता है। जैसे भगवत् की सेवा में भक्तों की निष्ठा
होती है, वैसे ही तन मन से भगवद्भक्तों की सेवा उत्साह पूर्वक
करनी चाहिये। भगवत् का वचन है कि—

हेऋषीश्वर !

मय उपाय छोड़कर
तब है कि मेरे भक्तों
हैं, मेरे भक्तों की सेवा
भोजन कराये बिना
को भोजन कराये बिना
भगवत् का वचन है
स्थल पर भगवत् का
है, चन्द्रमा ताप हर
और मेरे भक्तों के त
जाते हैं, तीनों ताप
होती है। ऋषीश्वर
पल्लोक से निभंय
पवित्र नहीं कर स
है इसलिये जिसको
नित्यानन्द की प्राप्ति
प्राण से भगवद्भक्तों
कोई जाति नहीं
जाति पांति का
जाति का हो, भग
वत् का वचन है कि
विभेद करके उनका
के पन्थ में पांच

हे ऋषीश्वर ! मेरे भक्त मेरा शरीर ही हैं, वे ही पूज्य हैं, सब उपाय छोड़कर उन्हीं की सेवा कर ! पद्मपुराण में भगवत् का वचन है कि मेरे भक्तोंको भोजन कराना मुझको ही भोजन कराना है, मेरे भक्तों की सेवा करना, मेरी ही सेवा है। जैसे मुझको भोजन कराये बिना मेरे भक्त कुछ नहीं खाते इसी प्रकार भक्तोंको भोजन कराये बिना मैं भी कुछ नहीं खाता ! एक स्थान पर भगवत् का वचन है कि मेरे भक्तों के भक्त मेरे ही भक्त हैं। एक स्थल पर भगवत् का वचन है कि गंगा पापों का नाश करती है, चन्द्रमा ताप हरता है और कल्प वृक्ष दरिद्र दूर करता है और मेरे भक्तों के दर्शन से तो क्षणमात्र में तीनों पाप नष्ट हो जाते हैं, तीनों ताप भी दूर हो जाते हैं और परम शान्ति प्राप्त होती है। ऋषीश्वरों का वचन है कि जिस प्रकार संत लोक परलोक से निमंत्र्य और पवित्र कर देते हैं, इस प्रकार तीर्थादि पवित्र नहीं कर सकते। इत्यादि सहस्रों वचन शास्त्रों में मिलते हैं इसलिये जिसको संसार से मुक्त होने की और भगवत् के नित्यानन्द की प्राप्ति की इच्छा हो, उनको तनसे, मन से और प्राण से भगवद्भक्तों की सेवा करना उचित है। भगवत् की कोई जाति नहीं है इसलिये भगवत् भक्तों की सेवा में जाति पांति का विचार करना उचित नहीं है, चाहे किसी जाति का हो, भगवद्भक्त भगवत् रूप ही है। महाभारत में भगवत् का वचन है कि जो कोई हरि भक्तों में जाति आदि का विभेद करके उनकी सेवा नहीं करते, वे नास्तिक हैं। साधु सेवा के पन्थ में पांच ठग हैं, एक तो जाति का गर्व कि साधु की

शुद्ध
ही है।
ई जड़
अयोध्या
पुष्कर आदि
सक्ता है परन्तु
का यह अर्थ नहीं
है उनके दर्शन कर
फिर घर पर लौट
भक्तों को भगवत् का
विश्वास हो कि कभी
गुणक्षण करना चाहिये।
न हो जाय तब तक नियम
ल तक सत्संग करे। ऐसा
प्राप्ति हो सकती है। नारद,
बारमुखी, अगस्त्य, प्रचेता
कथाओं से यह बात प्रसिद्ध
पापियों को क्या २ पदों
प्राज कल बिना प्रयास ही भगवत्
की सेवा में भक्तों की
भगवद्भक्तों की सेवा उत्साह
वचन है कि-

जाति को जान कर उसकी सेवा न करे, दूसरा विद्या का गर्व कि बिना पढ़े हुये साधु को छोटा जाने तीसरे ऐश्वर्य का गर्व, क्योंकि ऐश्वर्य के मद में मनुष्य अन्धा हो जाता है, भला बुरा सुझ ही नहीं पड़ता चौथा साधु का रूप देखकर सेवा से विमुख होना, पांचवा शरीर का बल। बल के गर्व से भी मनुष्य में विचार नहीं रहता। इन पांचों गर्वों को ताक पर रखकर भगवत् के इन चरित्रों का अनुक्षण स्मरण किया करे कि भगवत् ने स्वयं युधिष्ठिर की रसोई में बाल्मीकि श्वपच को बैठा कर द्रौपदी के हाथ से सेवा कराई। श्रीरघुनन्दन स्वामी ने भीलनों के झूठे बेर खाये, गीद्ध की क्रिया की और निषाद को सखा बनाया।

एक साधु सेवी साधु बीमार था। एक साधु उनके घर पर आया। बीमार साधु ने अपनी स्त्री से साधु के लिये भोजन कराने को कहा। स्त्री ने शिर में दर्द होने का बहाना करके रसोई बनाने को मने कर दिया, संयोग वश उसी समय उसका दामाद आ गया, उसे देख कर स्त्री तुरन्त ही उठ बैठी और दामाद के लिये मोहन भोग आदिक बनाने लगी। साधुसेवी ने तुरन्त ही स्त्री को यह कह कर निकाल दिया कि जब मेरा दामाद आया तब तो शिर दुखने लगा और जब तेरा दामाद आया शिर का दुखना बन्द हो गया। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार कामी को स्त्री प्रिया होती है और लोभी को जिस प्रकार धन प्यारा होता है इसी प्रकार भगवद्भक्तों को अपना सगा प्यारा समझ कर सच्चे मन से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करे। जिसको

भक्तों में प्रीति न
 और उनकी से
 से विमुख हैं अ
 नहीं पहुँच स
 गया उनको दुःख
 हो चले जाते हैं। र
 धन बेर करने से
 र भी भगवत् को
 उसने प्रह्लाद भक्त
 तब हिरण्यकशिपु
 दण्ड दिया तब
 दोही तीनों लोक
 दृष्टांत साक्षी है
 प्रार्थना करताः
 हे भगवत्
 सबके दुःख मि
 यदि आप मेरे
 में फरक आज
 मित्र, साधु
 में भी विरोध
 रूपा दृष्टि
 नहीं है। क
 क्योंकि मैं

भगवद्भक्तों में प्रीति नहीं है उसका कोई भी मनोरथ सिद्ध नहीं होता, और उनकी सेवा करने से सब मनोरथ सिद्ध होते हैं। जो भक्तों से विमुख हैं और उनकी निन्दा करते हैं, वे भगवत् धाम में कभी नहीं पहुँच सकते। जो भक्तों के साथ शत्रुता करते हैं, अथवा उनको दुःख देते हैं, उनका नाश होता है, वे रसातल को चले जाते हैं। रावण, दुर्योधन, कंस आदि भगवद्भक्तों के साथ वैर करने से ध्वंस को प्राप्त हुये। देवताओं को दुःख देने पर भी भगवत् को हिरण्यकशिपु पर क्रोध न आया परन्तु जब उसने प्रह्लाद भक्त को दुःख दिया तब भगवान् न सह सके। जब हिरण्यकशिपु जैसे बली राक्षस को भगवान् ने तुरन्त ही दण्ड दिया तब दूसरों की बात ही क्या है। भगवद्भक्तों के द्रोही तीनों लोकों में कष्ट पाते हैं। इसमें दुर्वासा ऋषि का दृष्टांत साक्ष्य है। एक परम भक्त भगवद्भक्तों से इस प्रकार प्रार्थना करता:-

हे भगवद्भक्तो ! आप परम कृपालु हैं, करुणासागर हैं, सबके दुःख मिटाते हैं, इस अपराधी पर भी कृपा दृष्टि कीजिये। यदि आप मेरे अपराधों की तरफ देखेंगे तो आपके 'समदर्शीपने' में फरक आजायगा ! साधु सजल मेष के समान होते हैं, शत्रु, मित्र, साधु असाधु सब पर समान दया करते हैं, इस वचन में भी विरोध आजायगा इसलिये मुझ अपराधी पर आपको कृपा दृष्टि करनी योग्य है, मेरे अपराधों पर दृष्टि देना योग्य नहीं है। कृपा दृष्टि कराने का मेरा थोड़ा अधिकार भी है क्योंकि मैं आपका भाट हूँ और कुछ नहीं तो न सही, कृपा

दृष्टि तो करनी ही पड़ेगी ! यदि आप कहें तू हमारा सच्चा भाट नहीं है, ऊपर से ही बातें बनाता है, अंतःकरण से स्तुति वहीं करता, तो सब भाट भी ऐसा ही किया करते हैं, फिर भी यज्ञपान उन को विमुख नहीं करते, ऐसे ही आपको भी मुझे विमुख करना अच्छा नहीं है, इसके सिवाय मेरा और आपका एक नाता भी है कि मैं भी श्रीकृष्ण महाराज का घर जाया चेरा हूँ इसलिये आप से कृपा दृष्टि माँगने का मेरा अधिकार है । यदि आप कहें कि पूरा ब्रह्म सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण का दास होकर हम से क्यों याचना करता है और तुझे भय ही किस का है ? उसके उत्तर में विनयकरता हूँ कि स्वामी ! अव-
शुणी चेरा हूँ, स्वामी की आज्ञानुकूल आचरण नहीं करता, भूल कर भी भगवत् के संमुख नहीं होता, किसी प्रकार से यह दुष्ट भाग्यहीन मन भगवच्चरणों में लग जाय और इस प्रकार ध्यान किया करे कि अयोध्या जो भगवत् का निजधाम है, वहाँ बला वृक्ष है, कल्प वृक्ष के नीचे दिव्य मंडप में पुष्पक सिंहासन रक्खा हुआ है, सिंहासन का प्रकाश कोटि सूर्य के समान है, वहाँ श्री रघुनन्दन स्वामी अंग २ में आभूषण धारण किये हुये वीरासन से विराजमान हैं । वाम भाग में श्रीजनकनन्दनी, अप्स-
रागणवन्दनी, भवभयकन्दनी शोभा दे रही हैं । युगल जोड़ी का रूप अपार है और विष्णु भी लज्जित हो कर क्षीर सागर में जा छुपे हैं ! भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सेवा परायण हैं । चारों वेद, नारद सनकादि ऋषि, और ब्रह्मा आदि देवता स्तुति कर रहे हैं, एक तरफ सुग्रीव विभीषणादि और दूसरी तरफ

को लदे हुये हैं और सा
ही शोभा निरख रहे हैं

कथा बा

विष्णु देश में बलाद ना

विशेषा बहुत धनवाली

पूज की हरी छाया के न

एक दिन कुछ साधु ल

एक बारमुखी द्वार पर

पुण्य मेरा नाम सुन

एक समय कुछ मोहर

पुण्य के पास आई अ

पुण्य ने जाति और धन

एक मुकुट बना कर र

राखी । यह सुन कर

एक वनवाया और बड़ी

एक बाजे बजाती हुई मु

एक पधुंची तो रजे

एक होकर गिर पड़ी

एक पुजारियों को

एक समीप ले गये । जब

एक सन अंचा होने के

एक, रंगनाथ जी

राज मंत्रो खड़े हुये हैं और सामने हनुमान जी हाथ बाँधे युगल स्वरूप की शोभा निरख रहे हैं ।

कथा वारमुखी की ।

दक्षिण देश में वलाद नाम का एक नगर है । वहाँ वारमुखी नाम की वेश्या बहुत धनवाली रहती थी । उसके द्वार पर एक वृक्ष था । वृक्ष की हरी छाया के नीचे एक बहुत ही सुन्दर वेदी बनी हुई थी । एक दिन कुछ साधु लोग वृक्ष के नीचे टिक गये । संध्या के समय वारमुखी द्वार पर आई और इस डर से कि कहीं साधु लोग मेरा नाम सुन कर उठ न जाँय, घर में जा चुपी । रात के समय कुछ मोहर और रुपये एक थाली में रख कर साधुओं के पास आई और दंडवत् करके थाली भेंट दी । साधुओं ने जाति और धन का वृत्तांत सुन कर उपदेश दिया कि एक मुकुट बना कर रंगनाथ जी की भेंट कर तब धन शुद्ध हो जायगी । यह सुन कर वारमुखी ने तीन लाख रुपये का जड़ाऊ मुकुट बनवाया और बड़ी प्रीति और विश्वास सहित नाचती गाती बाजे बजाती हुई मुकुट लेकर चली जब श्री रंगनाथ के मन्दिर के समीप पहुँची तो रजोधर्म हो गया । ऐसा देख कर शोक से विकल होकर गिर पड़ी । उसके प्रेम को अन्तर्यामी प्रभु ने जान लिया । पुजारियों को आज्ञा हुई । पुजारी आकर उसको प्रभु के समीप ले गये । जब मुकुट पहिनाने को हाथ उठाया तो सिंहासन ऊँचा होने के कारण हाथ न पहुँचा । वारमुखी शोचती ही रही, रंगनाथ जी ने अपना शिर झुका दिया और उस बड़

भागिनी ने मुकुट पहिना दिया । महा बड़भागिनियों में उसकी, गणना हुई ! सच है क्षण मात्र के सत्संग की यह महिमा है !

कुण्डली

भजिये नित श्रीरंग जी, कोजे सज्जन संग ।

महिमा सन्तन संग की, दिखलाई श्रीरंग ॥

दिखलाई श्रीरंग, शीश नीचा करि लीन्हा ।

वारमुखी निज हाथ, मुकुट शिर पहिना दीन्हा ॥

भोला ! करि सत्संग, संग दुर्जन का तजिये ।

रहिये सदा असंग, रंगजी निश दिन भजिये ।

कथा तिलोचन देव की ।

तिलोचन देव वैश्य वर्ण ज्ञानदेव के शिष्य विख्यात भगवद्भक्त हुये हैं । यह विष्णु स्वामी संप्रदाय में थे । साधु सेवा में इनको विशेष प्रेम था । एक स्त्री और आप घर में दो ही पाणी थे । सदा ऐसी चिन्ता किया करते थे कि कोई नौकर ऐसा मिल जाय कि साधुओं के मन की रुचि जान २ कर उनकी सेवा किया करे तो बहुत ही अच्छा हो । भागवत् की इच्छा पूर्ण करने के लिये भागवत् स्वयं टहलुवे का रूप बना कर टूटी जूती, फटी धोती, मैला साफा बाँका तिरछा बंधा हुआ आन पहुंचे । तिलोचन जी ने माता पिता का नाम घर का पता पूछा तो भक्त वत्सल सूखे से मुख से कहने लगे । 'अजी ! मेरे तो घर है, न घूरा है, न मैया है, न बाप है, आप ही आप हूँ, टहलुआ हूँ, पाँच सात सेर खाता हूँ, चारों वर्णों की रीति रिवाज जानता

नयों में उसकी,
यह महिमा है!

न संग ।
श्रीरंग ॥
रे लीन्हा ।
ना दीन्हा ॥
का तजिये ।
दिन भजिये ।

व की ।
देव के शिष्य विख्यात
भी संप्रदाय में थे। साधु
स्त्री और आप घर में तो
क्या करते थे कि कोई नौकर
उन की रुचि जान २ कर उनको
छड़ा हो। भगवत् की लक्ष्मी
दहलुवे का रूप बता कर दूरी
बाँका तिरछा बंधा हुआ था
पिता का नाम घर का पता पूछ
से कहने लगे। 'अजी! मेरे तो
बाप है, आप ही आप हैं, यहाँ
चारों वर्णों की रीति रिवाज

हैं, भक्तों की सेवा भक्तों की रुचि अनुसार कर सकता
हूँ। अन्तर्यामी मेरा नाम है सेवा करना मेरा मुख्य काम
है! पेट भर खाने को मिलेगा तब तक मैं आपकी और भक्तों
को टहल करूँगा, यदि किञ्चित् भी रोटी खिलाने में मन बिगाड़ा
तो उसी दिन चल दूँगा। तिलोचन जी प्रसन्न हो गये, स्नान
करा कर, कपड़े बदला कर भक्तों की सेवा सौंप दी। अन्तर्यामी
ने तेरह मास तक साधुओं की ऐसी सेवा की कि तिलोचन जी
का नाम दूर २ तक प्रख्यात हो गया। एक दिन तिलोचन जी
की स्त्री पड़ोसन के घर गई। पड़ोसिन बोली 'बहिना! ऐसी
दुबल क्यों हो गई है? तिलोचन को स्त्री बोली 'बहिना! क्या
बताऊँ, मेरे स्वामी ने एक टहलुआ रख लिया है, काम तो खूब
करता है, पर खाता बहुत है, रात दिन पीसते २ और रोटी
पोते २ नाक में दम आ जाता है, इतना मुख से निकला हो था
कि अन्तर्यामी अन्तर्धान हो गये। तिलोचन जी को बड़ा शोक
हुआ, तेन दिन तक अन्नजल बिना पड़े रहे तब आकाश वाणी
हुई 'हे तिलोचन जी! तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने के लिये मैं ही
टहलुआ बन गया था, यदि अब भी तुम्हारी इच्छा हो,
तो तैयार हूँ! तिलोचन जी पश्चात्ताप करने लगे 'ओ हो! मैंने
कैसा दुष्ट कर्म किया कि भगवत् को अपना चाकर समझा!
सन्तों के समझाने से तिलोचन जी भगवत् की सेवा स्मरण
करने में यथापूर्व लौट हुये।

कुण्डली

सन्तन सेवी भक्तवर हुये तिलोचन देव ।
 भगवत् जिनकी देखि रुचि, कीन्ही हरिजन सेव ॥
 कीन्ही हरिजन सेव, भाति बहु, दीन बढ़ाई ॥
 किया नाम विख्यात, कीर्ति दश दिश फैलाई ॥
 भोला करि विदवास सत्य सिद्धांत सनातन ।
 भगवत् सो ही संत, पूजि भगवत् सम संतन ॥

कथा जस्सू स्वामी की ।

जस्सू स्वामी गंगा और यमुना के बीच के देश में किसी ग्राम में रहते थे । पूर्ण भगवद्भक्त थे । जो कुछ खेती से लाभ होता, साधु सेवा में खर्च देते थे । एक दिन चोर उनके बैल चुरा ले गये । भगवत् ने जैसे ब्रज में बछड़े वालक रच कर ब्रह्मा का मोह दूर कर दिया था वैसे ही जस्सू स्वामी के यहाँ बैल प्राप्त कर दिये । चोरों ने आकर देखा तो वे ही बैल खड़े पाये । घर दौड़े गये तो वहाँ भी वे ही बैल देखे । फिर अःकर देखा तो वे हो बैल दिखाई पड़े । कई बार दौड़े, यहाँ और वहाँ बैल मौजूद देख कर बड़े चकित हुये और स्वामी जी से सब वृत्तांत कहा । स्वामी जी बोले "भाई ! ये भगवत् के चरित्र हैं, तुम अपना काम करो हम अपना काम करते हैं । चोरों ने बैल लाकर स्वामी जी को दे दिये । माया के बैल गुम हो गये । चोर चोरी का धंधा छोड़ कर स्वामी जी के शिष्य हो गये और भगवद्भजन करने लगे ।

स्वामी जस्सू

भगवत् जिन

लीला की

माया के र

बैल दिये

भोला भज

सेन भक्त

माधवगढ़ के रहने

का पालन करती

नेकी थी । बात य

लगाने जाते थे,

घर पर लाकर भ

न रहा । जब रा

सेनभक्त का रूप

के राजा को प्र

विलम्ब होने क

होने से राजा

गिर पड़ा और

राजा के वंश

कुंडली

स्वामी जस्सू जी भये, हरि भक्तन में भूप ।
भगवत् जिनकी भक्ति वश, लीला कीन्ह अनूप ॥
लीला कीन्ह अनूप, चोर आ बैल चुराये ।
माया के रचि बैल, श्याम सुन्दर दिखलाये ॥
बैल दिये आ चोर, भक्त हरि हुये अकामी ।
भोला भज श्रीकृष्ण, भक्त सेवक जग स्वामी ॥

कथा सेन भक्त की ।

सेन भक्त जाति के नाई स्वामी रामानन्द के शिष्य माधवगढ़ के रहने वाले परम प्रेमी भक्त थे जैसे गो अपने बछड़े का पालन करता है इसी प्रकार सेन भक्त की पालना भगवत् ने की थी । बात यह है कि एक दिन सेन भक्त राजा के तेल लगाने जाते थे, मार्ग में साधु मिल गये । सेनभक्त उनको अपने घर पर लाकर भोजन आदि सेवा में लग लये । राजा का भय न रहा । जब राजा की सेवा का समय हुआ तो भगवत् स्वयं सेनभक्त का रूप धारण करके तेल मर्दनादि राजा की सेवा कर के राजा को प्रसन्न करके चले आये । पीछे सेन पहुंचे और विलम्ब होने का अपराध क्षमा कराने लगे । भगवत् का स्पर्श होने से राजा भक्ति का प्रभाव जान गया था, सेन के चरणों में गिर पड़ा और उनका शिष्य होकर भजन करने लगा । अब तक राजा के वंश में सेन वंश के शिष्य होते हैं ।

कुंडली

सुन्दर सेन चरित्र सुनि, करि हरिजन विदवास ।
 हरि भक्तन की ले शरण, तज दे सबकी आस ॥
 तज दे सबकी आस, आस बलवत्तम फांसी ।
 मारत वारम्बार मारि करवावत हांसी ॥
 जा भगवत् के द्वार, मूढ़ मत भटके दर दर ।
 भोला कारि विदवास, सेन गाथा सुनि सुन्दर ॥

कथा गोपाल जी की ।

गोपाल जी भक्त वृष्ण उपासक जयपुर के राज्य में बड़े साधु सेवी थे। उनकी ख्याति दूर २ तक फैल गई। उनके कुटुम्ब में कोई विरक्त होकर घर से निकल गया। जब उसने गोपालजी की ख्याति सुनी तो वह उनकी परीक्षा लेने आया। गोपालजी ने आदर सत्कार सहित उसकी सेवा की। जब घर में भोजन कराने को ले गये तो विरक्त कहने लगे कि मैं ख्या को नहीं देखता। गोपाल जी ने कहा कि सब अलग हो जायेंगे। यह कह कर सब स्त्रियों को अलग कर दिया। जब साधु भोजन कर रहे थे तो क्या देखते हैं कि भक्त की ख्या भरोखे में से देख रही है। ऐसा देख कर विरक्त ने गोपालजी के मुख पर एक तमाचा मारा, गोपालजी को किंचित् भी क्रोध न आया, उलटे प्रसन्न होकर दूसरा गाल विरक्त की तरफ करके बोले कि इसको भी पवित्र कर दीजिये।

प्रसन्न होकर
 होता है।

पावन को
 खाय तमा
 सुख के
 जात काम
 भोला ! त
 कार सन्त

गवाल जी
 कुछ कमाते साधु
 जंगल में गये थे
 देख कर चोर भैं
 माता से कह दि
 है कि घंकेदा
 गई कि कुछ दा
 चोरों ने दीपद
 गई। भगवत्
 हंसलो समेत
 भक्तवत्सलता

विरक्त प्रसन्न होकर कहने लगा कि ऐसे ही पुरुष से वंश का उद्धार होता है।

कुंडली

पावन कीन्हा वंश निज, धन्य २ गोपाल ।
 खाय तमाचा दूसरा संमुख कीन्हा गाल ॥
 संमुख कीन्हा गाल गोप नहि मन में लाये ।
 जीत काम क्रोधादि, शान्ति का पाठ पढाये ॥
 भोल ! तज मद मान, ध्यान धरि मुखद सिखावन ।
 कार सन्तन का संग, चरित जिनके अत पावन ॥

कथा ग्वाल जी की ।

ग्वाल जी साधु सेवा परम भक्त थे। अपने उद्यम से जो कुछ कमाते साधु सेवा में खर्च कर देते थे। एक दिन भैंस चराने जंगल में गये थे। वहां साधु सेवा में लग गये। बिना ग्वाल की देख कर चोर भैंस को ले गये। ग्वाल जी ने घर आकर अपनी माता से कह दिया कि एक ब्राह्मण भैंस को ले गया है कह गया है कि घ. के दाम समेत कुछ दिन पं. ले भैंस लौटा जाऊंगा मासमभ गई कि कुछ दाल में काला है परन्तु पुत्र स्नेह से कुछ न बोली। चोरों ने दीपदान के दिन भैंस के गले में चाँदी की हंसली पहिनाई। भगवत् तो ब्राह्मणों के भी ब्राह्मण हैं ही। रस्सी तुड़वा कर हंसलो समेत भैंस को ग्वालजी के घर पहुंचा गये! वाह भक्तवत्सलता।

कुंडली

बन में भैंस चरावने, गये एक दिन खाल ।
 सन्त सेव में भैंस का, विसरा उन्हें खयाल ॥
 विसरा उन्हें खयाल, चोर आ भैंस चराई ।
 दीपदान के रोज, ताहि हंसली पहिनाई ॥
 रस्सा तुड़वा श्याम, भैंस ले आये क्षण में ।
 भोला ! भज घनश्याम, ग्राम बस अथवा बन में ॥

कथा लाखा भक्त की ।

लाखा भक्त मारवाड़ के रहने वाले थे । उनका जन्म
 हनुमान वंश में हुआ था । यह सत्यासत्य का निर्णय करने में
 हंस के समान थे । राममंत्र के उपासक साधु सेवा में विख्यात
 हुये । एक बार दुष्काल पड़ा । साधुओं का आना जाना बहुत
 हुआ, अन्न पास नहीं रहा तो दूसरे स्थान पर चले जाने का
 विचार करने लगे । भगवत् ने स्वप्न में आकर वहीं रहने की
 आज्ञा दी और कहा कि सवेरे एक गाड़ी गेहूं की और एक भैंस
 आवेगी, गेहूं तो एक कोठी में भर देना, जितनी आवश्यकता हो,
 निकाल लिया करना, घटेंगे नहीं । भैंस के दूध में से घी निकाल
 लिया करना । जब सवेरा हुआ तो एक आदमी गेहूं और भैंस
 ले पहुंचा गया । लाखा भक्त यथा पूर्व साधु सेवा करने लगे ।
 वृत्तांत यह हुआ कि एक जमींदार शेखी मारने लगा । यह सुन
 कर किसी ने कहा कि ऐसा ही बड़ा दानी है तो गेहूं और भैंस
 लाखा भक्त के यहाँ पहुंचा दे । यह सुन कर जमींदार को ताव

आ गया और वह ही आकर गेहूं और भैंस लाखा के यहां पहुंचा गया। एकवार लाखा भक्त एक सुमरणी भेंट लेकर साष्टांग दण्डवत् करते हुए जगन्नाथजी गये जब मन्दिर थोड़ी दूर रह रह गया तो जगन्नाथ राय ने पालकी भेज कर दर्शन दिये और सुमिरणी अंगीकार की। कुछ दिन पुरी में रहे। एक लड़की कुंवारी थी। साधु सेवा में रुपया खर्च हो जाता था बिना रुपया विवाह कैसे होता? जगन्नाथ जी ने आज्ञा दी कि हमारे भंडार से रुपया लेकर विवाह कर दो। लाखा ने अंगीकार नहीं किया। पुरी से चल खड़ा हुआ। जगन्नाथ जी ने एक राजा को स्वप्न दिया। उसने एक हजार रुपये लाखा भक्त की भेंट किए लाखा भक्त ने भगवत् आज्ञा जान कर रुपया अंगीकार कर लिया। घर आकर लड़की का विवाह कर दिया और जो रुपया बचा साधु सेवा में लगा दिया।

छप्पयः-

हनूमान के वंश, भक्त लाखा थे दानी।
मारवाड़ के देश, साधु सेवी निर्मानी ॥
जब आया दुष्काल, भक्त लाखा धरारये।
भगवत् भेजी भैंस, साथ ही अन्न पठारये ॥
दिया दर्शन जगदीश, व्याह कन्या करवाया।
भोज ! भज विश्वेश, छांड छल होय अमाया ॥

कथा मनसुखदास की

मनसुख दास जाति के कायस्थ थे। यह ऐसे भगवद्भक्त

हुये कि इनको भगवत् ने साक्षात् दर्शन दिये । साधु सेवा में इनकी बहुत ही प्रीति थी । दैवयोग से कंगली आ गई, पैर के भौं लाले पड़ गये, उपवासों से दिन कटने लगे । ऐसी दशा में किसी दुष्ट के बहकाने से एक साधु ने आकर मिठाई का भोजन माँगा । मनसुख दास ने स्त्री से कहा । स्त्री ने तुम्हें ही नाक में से नथ उतार कर हाथ पर रख दी । नथ गहने धर के साधु को मिठाई खिला दी । भगवत् अपने भक्त को परम साध्वी धर्मपत्नी को भला नंगी नाक कब देख सकते थे, शत्रु ही मनसुख दास का रूप धारण करके बनेये के यहाँ से नथ छुड़ा लाये और मनसुख दास की स्त्री को देने लगे । बड़भागिनी चोका लगा रही थी, बोली 'पहिना दीजिये' ! प्रभु ने श्री हस्त से नाक में नथ पहिना दी । मनसुख दास की भक्ति से स्त्री की भक्ति अधिक थी क्योंकि दरिद्रता के कारण केवल एक गहना था सो भी नाक का कि उसी से स्त्री सुहागिन कहलाती है उसी को उतार कर साधु सेवा की, फिर भगवत् क्यों न दर्शन दें । जब मनसुख दास बे सुना तो मग्न हो गये, स्त्री के भाग्य को धन्य जाना आप भी दर्शन को अभिलाषा से अन्न जल छोड़ कर भजन करने लगे । स्वप्न हुआ कि काशी में दर्शन होंगे । मनसुख दास काशी आकर भजन करने लगे और वहाँ प्रभु ने चतुर्भुज रूप से दर्शन दिये । उसी रूप की भक्ति का वर माँगा और अन्त में उसी को प्राप्त हुये ।

जाया मनसुख दास
साधु सेव हित तु
नथ गिरवी धरि
दाम देय नथ ल
बड़भागिनि अप
भोला ! मनसुख

कथ

राजावाई राम

ज्यों भगवत्, गुरु
मैंने रुपा करके
सदा अपने स्वामी
नया भक्ति को मु
की प्राप्ति का हेतु
तनी थीं कि एक
कुछ धन पास था
के लिये भी कुछ
कर्ता नाभा जी
रह गये थे, विच
वे ही कड़े नाम
'आज तक श
उतर गया

कुण्डली

जाया मनसुख दास की सेवा भक्ति प्रवीण ।
 साधु सेव हित तुरत ही, नथ गिरवी धरि दीन ॥
 नथ गिरवी धरि दीन, दयाम सुन्दर सकुचाये ।
 दाम देय नथ लाय, नाक निज कर पहिनाये ॥
 बड़भागिनि अपनाय, पुनः मनसुख अपनाया ।
 भोला ! मनसुख धन्य, धन्य मनसुख की जाया ॥

कथा राजाबाई की ।

राजाबाई रामराजा के पुत्र खेमाल की धर्मपत्नी थी
 इन्होंने भगवत्, गुरु और भक्तों को ऐसी सेवा और भक्ति की कि
 संतों ने कृपा करके दोनों लोकों से निर्भय कर दिया । इन्होंने
 सर्वदा अपने स्वामी की शिक्षा के अनुकूल आचरण किया,
 नवधा भक्ति को मुख्य मानकर अन्य धर्म छोड़ दिये थे । भक्ति
 की प्राप्ति का हेतु केवल भक्तों की प्रीति मानती थी । उदार
 इतनी थीं कि एक बार अपने पति के साथ मथुरा जी गई । जो
 कुछ धन पास था सब साधु ब्राह्मणों को दे दिया, राह के निर्वाह
 के लिये भी कुछ पास न रक्खा । उसी समय भक्त माल के
 कर्ता नाभा जी आगये, हाथों में एक सो पांच रुपये के दामके
 रह गये थे, विचार किया कि इनको बेच कर घर पहुँच जावेंगे
 वे ही कड़े नाभाजी की भेट दे दिये और राजा से कहने लगी
 'आज तक शरीर पर बोझ रहता था, आज ईश्वर कृपा से
 उतर गया, साधुओं के काम में आगया । राजा यह सुनकर

बहुत प्रसन्न हुये और किसी प्रकार से राजधानी पहुँच गये।
सच है, जिसने कल की चिन्ता की, वह साधु सेवा क्या
करेगा ?

कुंडली

राजाबाई पतिव्रता, भक्त न पद में प्यार ।
प्रेमी नवधा भक्तिकी, दानी परम उदार ॥
दानी परम उदार, तीर्थ मथुराजी कीन्हा ।
था जो कुछ धन पास, दान सब ही करि दीन्हा ॥
नामाजी की भेंट कदे दीन्हे सुख पाई ।
भोला कूँ दी सीख, धन्य नू राजाबाई ॥

कथा गोपाली की ।

गोपाली गिरिधर ग्वाल की माता थी । गिरिधर ग्वाल
की कथा आगे सुनावेंगे । भगवद्भक्तों के पालने में यह माई सचमुच
यशोदा माई का अवतार थी । मन मोहन महाराज से ऐसी प्रीति
थी कि ब्रजचन्द्र महाराज के माधुर्य रस और प्रेम भक्ति के रंग
से रंगी हुई दिन रात श्रीगोविन्द श्रीगोविन्द यह ही ध्वनि लगी
रहती थी । सन्तों के चरणों में दृढ़ प्रीति थी ।

कुरुडली

माता गिरिधर ग्वाल की गोपाली विरूपाक्ष ।
भगवद्भक्तन पालने, हुई यशोदा मात ॥
हुई यशोदा मात, प्रीति मन मोहन रखती ।
रंगी प्रेम के रंग भक्ति रस क्षण २ चखती ॥

श्रीगोविन्द गोविन्द
भोला भी है बा

एकान्तपदार
सर्ववर्जितचि

कुंडली-करिये इंदवर

सुनिये नि

कीजे अन्य

तन, मन,

भोला !

त्याग मा



श्रवण का अनु

मस्तर

तुम्हारी बुद्धि

है । भगवत

श्रीगोविन्द गोविन्द, रटत निश दिन था जाता ।
भोला भी है बाल, पाल गोपाली माता ॥

एकाक्षरपदारुढं सर्वात्मकमखाण्डितम् ।
सर्ववर्जितचिन्मात्रं त्रिपान्न रायणं भजे ॥

श्रवण निष्ठा

कुंडली—करिये ईश्वर ध्यान नित, भजिये ईश्वर नाम ।
सनिये नित भगवत् कथा काजे अन्य न काम ॥
कीजे अन्य न काम, भजन भगवत् का कीजे ।
तन, मन, वच भजि राम, श्रय अपना करि लीजे ॥
भोला ! भव बड़ शूल, मूर्ति भगवत् उर धरिये ।
त्याग मान अपमान, ध्यान ईश्वर नित करिये ॥



सारामः—हे भगवन् ! कल आपने साधु
सेवा और सत्संग को महिमा वर्णन की थी
बहुत से भक्तों की कथायें भी वर्णन की थी ।
नवधा भक्ति की प्रथम निष्ठा श्रवण है, कृपा
करके आज श्रवण का माहात्म्य सुनाइये और
श्रवण का अनुष्ठान करने वाले भक्तों की कथायें भी सुनाइये ।

मस्तरामः—(प्रसन्न होकर) भाई ! मंसाराम ! अब तो
तुम्हारी बुद्धि कुछ २ शुद्ध होती जा रही है, ऐसा अनुमान होता
है । भगवत् के चरित्रों के सुनने को भक्ति तत्ववेत्ता श्रवण कहते

वत् भक्त मुख्य श्रवण मानते हैं, नादब्रह्म का सुनाना भिन्न मार्ग है। सारांश यह है कि सुने बिना कोई कार्य नहीं हो। और भगवत् की प्राप्ति के लिये भगवच्चरित्र सुनने के सिवा और कोई मार्ग सुखसाध्य नहीं है। केवल भगवत् गुण गान सुनना ही सुख साध्य है, सत्संग की महिमा जो शास्त्र, पुराण इतिहास आदिकों में लिखी है उस का भी यह ही तात्पर्य है कि भगवच्चरित्र सुन कर भगवत् पद को प्राप्त हो। श्रवणनिष्ठा की महिमा स्वयं भगवान् ने श्रीमुख से अनेक स्थलों पर वर्णन की है। हरिवंश पुराण में लिखा है कि जहां भगवत् कथा सुनाई जाती है वहां वेद और सब शास्त्र उपस्थित रहते हैं, जिन को मुक्ति की इच्छा हो वे भगवत् कथा सुनें। भगवत् का वचन है कि जो भगवत् कथा रूप अमृत का कर्णपुट द्वारा पान करता है, उसके सब पाप नष्ट होजाते हैं। एक स्थल पर कहा है कि जो कोई भाग्यहीन, भगवत् कथा को छोड़ कर सारहीन निन्दित कथायें सुनते हैं, वे लोण शुद्ध भोजन छोड़ कर अभक्ष्य पदार्थ भक्षण करने वालों के समान हैं। जितने भक्त हुये हैं, अब हैं, आगे होंगे, यह सब श्रवण का प्रताप है।

यद्यपि भगवच्चरित्रों का सुनना सर्व प्रकार से ही मंगल रूपा है, फिर भी यदि विधि पूर्वक, विश्वास सहित, प्रेम से सुने तो कहना ही क्या है, फिर तो सोना और सुगंध है, विधि पूर्वक कथा श्रवण की यह रीति है कि कथाके वक्ता व्यास को भगवत् रूपा जाने, हरिचरित्रों और हरिचरित्र वर्णन करने वाले शास्त्र में पूर्ण प्रेम हो, एकाग्र चित्त होकर कथा श्रवण करे, सुने हुये का

भली प्रकार मनन करे और श्रवण मनन किये हुये अनुसार वर्तें क्योंकि यदि श्रवण किये अनुसार वर्तान न हुआ तो गधे के ऊपर लदी हुई पुस्तकें जिस प्रकार भार रूप हैं इसी प्रकार श्रवण करना भी निष्फल ही है। भगवत् कथा सुनने में ऐसी प्रीति हो कि सुनने से तृप्ति हो न हो ! जो २ चरित्र भगवत् के सुने, उन को नवीन समझे, यह नहीं कि जो चरित्र एक बार सुन लिया दूसरी बार सुनने का क्या प्रयोजन है ? नहीं बार-बार सुने, पृथु महाराज ने भगवच्चरित्र सुनने को दश हजार कान मांगे थे । नवधा भक्ति में प्रथम जो श्रवण कहा है, उसका यह ही अभिप्राय है कि भगवच्चरित्र के श्रवण बिना भक्ति प्राप्त नहीं होती । यद्यपि परस्पर बात चीत करने में भगवच्चरित्रों का सुनना, विष्णुपद आदि का सुनना भी श्रवण ही है फिर भी भगवद्भक्तों के संग्रह में भगवच्चरित्र सुने जाय तो बहुत ही श्रेष्ठ है क्योंकि वहां श्रवण के सब साधन विद्यमान होते हैं जो कुछ सन्देह अथवा भ्रम होता है तुरन्त ही निवृत्त हो जाता है । पुराण आदि की कथा करना, यह भी श्रवण की अच्छी रीति है क्योंकि ऐसा होने से स्वाभाविक ही सत्संग का लाभ होता है, कहीं २ कथा करने की रीति वर्तमान है और उससे यथेष्ट लाभ होता देखने में आता है । आजकल तो कथा कराने का निराला ही ढंग है । प्रथम भगवच्चरित्र सुनने में लोगों की रुचि ही बहुत कम होती है और कोई मंदभागी तो ऐसा कहते सुनने में आये हैं:- 'अजी कथा सुनने से क्या होता है ? करनी प्रमाण है।' इन मूढ़ पुरुषों से पूछना चाहिये कि करनी प्रमाण है, यह

है परन्तु यह तो विनियोग आदि काय कथा का व्यवहार श्रवण द्वारा न तक भगवत् कथा का प्रकार समझ में आता है, सरदार, मुलाखत से तो कथा कहल जाये का, लंगाटिया मिट्टी दबाया तो उसकी सर कर दंत है कथा जाता। कोई सा प्रकाश काम काज का भोद, अपने पाप किया है, बहुत कथा सुनी हैं, कथा का संग्राम हो सुन चुके हैं कोई कथा करने आजायगे, कथा समझ कर कंगाल नहीं जाता । शत जाता है, कथा खेल कूद, तमाश सुनने को मुफ्त भी गये तो श्रवण

तो ठीक है परन्तु यह तो विचारना चाहिये कि लिखना, पढ़ना, सानापिरोना आदि कार्य करने को चतुराई, लेन देन आदि संपूर्ण व्यवहार श्रवण द्वारा हा तो उनके जानने में आया है तो जब तक भगवत् कथा न सुनें तब तक भगवत् का स्वरूप किस प्रकार समझ में आवेगा? बहुत से पेशवयवान, सेठ साहूकार, सरदार, मुलाजिम सरकार ऐसे हैं कि अपनी प्रसन्नता से तो कथा कहलाते हा नहीं, कोई पारेचित ब्राह्मण मोहल्ले का, लंगाडिया मित्र अथवा पुरोहित आगया और उसने गला दबाया तो उसको कथा बैठा देते हैं और इष्टमित्रों को खबर कर देते हैं कथा प्रारंभ हो जाता है, सुनने कोई नहीं आता! कोई सायकाश न मिलने का बड़ाना कर देता है, कोई काम काज का भोड़ बना देता है। कोई कह देता है कि क्या हमने पाप किया है, जो कथा सुनें! कोई कह देता है कि अजी बहुत कथा सुनी हैं, वह ही राम रावण का युद्ध होगा, कंस कृष्ण का संग्राम होगा, कोई नई बात तो हागी ही नहीं, सब सुन चुके हैं कोई कहता है कि जिस दिन संपूर्ण होगी, पूतन करने आजायंगे, कोई अपने को बड़ा आदमी अथवा ओहदेदार समझ कर कंगाल अथवा छोटे नौकर के यहाँ कथा सुनने नहीं जाता। शतरंज, चौसर, गंजफा खेलने को समय मिल जाता है, कथा सुनने को फुरसत नहीं! कुत्सित कथा, नाटक, खेल कूद, तमाशा, देखने दाम खर्च करके भी चले जायेंगे, कथा सुनने को मुफ्त भी जाना दोष समझेंगे! भाग्यवश बदि चले भी गये तो थोड़ी देर भी मन न लगा, जाते ही निद्रा विलास

में पड़ गये। जब किसी ने पूछा कि कथा सुन आये तो कथा और पण्डित दोनों को निन्दा करने लगे। प्रायः ऐसा होता है कि केवल कथा कराने वाला कथा सुनाता रहता है, जब समाप्त होने का दिन आता है तो दश बीस बार बुलाने से लोकलाज से पूजन के समय लोग आ जाते हैं कि कहीं कोई अक्षर कान में न पड़ जाय। यदि कथा पूर्ण होने में देर होती है तो बुलाने वाले आदमी पर क्रोध करते हैं कि इतना पहिले क्यों बुला लाया। कोई पण्डित से कहता है महाराज शीघ्रता कीजिये, संध्या होने वाली है, कोई उचक उचक कर पुस्तक के पत्रों को देखता है कि अन्त की पंक्ति आई या नहीं, कोई घर के अधिष्ठाता से कहता है कि आरती आदि का सामान तैयार कर रखो कि विलम्ब न हो, कोई मन ही मन में कहता है, अरे! किस उत्पात में आन फंसे, बाजार की सैर करते अथवा बगीचे में टहलते, यहां आकर जेलखाने में फंस गये! किसी ने मुद्रा भेज दिया औरों को दुःख न दिया। जैसे तैसे कथा पूरी हुई कोई भले मानस तो खोटा रुपया ही चढ़ा गये। वाह! कहां तक बढ़ाई की जाय कि नाच में जाय तो स्वप्न में भी नींद न आवे, प्रेम में भूख प्यास सब भूल जाय और सब से पहिले जा बैठे और भगवच्चरित्र सुनने का और कथा में जाने का यह वृत्तांत कि मानों किसी ने तोप के मुख पर खड़ा कर दिया हो!

मंसाराम:- महाराज! ये सब बातें तो मुझ पर ही घटती हैं, मैं भी ऐसा ही किया करता था! अब भी करता हूँ। महाराज! यह जो बड़ा पाप है ईश्वर की कृपा हो तो

श्री
पेड़ा पार होजाय जीन
नहीं! महाराज! भव
प्राय भी है, कृपा करके
मंसाराम:-भाई मंस
प्रार्थना करता है:-हे
सल! हे प्रणतारत
! हे सकल गुणवाग्य
के सदृश आपके प
वक्र की भांति होग
रूप अनूप का चित
यान होगा और मेरा म
करुणाकर! महाराज
परार्थों का विचार क
गता नहीं दोखता औ
प्रमोदार्क, करुणा
ताता हूं, न भय को
देनी है। हे भगवन्!
की जानते ही हैं, आ
ऊपर नाममात्र का
और संतुष्ट, होऊं
कई जितने मेरे क
जिसके अवलम्बन
इतनी ही विनय

भले ही बेड़ा पार होजाय जीवकी करनी से तो पार होने की आशा है नहीं ! महाराज ! भगवच्चरित्र सुनने में मन लगने का कोई उपाय भी है. कृपा करके बताइये !

मस्तराम:-भाई मंसाराम ! एक भक्त भगवत् से इस प्रकार प्रार्थना करता है:-हे श्रीकृष्ण स्वामी ! हे अन्तर्यामी ! हे भक्तवत्सल ! हे प्रणतारतमंजन ! हे देवनिरंजन ! हे करुणासागर ! हे सकल गुणभागर ! कोई दिन ऐसा भी आवेगा कि चन्द्रमा के सदृश आपके परम पवित्र चरित्र होंगे और मेरा मन चकोर की भाँति होगा ! वह कौनसी घड़ी आवेगी कि आपके रूप अनूप का चिंतन और ध्यान, ऐश्वर्य और धन के समान होगा और मेरा मन लालची पुरुष के समान होगा ! हे करुणाकर ! महाराज ! जब अपनी भाग्यहीनता और अपने अपराधों का विचार करता हूँ तो करोड़ों जन्मों तक ठिकाना लगता नहीं दीखता और जब आप के पतितपावन, दीनवत्सल, अधमोद्धारक, करुणाकारक नामों को सुनता हूँ तो निर्भय हो जाता हूँ, न भय को स्थान मिलता है, न चिंता को ठोर दिखाई देती है । हे भगवन् ! एक बात और भी गुह्य है, आप तो घट २ की जानते ही हैं, आप से कुछ छुपा नहीं है मेरा यह कथन ऊपर ऊपर नाममात्र का ही है, मन से नहीं है । यदि मन से दृढ़ और संतुष्ट, होऊँ तो अभी बेड़ा पार है । हे भगवन् ! कहां तक कहूँ जितने मेरे कर्म हैं, उनमें से एक कर्म भी ऐसा नहीं है कि जिसके अवलम्बन से आप के अंगीकार करने योग्य होजाऊँ ! इतनी ही विनय बहुत है कि जैसा हूँ, वैसा आप का हूँ । आप

ही मेरे प्रभु और मैं आपका किंकर हूं, यदि आपके चरित्रों का यह ध्यान समाज मेरे हृदय और नेत्रों में सर्वदा झलके तो मेरे सिवा कोई भाग्यवाला नहीं है।

ध्यान समाज ।

पावन नदी सरयू का दिव्य किनारा है, किनारे पर परमशोभायमान अखाड़ा है ! अखाड़े की दीवारें छोटी २ परम सुहावनी चिकनी २ हैं। चिकनी दीवारों पर चित्र विचित्र चित्राम खिंचे हुये हैं स्वर्ण के पानी के परम सुन्दर बेल बूटे बनाये गये हैं जिनको देखकर आँखों में रोशनी होती है, चित्त में परम आह्लाद उत्पन्न होता है ! सांभ सवेरे रघुनंदन स्वामी अपने भाइयों और समान वयवाले लंगोटिया मित्रों सहित वहां आते हैं और नाना प्रकार के खेल कूद में तत्पर होते हैं। कभी तो शुक सारिकाओं के मधुर रसीले बयन सुनते हैं, कभी कबूतरों की गुटरगू सुनने में मग्न हो जाते हैं ! कभी लालों की दो २ चोंचें होते हुये प्रेम पूर्वक निहारते हैं। कभी हंसों से क्षीर नीर पृथक् कराते हैं ! कभी सारस की लम्बी गरदन देख कर प्रसन्न हो गर्दन हिलाते हैं। कभी मयूर का नृत्य देख कर जामें में फूले नहीं समाते ! कभी पतंग आकाश में ऊंचा बढ़ा कर हत्थों पर से तोड़ देते हैं साथी लड़के लूटने दौड़ते हैं। कभी घोड़ों पर सवार होकर सब साथियों के साथ दौड़ बढ़ते हैं, जो आगे निकल जाता है, उसकी पीठ ठोकी जाती है, जो पीछे रह जाता है, उस की तालियां पिटती हैं ! कभी धीरे २ घोड़े

ते हैं, सवार होने और
तो २ बूढ़े परम शोभा
सिंहाजी का स्वांग र
ते हैं, कोई हार
कुच जाते हैं, जीते
कभी अखाड़े में म
की लड़ाई का तमाशा
हसी ठहा करते हैं !
नाव पर सवार होकर
हैं, कभी उस पार उ
बहाव पर नाव ले
जल कीड़ा करते हु
सुन कर नाचने ग
प्रसन्न होकर देते
देखते हैं ! कभी
हैं ! कभी शस्त्र श
हैं ! कभी सामग्र
कभी ब्राह्मणों
कभी घर जाये
करते हैं ! आप
पार्वती सनक
वहां से पृथि
को चरण

फेरते हैं, सवार होने और परिश्रम करने से मुख पर पसीने की छोटी २ बूँदें परम शोभा देती हैं ! कभी नेजे बाजी और कभी तीरंदाजी का स्वांग रचते हैं ! कभी मित्रों के साथ चौगान खेलते हैं, कोई हारता है, कोई जीतता है ! हारे हुये सकुच जाते हैं, जीते हुये उनकी तालियाँ पीटते हैं ! कभी कभी अखाड़े में मल्लयुद्ध होता है ! हाथी मेंढों आदि की लड़ाई का तमाशा देखते हैं ! कभी बराबर वालों के साथ हंसी ठट्ठा करते हैं ! कभी आपस में दंगामस्ती होती है ! कभी नाव पर सवार होकर बड़भागिनी सरयू में जल विहार करते हैं, कभी उस पार जाते हैं, कभी इस किनारे पर आते हैं, कभी बहाव पर नाव ले जाते हैं और कभी चढ़ाव पर इस प्रकार जल कीड़ा करते हुये भक्तों को आनन्द देते हैं ! कभी नृत्य गान सुन कर नाचने गाने वालों को मन वांछित द्रव्य आभूषण प्रसन्न होकर देते हैं ! कभी गजशाला में जाकर हाथियों को देखते हैं ! कभी घुड़शाला में जाकर घोड़ों का अवलोकन करते हैं ! कभी शस्त्र शाला में जाकर अस्त्र शस्त्रों का निरीक्षण करते हैं ! कभी सामग्रीशाला में जाकर सामग्रों की जांच करते हैं ! कभी ब्राह्मणों और भक्तों पर दया और कृपा दृष्टि करते हैं ! कभी घर जाये दास और दासियों के पालन पोषण की चेष्टा करते हैं ! आप की इस अद्भुत् चेष्टा को ब्रह्मा, शिव, ब्रह्मानी, पार्वती सनकादि, नारदादि, आकाश में आकर देखते हैं और वहां से पृथिवी पर आकर नित्य आपके दर्शन करते हैं, मन को चरणारविन्दों पर न्यौछावर के वियोग के कारण

दुःख से आंखों में से आंसू बहाते हुये, जलती हुई छाती सहित लौट जाते हैं ! आपके मुखारविन्द को देख कर करोड़ों कामदेव लजाते हैं और चन्द्रमा वारे जाते हैं ! घूँघर वाली अलकों को छुयी हुई देख कर श्याममेघ लज्जित होते हैं ! कानों में सुवर्ण के कुंडल हैं, शिर पर जड़ाऊ किरीट मुकट है, बाजूबन्द भुजाओं पर शोभा दे रहे हैं, कड़े और पहुंची हाथों में हैं, अंगुलियों में अंगूठी और छलने हैं पीताम्बरी बागा है, बागे के ऊपर मुक्कीश आदि जगह २ टंके हुये हैं जरी के शोभायमान दुपट्टे से कटि कसी हुई है, गले में वनमाला है, वनमाला के ऊपर मणि और मोतियों की माला पड़ी हुई है, कलंगी पहिने हुये हैं, पीताम्बरी धोती कमर पर विराजमान है, चरण कमलों में घुँघुरु शोभित हैं, नव वर्ष की वय है, ऐसे ही साज और शृंगार सहित भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, और दूसरे राजकुमार और सखा साथ में हैं ! छोटी २ कमान और तीर हाथों में हैं, मानों शोभा और शृंगार स्वरूपवान् होकर धरती पर आये हुये हैं । सब ब्रह्मांडों की शोभा और सजावट एकत्र होकर अयोध्यापुरी वासियों की चित्तवृत्ति को बलात्कार से लूटते हैं ! अयोध्यापुरी वासियों के ऐसे भाग्य की बड़ाई करते हुये शेष शारदा भी अपने को धन्य मानते हैं ।

कुं - सुन्दर सुख कर शांति कर, रूप राशि भगवान् ।

दो गोरे दो सांवरे, हाथ लिये धनु बाण ॥

हाथ लिये धनुबाण, भक्त तारक भयहारक ।

भुक्ति मुक्ति दातार, भयकारक भयटारक ॥

भोला ! जा सब भ

भरत लवण शत्रु

हे मंसाराम ! उ

ध्यान करने से

गान्धर्व सुनने में

जगत् के कता धत

पत्ते हैं, इसलिये अप्र

विचित्र रूपा है इसति

सर्व व्यापक हैं । इन

भगवत् के प्रत्यक्ष

नहीं तो भगवत् स

प्रवण ही भगवत्

पाति की इच्छा वाले

प्रवण करते आदि

फोकी होजाती है अ

है भगवत् स्वरूप के

भिन्न नहीं रहते वि

को सियाराममय

है, अखंड सुख की

का श्रवण मुख्य व

भक्तों की कथायें

भोला ! जा सब भूल, धारि उर आंखिन अन्दर ।

भरत लषण शत्रुघ्न, राम छवि अनुपम सुन्दर ॥

हे मंसाराम ! उपरोक्त ध्यान समाज का श्रवण कीर्तन और ध्यान करने से बुद्धि शुद्ध होती है, बुद्धि शुद्ध होने से भगवच्चरित्र सुनने में प्राप्ति होता है। हे मंसाराम ! भगवत् सर्व जगत् के कता धर्ता हैं, भगवत् सीधे, सादे, सरल और सच्चे हैं, इसलिये अप्रत्यक्ष हैं आदि शक्ति चमक दमक वाली विचित्र रूपा है इसलिये प्रत्यक्ष हैं। चन्द्रावली श्रुति रूप से सर्वत्र व्यापक हैं। इनकी सहायता से भगवत् का प्रत्यक्ष होता है। भगवत् कं प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष होनेमें भक्त का भाव भी कारण है, नहीं तो भगवत् सर्वदा परम प्रत्यक्ष हैं। श्रुति श्रवण रूप है, श्रवण ही भगवत् प्राप्ति का मुख्य उपाय है। भगवत् प्राप्ति की इच्छा वाले को श्रवण की ही शरण लेनी चाहिये। श्रवण करतेर आदि शक्ति को चमक दमक मोलमो के समान फीकी होजाती है और भगवत् के स्वरूप का आविर्भाव होता है भगवत् स्वरूप के आविर्भाव होने से भगवत् और आदिशक्ति भिन्न नहीं रहते किंतु अभिन्न प्रतीत होते हैं। फिर भक्त जगत् को सियाराममय देखता है और सर्वदा के लिये सुखी हो जाता है, अखंड सुख की प्राप्ति श्रवण का फल है इसलिये सुखेच्छु का श्रवण मुख्य कर्तव्य है। हे मंसाराम ! अब श्रवण परायण भक्तों की कथायें कहता हूं, ध्यान देकर सुन:-

ति कर, रूप राशि भगवत् ।
हाथ लिये धनु बाण ॥
भक्त तारक भयदाक ।
श्रेयकारक भयदारक ॥

कथा नारदजी की

हे मंसाराम ! भगवद्भक्ति की सब निष्ठाओं में नारद जी महाराज अग्रणीय हैं, भागवत् धर्म के प्रचारक हैं और कीर्तन के विशेष प्रेमी हैं। नारद मुनि देवर्षि और परम भागवत् कहलाते हैं। यह पदवी इनको श्रवण के अवलम्ब से प्राप्त हुई है, इसलिए श्रवण निष्ठा में इनकी कथा लिखी जाती है। नारद जी भगवत् के मन हैं, ब्रह्माजी के पुत्र हैं। जगत् के उपकार करने में इनकी इतनी प्रीति है कि दो घड़ी से अधिक एक स्थान पर नहीं ठहरते। बाल्मीकि रामायण और श्रीमद्भागवत् ये दो जहाज जीवों को संसार समुद्र से तारने के लिये जो बने हैं, वह नारद जी के बनाये हुए हैं इन दोनों में नारद जी का दिया हुआ उपदेश ही है, जिन २ पर नारद जी की कृपा हुई है, वे २ भगवत् रूप हो होगये हैं। प्रह्लाद, ध्रुव, साठहजार दक्षप्रजापती के पुत्र प्रचेता आदि लाखों ही इन की कृपा से तरण तारण हो गये हैं जिन की गिनती नहीं हो सकती। इनकी कृपा तो संसार से उद्धार करने वाली है ही, इनका क्रोध भी मुक्ति का दायक है। जिन २ पर इन्होंने क्रोध किया वे भी भगवत् को प्राप्त हुये। महादेव के गणों को शाप देकर मुक्ति दिलवाई, यमलाञ्जुन को वृक्ष बना कर भगवान् के हाथसे मुक्त कराया, इत्यादि अनेक चरित्र प्रसिद्ध हैं। नारद जी के चरित्र अपार हैं। इनके पूर्व जन्म का चरित्र जिस से इनकी गणना श्रवण निष्ठा में हुई है, वह यह है:-भागवत् में लिखा है कि पूर्वकल्प में नारदजी दासी

दुःख पड़ने से इन की अपनी और नारद जी की कथावार्ता सत्संग करते थे। कथा सुनते प्राप्त होगई तो इनकी नारद जी बन में जाकर भगवत् के रूप अनूप का अंतर्धान हो गया, मिल होकर भगवद्भजन कल्प में ब्रह्मा के ऐसे राजा भी वर्णन नहीं करता है? कोई नहीं! निमग्न करते ही रहते हैं

कुं:- नारद च
दया करें
मुक्ति शाप
जन्म मरण
भोला !
गाते हरि

गरुड़ जी
उनकी गणना से

पुत्र थे। दुःख पड़ने से इन की माता ऋषीश्वरों के यहाँ रहल करके अपनी और नारद जी की पालना करती थी। ऋषीश्वरों के यहाँ कथावार्ता सत्संग हुआ करता था। नारद जी कथा सुना करते थे। कथा सुनते २ जब इन को ज्ञान, वैराग्य और भक्ति प्राप्त होगई तो इनकी माता का देहान्त हो गया। पश्चात् नारद जी वन में जाकर भगवत् का ध्यान करने लगे। एक बार भगवत् के रूप अनूप का उनके हृदय में प्रकाश हुआ और शीघ्र ही अंतर्ध्यान हो गया, नारद जी उसी रूप अनूप के प्रेम में विकल होकर भगवद्भजन करते रहे। अंत में फल यह हुआ कि इस कल्प में ब्रह्मा के ऐसे प्रतापी पुत्र हुये, जिन की महिमा स्वयं ब्रह्माजी भी वर्णन नहीं कर सके फिर दूसरा कौन वर्णन कर सकता है ? कोई नहीं ! किसी न किसी प्रकार जीवों को भगवत् संमुख करते ही रहते हैं,

कुं:- नारद चरति अपार हैं, जानि सकें नहिं कोय ।

दया करें हरि भक्ति दें, मुक्ति शाप से होय ॥

मुक्ति शाप से होय, दुःख संसृति छुट जावे ।

जन्म मरण निर्मूल, शोक भय पास न आवे ॥

भोला ! वेही धन्य, भक्तवर परम विशारद ।

गाते हरि गुण आप अन्य उपदेशत नारद ॥

कथा गरुड़ जी की ।

गरुड़ जी भगवत् के पार्षदों में हैं, इसलिये भगवद्भक्त उनकी गणना सेवा निष्ठा वालों में करते हैं किन्तु एक समय

उनको मोह हो गया था इसलिये उन्होंने काकभुशुण्डि के पास जाकर जब भगवत् के चरित्र सुने तब उनको ज्ञान हुआ था इसलिये श्रवणनिष्ठा वालों में भी उनकी गिनती है, जब श्रीरामचन्द्र जी महाराज ने विजय के हेतु लंका पर चढ़ाई की तो रावण का बेटा मेघनाद युद्ध करने आया और संपूर्ण सेना सहित दशरथ राजकुमार महाराज को नाग पाश में बांध लिया। नारद जीने गरुड़ को भेजा गरुड़ जी ने सब सर्पों को खालिया और इन्द्र जी की माया दूर होगई। गरुड़ को भ्रम हो गया और मन में विचारने लगे कि मैंने तो सुना था कि श्रीरघुनाथ जी ईश्वरावतार हैं, यह तो तुच्छ राक्षस के पाश में फंस गये? किसी प्रेमी के पाश में फंसे होते तब भी ठीक था यह कैसे ईश्वर हैं? जिनको राक्षस ने बांध लिया? सुनता था कि उनकी माया के पाश में अगणित ब्रह्मांडों के नियंता ब्रह्मादिक देवता फंसे हुये हैं और इनका नाम लेने से जीव की जन्म मरण की फाँसी कट जाती है आकर देखा तो इनका प्रभाव कुछ भी देखने में नहीं आया, जब मैंने पाश काटा तब पाश से मुक्त हुये इस प्रकार मोहित हुये गरुड़ जी ब्रह्मा जी के पास गये। ब्रह्मा जी मोह दूर न कर सके उन्होंने शिवजी के पास भेज दिया। शिवजी ने, पक्षी की बोली ही भली भाँति समझेगा, ऐसा विचार कर काकभुशुण्डि के पास भेज दिया, गरुड़ जी शिव जी के कहे अनुसार नीलाचल पर काकभुशुण्डि के पास गये और वहाँ जाते ही उनका मोह दूर हो गया। वहाँ उन्होंने संपूर्ण रामयण का श्रवण किया और नित्य ज्ञान को प्राप्त हुये। सच

भगवच्चरित्र अज्ञानत
ता पूर्ण करने के लिये

हुं-माया भगवत्
जो सुनता भगवत्
सोही होता पार,
होवे पूर्ण अशोक,
भोले गरुड़ सुजा
पापा सांचा शा

कथा रा

अभिमन्यु के पुत्र
नेत्रा में प्रधान और अ
भार में इन्हीं के द्वार
जोय है करोड़ों जीव
हुं, होते हैं और आगे
किया और परीक्षित
प्राप्ता का पालन करने
लिये जब वे निकले त
उल के कारण ऋषि
को शाप का वृत्तांत
तब अपने बड़े पुत्र
उत्तरमुख आन बैठे
और ब्राह्मणों को

है कि भगवच्चरित्र अज्ञानतम को दूर करने के लिये सूर्य है और कामना पूर्ण करने के लिये कलवृक्ष और कामधेनु है ।

कुं:-माया भगवत् है प्रबल, मोहा सब संसार ।
जो सुनता भगवत् चरित, सोही होता पार ॥
सोही होता पार, कथा भगवत् की सुनता ।
होत्रे पूर्ण अशोक, शोक से शिर नहि धुनता ॥
भोले गरुड़ सुजान, काक भगवत् गुण गाया ।
पाया सांचा ज्ञान, भगी सूटी सब माया ॥

कथा राजा परीक्षितजी की ।

अभिमन्यु के पुत्र, अजुन के पौत्र राजा परीक्षित श्रवण निष्ठा में प्रधान और अग्रणीय हुये हैं । श्रीमद्भागवत् की प्रवृत्ति संसार में इन्हीं के द्वारा हुई है श्रीमद्भागवत् की महिमा अकथनीय है करोड़ों जीव भागवत् को सुन कर परम पद को प्राप्त हुये, होते हैं और आगे होंगे । जब पाँडवोंने संसार का त्याग किया और परीक्षित को राज्य दे दिया तब परीक्षित नीति पूर्वक प्रजा का पालन करने लगे । दिग्विजय का धर्म पालन करने के लिये जब वे निकले तो कुरुक्षेत्र में कलियुग ने छल किया । उस छल के कारण ऋषि बालक का राजा को शाप हुआ । जब राजा को शाप का वृत्तांत मालूम हुआ तो तुरन्त ही राजा ने जनमेजय अपने बड़े पुत्र को राजगद्दी दे दी आप गंगा तट पर उत्तरमुख आन बैठे और अपने उद्धार के निमित्त ऋषीश्वरों और ब्राह्मणों को एकत्र किया । संयोगवश शुकदेव जी वहाँ

आगये और श्रीमद्भागवत् श्रवण कराया। जब कथा समाप्त हुई तुरन्त ही अपने शरीर को सुधि भुल कर भगवत् के चरणों में लीन होकर राजा समाधि में मग्न हो गये। उसी समय तक्षक नाग ने आकार ऋषि बालक का वचन पूरा कर दिया, राजा शरीर त्याग कर जहां से फिर लौट कर नहीं आते उस परमधाम को चले गये। सच है कि भगवत् चरित्रों में जिसका मन लग गया है, उसको अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इसी शरीर में प्राप्त हैं।

कुं०:-जिनके मन में हैं बसत, भगवत् चरित ललाम ।

भोला वे हैं पावते, भगवत् पावन धाम ॥

भगवत् पावन धाम, श्रवण से निदचय पावत ।

भूप परीक्षित तुल्य लौट नहि जग में आवत ॥

अर्थ धर्म कामादि, प्राप्त हों जीवत तन में ।

भगवत् चरित पुनीत, बसत हैं जिनके मन में ॥

कथा लालदास जी की ।

लालदास जी ऐसे परम भक्त हुये हैं कि उन का हृदय भगवत् चरित्रों का स्थान हो गया था। जैसे भगवत् में प्रीति करते थे इसी प्रकार गुरु में प्रेम रखते थे, लोभ स्वप्न में भी उनके पास न आया, जैसे कमल पत्र जल में रहता हुआ भी जल से निर्लेप रहता है इसी प्रकार संसार में रहते हुये संसार के हर्ष शोक उनको स्पर्श नहीं करते थे। भगवच्चरित्र सुनने में साक्षात् राजा परीक्षित के समान थे और उन्हीं के समान

वधाम को गये। एकव
हो रही थी। जब क
भगवत् ध्यान की
जहां राजा परीक्षित

कुं०:-सुन्दर भगवत्
जीवन तिन का
आयु अकारथ ज
भोगत दुःख अपा
भोला ! हो एक
लालदास की भ

हे मंसाराम !

प्राप्ति, ज्ञानी, सिद्ध,
न ही हुये हैं। श्रवण
हुं, न होती है और
श्रवण से ही सिद्ध हो
से ही होती है। श्रव
में दिखलाई है।

यज्ञादि क
भो राज्य

भगवद्धाम को गये। एकवार बघेरा ग्राम में श्रीमद्भागवत् की कथा हो रही थी। जब कथा संपूर्ण हुई, लालदास जी ने उसी समय भगवत् ध्यान की समाधि लगा कर शरीर त्याग दिया और जहां राजा परीक्षित गये थे, उसी धाम को गये।

कुं०:-सुन्दर भगवत् चरित जे सुनत नहीं मन लाय ।
जीवन तिन का व्यर्थ है, आयु अकारथ जाय ।
आयु अकारथ जाय, योनि नाना में भटकत ।
भोगत दुःख अपार, होंष पीड़ित शिर पटकत ॥
भोला ! हो एकाम्र, नाच मत जैसे बन्दर ।
लालदास की भांति, कथा हरि की सुन सुन्दर ॥

हे मंसाराम ! उपरोक्त सब का सार यह है कि जितने ध्यानी, ज्ञानी, सिद्ध, योगी भक्त हुये हैं सब भगवच्चरित्र सुन कर ही हुये हैं। श्रवण बिना किसी को कोई सिद्धि न तो प्राप्त हुई, न होती है और न आगे होगी। लोक, परलोक के सब कार्य श्रवण से ही सिद्ध होते हैं और भगवत्पद की प्राप्ति भी श्रवण से ही होती है। श्रवण की महिमा दिग्दर्शन मात्र नीचे के छन्द में दिखलाई है।

श्रवण महिमा

हरिगीत छन्द

(१)

यज्ञादि करना मंत्र जप तप श्रवण ही बतलाय है
जो राज्य का कानून है, वह भी श्रवण जतलाय है ॥

व्यापार खेती आदि भी सब श्रवण ही सिखलाय है ।
छोटा बड़ा हो कार्य कुछ भी बिनु श्रवण नहीं आय है ॥

(२)

विद्यार्थि जब करता श्रवण विद्या विनय से युक्त हो ।
सेवा अतिथि करता गृही, करि श्रवण धन संयुक्त हो ॥
कैसे तपस्या होय है, बनवासि सुन कर जानता ।
करता यही है जब श्रवण, शिव तत्व तब पहिचानता ॥

(३)

भगवच्चरित करि श्रवण भोगी प्राप्त करता भोग है ।
भगवच्चरित करि श्रवण योगी सिद्ध करता योग है ॥
भगवत् कथा सुनिये सदा, यदि इष्ट तुमको मुक्ति है ।
भगवत् कथा कीजे श्रवण, प्यारी तुम्हें यदि भक्ति है ॥

(४)

भगवत् कथा के श्रवण से, मन मैल सब धुल जाय है ।
ज्यों काच हो मन स्वच्छ, चिंता चित्त की जल जाय है ॥
आलहाद हांय प्रसाद होवे बुद्धि यिरता पाय है ।
अभिमान नहीं हो देह में, ससार जड़ बट जाय है ॥

(५)

सर्वत्र भगवत् भासते, नहीं द्वेष हो नहीं राग हो ।
अपने पराये एक सम, सब में सहज अनुगम हो ॥

नहिं शत्रु ही नहिं
दुख रूप था संस

सुख सिंधु व्याप
नहिं जोड़ है नहिं
भगवत् सिवा न
नहिं काम कुछ

नारद सुनी श्रु
श्री विष्णु पाप
पाये परीक्षित
भोला ! श्रवण

उर्ध्वपूरी
प्रभाशून्य

कुं:-

नहिं शत्रु ही नहिं मित्र ही, जग दीखता है राममय ।
दुख रूप था संसार जो अब होय है आराममय ॥

(६)

सुख सिंधु व्यापक एकरस नहिं आदि है नहीं अन्त है ।
नहिं जोड़ है नहिं तोड़ है, विभु एक देव अनन्त है ॥
भगवत् सिवा नहिं अन्य है, मोह का क्या काम है ।
नहिं काम कुछ भय शोक का, सब में रमा प्रभुराम है ॥

(७)

नारद सुनी शुचि हरि कथा, संसार भर में मान्य है ।
श्री विष्णु पार्यद गढ़ड़जी सुनि हरि कथा सन्मान्य है ॥
पाये परीक्षित आदि हरिपद सुनि कथा हरि ध्यान धरि ।
भोला ! श्रवण करि हरि कथा, दूजा न कुछ भी कान धरि ॥

उर्ध्वपूर्णमधः पूर्णं मध्यपूर्णं शिवात्मकम् ।
प्रभाशून्यं मनः शून्यं बुद्धिशून्यं भजाम्यहम् ॥

कीर्तन निष्ठा

कुं:- कीर्तन शुचिकर पापहर, अक्षय सुखदातार ।
कीर्तन करते धन्य ते, होते भव से पार ॥
होते भव से पार, गर्भ में लौट न आते ।
सोते सुख की नींद, राज्य निष्कण्टक पाते ॥
भोला ! तज सब काम, प्रेम से कर हरि चिंतन ।
जप पावन हरिनाम, नित्य कर भगवत् कीर्तन ॥

मंसाराम: महाराज ! कल आपने श्रवण निष्ठा का वर्णन किया था और चार भक्तों की कथा सुनाई थी, कृपा करके आज कीर्तन की महिमा कीर्तन का स्वरूप सुनाइये और कीर्तन निष्ठा वाले भक्तों की कथायें भी श्रवण कराइये। आपके बचनान्मृत सुनने से तृप्ति नहीं होती।

मस्नराम:-भाई ! इस कीर्तन निष्ठा की महिमा और बड़ाई कोई वर्णन करने को समर्थ नहीं है। संसार में तरण तारण पद जो विख्यात है वह इसी निष्ठा के उपासकों के आश्रित है। इसमें कुछ भी संशय नहीं है कि भक्ति और मुक्ति इसी निष्ठा पर निर्भर है। जो कोई जिस ऊंची पदवी पर पहुँचा है, वह केवल कीर्तन के अवलम्बन से ही पहुँचा है, दूसरे प्रकार से नहीं पहुँचा है। श्रवण निष्ठा में यह जो कहा था कि श्रवण के प्रभाव से भगवत् की प्राप्ति होती है इसका तात्पर्य यह ही है कि जब भगवच्चरित्रों का श्रवण करेगा तब भगवत् की महिमा जानने में आवेगी और फिर वह भगवच्चरित्रों का कीर्तन करेगा। कीर्तन का श्रवण साधन है और श्रवण का फल कीर्तन है। यदि कोई भगवच्चरित्रों को केवल सुन ही ले और कीर्तन न करे तो भगवत् नहीं मिल सके। सिद्धान्त यह है कि कीर्तन द्वारा ही श्रवण फल देता है, बिना कीर्तन श्रवण फल नहीं देता। इसीलिये शास्त्रों में श्रवण के पंछे कीर्तन का वर्णन है, 'कीर्तन शब्द का अर्थ कहना है यानी जो कहने में आवे उसका नाम कीर्तन है। शास्त्र के अभिप्राय से सब प्रकार के कथन का नाम कीर्तन नहीं है किंतु भगवच्चरित्रों के कथन करने का नाम

कीर्तन है। यह कीर्तन
भगवत् की चर्चा कर
की कथा कहानी,
भगवत् के मंत्र का अ
सोवादि का पढ़ना
भगवत् की ली
जिस प्रकार से कोई
लिखने, पढ़ने, कथन
बुके हैं, अब हैं, औ
विश्वास था और इ
इस निष्ठा बिना क
कीर्तन करता है, उ
और जो कोई कीर्त
समझने की बात है
किया जायगा, तब
नहीं रह सका। भ
हैं, और योगियों
भक्त गायन करते
कि कीर्तन करने
भक्त पर अनुग्रह
है, कि सत्य युग
से मुक्ति होती है
प्रमाण है इसी

ही कीर्तन है। यह कीर्तन कई प्रकार का है, परस्पर मिल कर भगवत् की चर्चा करना, भगवत् चरित्रों का गान करना, भगवत् की कथा कहानी, भगवत् के चरित्रों की काव्य रचना, भगवत् के मंत्र का अथवा नाम का मुख से उच्चारण करना, स्तोत्रादि का पढ़ना पढ़ाना अथवा मासिक, साप्ताहिक पत्रों द्वारा भगवत् की लीलाओं आदि का प्रकाश करना, इत्यादि जिस प्रकार से कोई भक्त भगवत् परायण हो, इस प्रकार के लिखने, पढ़ने, कथन करने, को कीर्तन कहते हैं। जितने भक्त हो चुके हैं, अब हैं, और आगे होंगे कीर्तन निष्ठा में सब का पूर्ण विश्वास था और इसी निष्ठा के अवलम्ब से सब भक्त हुये हैं, इस निष्ठा बिना कोई भी भक्त नहीं हुआ जो कोई श्रवण के बाद कीर्तन करता है, उसको अवश्य भगवत् की प्राप्ति होती है और जो कोई कीर्तन नहीं करता, उसको कोई फल नहीं मिलता। समझने की बात है कि जब तक देखे सुने हुये का कीर्तन न किया जायगा, तब तक वह किस प्रकार मन में रह सकता है। नहीं रह सकता। भगवत् का वचन है कि मैं न तो वैकुण्ठ में रहता हूँ, और योगियों के हृदय में रहता हूँ, किंतु हे नारद ! जहाँ मेरे भक्त गायन करते हैं, वहाँ मैं रहता हूँ। नारद सूत्र में लिखा है कि कीर्तन करने से भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं और अपने भक्त पर अनुग्रह करते हैं। भागवत् के एकादश स्कन्ध में कहा है, कि सत्य युग में ध्यान से, त्रेता में यज्ञ से, द्वापर में पूजा से मुक्ति होती है और कलियुग में तो केवल भगवत्कीर्तन ही प्रमाण है इसी से कल्याण होता है। विष्णु धर्मोत्तर में लिखा

है कि भगवत् का कीर्तन सब सुखों का देने वाला सब पापों का नाश करने वाला, मन को निर्मल करने वाला, धर्म का बढ़ाने वाला और भुक्ति मुक्ति का देने वाला परम सार है। वेद विरुद्ध धर्म वाले भी इस बात को मानते हैं। सारांश यह है कि भगवत् कीर्तन के सिवाय अन्य कोई उपाय जन्म मरण के पाश में से छूटने का नहीं है। किसी विद्वान् का वचन है कि चाहे पानी के मथने से घी निकल आवे, रेत में से चाहे तेल प्राप्त हो जाय परन्तु भगवत् कीर्तन किये बिना संसार सागर से पार होना नहीं हो सका, भगवत् कीर्तन के विधान में लिखा है कि कीर्तन करते २ मन कीर्तन में ऐसा मग्न होजाय कि देह की दशा भूल जाय, देह का अनुसंधान ही न रहे, उसका नाम उत्तम कीर्तन है। इस विषयमें लोकमें यह कथा प्रसिद्ध है:-

अस्थियों की पहिचान ।

एकवार एक गवैया बहुत देर तक निरन्तर भगवत् कथा का गान करता रहा और दूसरा श्रवण करता रहा। श्रवण कीर्तन करते दोनों प्रेम में डूब कर वेमुग्ध होगये और अन्त में मरगये। लोगों ने दोनों के शवों को एकत्र करके जला दिया। दोनों की भस्म होगई। जब उनकी स्त्रियों ने यह वृत्तांत सुना तो उन्होंने आकर अपने अपने पति की हड्डियां राख में से अलग २ चुनली। किसी ने पूछा कि तुमको अपने २ पति की हड्डियों की प्रतीति किस प्रकार हुई तो कीर्तन करने वाले की स्त्री कहने लगी:-

कीर्तन

स्त्री:-मेरा पति भगवत् कीर्तन करने के रस में ऐसा मग्न हो गया कि गल गई थी। भगवत् कीर्तन करने से द्रवीय अवयवों में महान्

दूसरी स्त्री:- मेरे

पति के मुख रूप धन्य मेरे पति के हृदय में जाते थे और उनमें पति की हड्डियां पहिचान

हे मंसाराम ! य

तो क्या ही बात है

नहीं है। शास्त्रों का

कीर्तन अन्तःकरण से

चाहे निष्काम हो और

कीर्तन करने से भगवत्

भगवत् के संमुख

राम दायक ही है

वृत्तांत आश्चर्य रूप

भजन के निमित्त से

भगवत् के लिये न

के लिये पढ़ते प

स्त्री:-मेरा पति भगवच्चरित्रों का कीर्तन करते २ भगवच्चरित्रों के रस में ऐसा मग्न हो गया था कि उसके शरीर की एक २ हड्डी तक गल गई थी, इसी से मैं ने उसको पहिचान लिया भगवत् कीर्तन करने वाले के शरीर का एक २ अवयव भगवत् गान करने से द्रवीभूत हो जाता है। अन्य के अवयवों से उसके अवयवों में महान् अंतर होता है।

दूसरी स्त्री:- मेरे पति का वृत्तांत यह है कि कीर्तन करने वाले के मुख रूप धनुष से जो भगवच्चरित्रों के तीर छूटते थे, वे मेरे पति के हृदय में इस प्रकार लगते थे, कि हड्डियों में बिंध जाते थे और उनमें छेद कर देते थे, इसी से मैंने अपने पति की हड्डियां पहिचान लीं।

हे मंसाराम ! यदि श्रवण और कीर्तन में ऐसी प्रीति हो तब तो क्या ही बात है, फिर तो बेड़ा पार होने में कुछ देर ही नहीं है। शास्त्रों का तो यह वचन है कि चाहे भगवत् का कीर्तन अन्तःकरण से हो, चाहे ऊपर से दिखलाने के लिये हो, चाहे निष्काम हो और चाहे किसी फल की कामना से हो, कीर्तन करने से भगवद्भक्ति अवश्य प्राप्त हो जायगी और मन भी भगवत् के संमुख हो जायगा। यद्यपि कीर्तन सब प्रकार से लाभ दायक ही है फिर भी आजकल के कीर्तन करने वालों का वृत्तांत आश्चर्य रूप है। कीर्तन करने वाले स्वार्थ विना भगवत् भजन के निमित्त से कीर्तन नहीं करते ! धन के लिये कीर्तन होता है, भगवत् के लिये नहीं होता। जो कुछ पढ़ते पढ़ाते हैं जीविके के लिये पढ़ते पढ़ाते हैं। जन्म से बच्चे को यह ही सिखाया

जाता है 'बैठा करियो सोई, जा में हंडिया खुद बुद होई'। गाना बजाना, पढ़ाना पढ़ना जो कुछ सीखा जाता है सब उदर पूर्ती के लिये किया जाता है। श्रवण करने वालों का वृत्तांत तो श्रवण निष्ठा में सुना ही चुका हूं। कीर्तन करने वाले बहुत से ब्राह्मण कांख में भागवत् दबाये कथा की आड़ में कमाई करते फिरते हैं, उनकी कथा नहीं होती। इस का कारण यह ही है कि जब से उन्होंने कथा पढ़ी है, तब से फिर कभी उसका विचार नहीं किया। नित्य कीर्तन किया करें तो बिना धूमने फिरने के ही आप से आप हजारों मनुष्य उन्हें कथा करने को बुलाया करें क्योंकि भागवत् और रामायणादि पुराण सब भगवत् रूप हैं। जो कोई भगवत् कीर्तन की आराधना करता है उसकी मनोकामना अवश्य सिद्ध होती है। कोई कहते हैं कि आज कल प्रेमी कथा कहने वाला मिलता ही नहीं, यह उनका कथन ठीक नहीं है, हजारों लाखों पंडित प्रेमी भी मिलते ही हैं, बसुंधरारत्नों से खाली नहीं हैं। परन्तु हम लोगों को उनका मिलना ही कठिन है क्योंकि हम अपने अवगुणों के कारण उनके गुणों को नहीं देख सकते, अवगुणों को ही देखते हैं, उनके प्रेम और भक्ति पर दृष्टि नहीं जाती, जैसे हम हैं, वैसा ही हम दूसरों को जानते हैं। लोकोक्ति भी है कि 'जग मोसा'।

हरिभक्त और विषयी की कथा।

दो पुरुष रात को एक सराय में टिके। एक उनमें हरि भक्त था और दूसरा विषयी था। दोनों रात भर आनन्द लूटते

की
जाते रहे जब प्रातः
विषयी मद्यपान करने व
भक्त मुक्त से भी अधि
वत् भजन में रात भर
भी मेरे समान या मु
ज करता रहा होगा।
पता है अपने गज से ह
ले हमको नहीं मिलते
प्रेमी हों तो कथा
स्वयं ही हम को ढूंढ
और सूत जी ने शीनका
सिद्ध है, जैसे को तैस
और भक्त न मिलें तो
करना चाहिये क्यों
तो शास्त्र अच्छे प्रका
कथा सुनने में क्यों
कथन का सारांश य
मुख्यतर साधन है,
अभ्युदय प्राप्त होता
भगवत् प्राप्ति होते
हो जाता है, स्वप्न
संसार में उन्हीं व
होकर भगवत् की

हुये जागते रहे जब प्रातः काल दोनों ने एक दूसरे को देखा तो विषयी मद्यपान करने वाले ने भगवद्भक्तको समझा कि इसने रात भर मुझ से भी अधिक विषय भोग किया होगा और जो भगवत् भजन में रात भर जागता रहा था, उसने समझा कि यह भी मेरे समान या मुझ से भी अधिक रात भर भगवत् भजन करता रहा होगा। किसी ने सच कहा है कि जो कोई नापता है अपने गज से ही नापता है। इसलिये प्रेमी कथा कहने वाले हमको नहीं मिलते। यदि हम भगवत् भजन करने वाले और प्रेमी हों तो कथा कहने वाले अनायास मिल जाय और वे स्वयं ही हम को ढूँढ लें। शुकदेव जी ने राजा परोक्षित को और सूत जी ने शीनकादि को स्वयं ही ढूँढ लिया था, यह बात प्रसिद्ध है, जैसे को तैसा मिलता है, यह नियम है यदि पूर्ण प्रेमी और भक्त न मिलें तो न सहो जैसे मिलें, उन्हींपर विश्वास करना चाहिये क्योंकि हम से तो अधिक ज्ञाता हैं ही, प्रथम तो शास्त्र अच्छे प्रकार जानते हैं, दूसरे ब्राह्मण हैं फिर उनसे कथा सुनने में क्यों संकोच करना चाहिये। हे मंसाराम ! सब कथन का सारांश यह है कि भगवत् कीर्तन भगवत् प्राप्ति का मुख्यतर साधन है, कीर्तन करने से सहज में ही लोक परलोक अभ्युदय प्राप्त होता है और अन्त में भगवत् प्राप्ति होती है। भगवत् प्राप्ति होते ही अधिकारी मनुष्य सर्वदा के लिये सुखी हो जाता है, स्वप्न में भी कोई दुःख उसके पास नहीं फटकता ! संसार में उन्हीं का जीवन सफल है, जो सब भ्रमों से मुक्त होकर भगवत् कीर्तन में लगे रहते हैं। ऐसे भक्त स्वयं कृत कृत्य

भक्त और विषयी की कथा।
एक रात को एक सराय में टिके। एक उन्ने
दूसरा विषयी था। दोनों रात भर भजन

हैं और दूसरों को भी संसार सागर से पार ले जाते हैं। एक भक्त कीर्तन न करने का पश्चात्ताप करता हुआ, भगवान् से इस प्रकार प्रार्थना करता है:-

भक्त का निवेदन ।

हे नन्दनन्दन ! भक्त उरचन्दन ! दुष्टदलनिकन्दन ! हे यशोदा दुलारे ! भक्तों की आंखों के तारे ! हे बांकेबिहारी ! माधव मुरारी ! हे दीनबन्धु ! करुणासिन्धु ! हाय ! इस मतिमन्द पापी मन ने आज तक भी आपके कीर्तन और अद्भुत चरित्रों में चित्त लगाने न दिया ! बालकपन तो बाल विनोद खेलने खाने पीने में खो दिया, जवानी दिवानी भांति २ के अपकर्म और संतार के निस्सार स्वादों में व्यतीत हो गई अब दुःख और रोगों का भंडार दिन रात रुलाने वाली वृद्धावस्था आ पहुंची है ! कष्ट के बाद कष्ट का सामना है फिर भी किसी प्रकार आपके चरण-कमलों में मन नहीं लगता । यद्यपि यह बात भली प्रकार जानता है कि आपके चरणों की शरण लिये बिना ब्रह्मा भी इस अपार संसारसागर से मुक्त नहीं कर सके, फिर भी दुष्ट मन माया के जाल में ऐसा फंस गया है कि अपने हित अहित, हानि लाभ पर तनिक भी दृष्टि नहीं करता ! आपके चरणारविन्द के सिवाय त्रिलोकी में कहीं भी रक्षा का ठिकाना दिखाई नहीं पड़ता ! इसलिये हे करुणाकर ! हे आर्तहर ! आपकी दया और करुणा की आशा करके आपके संमुख नम्रभाव से कुछ निवेदन करता हूँ । हे दीनानाथ ! आपका नीचे का ध्यान समाज मेरे हृदय की जलन को दूर करता हुआ नित्यानन्द का देने वाला हो !

सरयू के
में भगवान् का ध
द्वारी है, राजद्वार
मन्दिर का द्वार,
आदि मणियों से
मंडप है, मंडप
दिव्य स्वर्ण सूत्र
नीचे एक ऐसा
हुये मणियों के
करुणासिन्धु, दी
श्री रघुनन्दन
शोभा से विर
से सुन्दरता
मुकुटधारणवि
जनकनन्दनी
गुच्छे अपने
रुजावट के
और फूलों
हाथों में क
ठियाँ हैं, अ
ही शोभा
अंग में शो

ध्यान समाज ।

सरयू के निकट अयोध्यापुरी पावन पुरी है, पावन पुरी में भगवान् का धाम है, भगवान् के धाम में एक सुन्दर राज-द्वारी है, राजद्वारी में सभा का मन्दिर ऊंचा बना हुआ है, सभा मन्दिर का द्वार, प्रकार और भूमि भाँति २ के लाल, पीत, श्वेत आदि मणियों से जटित है ! मन्दिर में स्वर्ण सूत्र का एक अद्भुत मंडप है, मंडप में चारों ओर भालरें लटक रही हैं ! भालरों में दिव्य स्वर्ण सूत्रों के गुच्छे और मोती टक रहे हैं ! मंडप के नीचे एक ऐसा दिव्य सिंहासन रक्खा हुआ है कि इस में जड़े हुये मणियों को देख कर आँखों में चकान्चोध आ जाता है । रुपासिन्धु, दीनवत्सल, करुणाकर, पतितपावन, अधम उधारन श्री रघुनन्दन स्वामी जी महाराज उस सिंहासन के ऊपर इस शोभा से विराजमान हैं कि किशोर अवस्था है, मुख की सुन्दरता से सुन्दरता भी सुन्दरता पारही है ! शिर पर जड़ाऊ किरीट मुकुट धारण किये हुये हैं, कानों में कुंडल शोभा दे रहे हैं, उन कुण्डलों में जनकनन्दनी चराचरवन्दनी श्री सीता महारानी जी ने फूलों के गुच्छे अपने हाथों से गूँथ कर डाले हैं । दिव्य वस्त्राभूषण बड़े रुजावट के साथ जगर मगर पहिरे हुये हैं, छाती पर मणियों और फूलों की माला पड़ी हुई है, मोतियों के कंठे गले में हैं, हाथों में कड़े और पहुंची हैं, अंगुलियों में रत्न जटित अंगूठियाँ हैं, और चरण कमलों में घुँघुर्क और कड़े शोभित हैं ! ऐसी ही शोभा के साथ अखिल ब्रह्माण्डेश्वरी, श्री जनकदुलारी वाम अंग में शोभायमान हैं । दोनों के मुख की भ्रमक आभूषणों पर

और आभूषणों की झलक जो मुख पर पड़ती है तो एक ऐसी आनन्द की धारा और शोभा की छटा निकली है कि जो २ वहाँ बैठे हुये हैं, वे सब अपने को भूल कर सुख के समुद्र में मग्न हो गये हैं ! भरत जी छत्र लिये हुये हैं, लक्ष्मण जी चंवर लिये खड़े हैं शत्रुघ्नजी धनुष बाण धारण कर रहे हैं और हनुमान जी संमुख हाथ जोड़े खड़े हुये हैं। शिवब्रह्मादिक देवता आकाश में स्तुति कर रहे हैं ! देश २ के राजा आये हुए हैं और अपनी भेंट लिये हुये खड़े हुये हैं। अनेक प्रकार की अन्य सामग्री भक्तों को आनन्द देने वाली मौजूद हैं ! राजतिलक का साज भक्तों के मन में समाया हुआ है और एक तरफ एक कोने में यह दास भी अपने ओहदे उपानह की सेवा पर खड़ा हुआ है।

हे मंसाराम ! कीर्तन निष्ठा सभी भक्तों में है। सब की कथा कहना कठिन है, उनमें मुख्य भक्तों की कथा सुनाता हूँ:-

कथा वाल्मीकि जी की।

वाल्मीकि जी का जन्म ब्राह्मण वंश में हुआ था। संयोग-वश बालपने में किसी भीलके हाथ आगये। भील ने पुत्र के समान इनका पालन पोषण किया और भील की कन्या के साथ ही विवाह भी कर दिया। भीलों का उद्यम पथिकों को लूटना ठगी और व्याधकर्म इनको सिखाया गया। वही उद्यम बहुत काल तक वाल्मीकि जी करते रहे। एकवार कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, वशिष्ठ, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि सप्त ऋषि उस वन में आ निकले। वाल्मीकि जी ने उनको लूटने का विचार किया और उनसे जो कुछ उनके पास था, रख देने को कहा। ऋषी-

खर कहने लगे
मिला बाल ब
उद्यम पापमय
पर वालों से
दुःख में भी स
हैं ? ऋषी
होगया था,
अंगीकार न
ऋषीश्वरों
तेरे पाप में
बिगाड़ता
उत्पन्न हो
हाथ जोड़
करके रा
राम राम
'मरा म
शरीर क
उधर क
देखने में
पक्षी ज
ऋषीश्व
से उन
सिद्ध

श्वर कहने लगे 'भाई ! यह दुष्ट कर्म तू क्यों करता है' ? उत्तर मिला 'बाल बच्चों के पालने के निमित्त करता हूँ, ऋषि बोले तेरा यह उद्यम पापमय है, इसका फल दुःख तुझे भोगना पड़ेगा, तू अपने घर वालों से यह तो जाकर पूछ आ कि 'क्या वे तेरे पाप और दुःख में भी साझी होंगे अथवा अपने सुख के ही मात्र साथी हैं ?' ऋषीश्वरों के दर्शन से वाल्मीकि जी का अन्तःकरण शुद्ध होगया था, घर पूछने गये तो किसी ने पाप में साझी होना अंगीकार नहीं किया। वाल्मीकि जी ने लौट कर यह ही वृत्तांत ऋषीश्वरों को सुनाया तो ऋषीश्वर कहने लगे 'भाई ! जब वे तेरे पाप में साझी नहीं होते तो तू उनके लिये अपना परलोक क्यों बिगाड़ता है। इतना सुन कर वाल्मीकि जी के मन में वैराग्य उत्पन्न हो आया, भय से कांपने लगे, आंखों में जल भर आया हाथ जोड़ कर कल्याण का मार्ग पूछने लगे ! ऋषीश्वर दया करके राम नाम का उपदेश देकर चले गये। वाल्मीकि जी को राम राम के स्थान में 'मरा मरा' याद रहा, एकाग्रचित्त होकर 'मरा मरा' का जप करने लगे और जप करते करते अपने शरीर की भी सुध भूल गये। कुछ काल पीछे फिर सप्त ऋषि उधर को आये और वाल्मीकि जी को ढूंढने लगे तो उनके देखने में यह लीला आई कि एक बामी के समीप जो कोई पशु पक्षी जाता है, वह राम राम कहने लगता है। इस चिन्ह से ऋषीश्वरों ने वाल्मीकि जी का पता लगा लिया और बामी में से उनको बाहर निकाला। अब तो वे सब प्रकार से शुद्ध और सिद्ध हो चुके थे, राम नाम के प्रताप से आप सब कुछ जान

गये थे, किसी वेद शास्त्र पढ़ाने का अथवा धर्म कर्म सिखाने का प्रयोजन ही नहीं रहा था। वाल्मीकि जी के शरीर पर मिट्टी जम जाने से उनका शरीर बामी स्वरूप हो गया था इसलिये ऋषीश्वरों ने इनका नाम वाल्मीकि रक्खा और वे वहाँ से चले गये। तब वाल्मीकि जी सर्वज्ञ और त्रिकालदर्शी हो गये थे। मन में विचारने लगे कि जिसके नाम के प्रभाव से मुझे सर्वज्ञता प्राप्त हुई है, उसका वर्णन करना चाहिये। यह ध्यान आते ही भगवत् की आज्ञा से नारद जी ने आकर उपदेश दिया और भविष्य राम चरित्र वाल्मीकि जी को ध्यान में दिखला दिये। उसी के अनुसार रामावतार से दश हजार वर्ष पहिले सौ करोड़ श्लोकों में रामचरित्र की वात्सल्य उपासना रूप से अपनी भाषा में रचना की अर्थात् राजपुत्र रूप से भगवान् का वर्णन किया। पश्चात् उस रामायण को शिव जी ने तीनों लोकों में फैलाया। हे मंसाराम! राम नाम कीर्तन की महिमा कोई कहाँ तक वर्णन करे! वाल्मीकि जी प्रथम तो ऐसे थे कि ऋषीश्वर उनकी छाया का भी स्पर्श नहीं करते थे, और फिर राम के प्रभाव और कीर्तन से वेही वाल्मीकि जो इस पदवी को पहुँचे कि जिनकी कथा और जिनका कथन संसार ताप को दूर करने के लिये छत्र छाँह हो गया ऐसे राम नाम की महिमा जितनी वर्णन की जाय उतनी थोड़ी है! जब वाल्मीकि जी को भगवान् के बाल चरित्र देखने की अभिलाषा हुई तो जनक नन्दिनी उनके आश्रम में आकर रही और लवकुश का जन्म हुआ। उन्होंने नाना प्रकार के बाल चरित्र दिखलाये। अश्वमेध में लवकुश

धर्मों ने यज्ञ का घे
तप किया, पोछे
यह कथा रामाश्वमे

कुं:-त्रप कर भगव
कवियों माँही आ
तिहूँ काल मर्म
जनक सुता घर
कीन्हे चरित अ
भोला! कर हरि

कथ

ब्रह्मांड भर में
वर्णन कर सके
रूप अमृत की
बालों को अमर क
की हो सकती!
गुरुदेव जी से ल
तो वस्त्र धारण
उत्तर मिला कि
दूसरा रूप
ज्ञान उनकी
आप से लज

दोनों कुमारों ने यज्ञ का घोड़ा बांध लिया, हनुमान आदि सब को पराजय किया, पोछे वाल्मीकि जी के साथ अयोध्याजी में गये। यह कथा रामाश्वमेध में प्रसिद्ध है।

कुं:- जप कर भगवन्नाम का भीज भये सर्वज्ञ ।
कवियों मांही आदि कवि, तिहूँ काल मर्मज्ञ ॥
तिहूँ काल मर्मज्ञ, चरित भगवत् के गाये ।
जनक सुता घर आय, बाल लवकुश सुत जाये ॥
कीन्हे चरित अपार, रूप बालक धरि सुन्दर ।
भोला ! कर हरि गान, नाम भगवत् का जप कर ॥

कथा शुकदेव जी की।

ब्रह्मांड भर में ऐसा कौन है, जो शुकदेव जी की महिमा का वर्णन कर सके ? कोई नहीं है ! जिन के मुख से श्रीमद्भागवत् रूप अमृत की धारा ऐसी निकली है, जो सब पान करने वालों को अमर कर देती है, उनकी महिमा किसी प्रकार वर्णन नहीं हो सकती ! एक बार देवाङ्गनाओं ने स्नान करते हुये शुकदेव जी से लज्जा न की और व्यास जी को देख कर लज्जित हो वस्त्र धारण कर लिये। जब व्यासजी ने कारण पूछा तो उत्तर मिला कि सिवाय भगवत् रूप के शुकदेव जी जगत् में दूसरा रूप नहीं देखते सर्वत्र भगवत् को ही देखते हैं, दूसरा ज्ञान उनकी नहीं है, आपको तो सब प्रकार का ज्ञान है इसलिये आप से लज्जा है ! शुकदेव जी माता के गर्भ से ही भगवद्भक्त

और ज्ञानवान् हुये थे। तत्त्वज्ञ मुनि इसका कारण यह बतलाते हैं कि एकवार पार्वती जी ने शिवजी से तत्त्व ज्ञान पूछा। तब शिवजी ने अपने आश्रम के सब जीवों को अलग करके तत्त्व ज्ञान का उपदेश आरंभ किया। पारवती जी को कुछ देर पीछे नींद आ गई। भगवत् की इच्छा से एक शुक का बच्चा उस आश्रम में रह गया था, वह पार्वती जी के बदले 'हूं हूं' करता रहा और ज्ञान सुन कर अमर हो गया, जब शिवजी को यह मालूम हुई तो क्रोध करके मारने के लिये उद्यत हुये। ऐसा देख कर शुक का बच्चा भागा और व्यास जी की पत्नी के उदर में बारह वर्ष तक छुगा रहा, पश्चात् देवता और ऋषी-श्वरों की प्रार्थना से शुकदेव जी महाराज ने जन्म लिया और गर्भ से बाहर आते ही तुल्य बन को चल दिये। मोह के बश व्यासजी 'हे पुत्र ! हे पुत्र !' करते हुये पीछे २ दौड़ने लगे। तब वन के वृक्षों में उनको यह ध्वनि सुनाई दी:-

ध्वनि:-“मैं और तू, मेरा और तेरा, पिता और पुत्र, सुख और दुःख यह सब भ्रम हैं ! इस संसार में नहीं मालूम तुम कितनी बार मेरे पिता हुये हो ! जो कुछ चराचरा मेरे तुम्हारे देखने में आता है, वह सब भगवत् रूप है ! भगवत् के जानने का हेतु विद्या है यदि विद्या पढ़कर भगवत् को न जाना तो पढ़ना निष्फल है ! यदि ह्रैत भाव न छूटा तो विद्या अविद्या ही है ! मैं तू, मेरा तेरा, पिता पुत्र भाव छोड़ दीजिये और घर को लौट जाइये ! विद्या को अविद्या बना कर लाञ्छन न लगाइये ! जान बूझ कर भोगों में फँसना मूर्खता है ! भगवद्भजन

भगवद्भजन से सु
कोजिये।”

व्यास जी यह

मोह बश इस वि

शुकदेव जी लौट

भगवत् के श्लोक सि

वहाँ भेज दिये, एक

ने यह श्लोक सु

कर मारने के लि

दूसरे को प्राप्त

उस के शरण जाये

नेहबद्ध हो गये औ

लोक तुमने किस

नाम बताया। शुक

अत्यन्त प्रेम से व

पीछे शुकदेव जी

सुनानी चाहिये

में राजा परीक्षित

भगवत् सुना क

दिया। राजा

भी भगवत्पराय

परमपद का

वत् और शु

सार है, भगवद्भजन से मुझे न रोकिये और आप भी भगवत् भजन कीजिये ।”

व्यास जी यह उत्तर सुन कर घर लौट आये फिर भी मोह वश इस विचार और उपाय में लगे रहे कि किसी प्रकार शुकदेव जी लौट आवें । कितने ही विद्यार्थियों को श्रीमद् भागवत् के श्लोक सिखा कर जिस वन में शुकदेव जी रहते थे, वहाँ भेज दिये, एक दिन किसी विद्यार्थी के मुख से शुकदेव जी ने यह श्लोक सुना:—“यह पापात्मा पूतना स्तन में विष लगा कर मारने के लिये गई परन्तु उसको वह गति प्राप्त हुई जो दूसरे को प्राप्त होना कठिन है, ऐसा दयालु कौन है कि जिस के शरण जावे ।” यह सुन कर शुकदेव जी विस्मित हो स्नेहबद्ध हो गये और विद्यार्थियों से आकर पूछने लगे कि यह श्लोक तुमने किस से सीखा है । विद्यार्थियों ने व्यास जी का नाम बताया । शुकदेव जा यह सुन कर वन से चले आये और अत्यन्त प्रेम से व्यासजी से श्रीमद्भागवत् का अध्ययन किया, पीछे शुकदेव जी को यह इच्छा हुई कि किसी प्रेमी को भागवत् सुनानी चाहिये परन्तु कोई अधिकारी देखने में नहीं आया । अंत में राजा परीक्षित को अधिकारी समझ कर गंगा किनारे पर भागवत् सुना कर सात दिन में भगवत् परायण और मुक्त कर दिया । राजा को सभा में से जिस २ ने भागवत् श्रवण की वे भी भगवत्परायण हो गये और अब भी कोई सुनता है, वह भी परमपद का अधिकारी हो जाता है । हे मंसाराम ! श्रीमद्भागवत् और शुकदेव जी की महिमा जितनी वर्णन की जाय, उतनी

थोड़ी है, पापी से भी पापी भागवत् सुन कर भगवत्परायण हो जाता है ।

छप्पयः—व्यास पुत्र शुकदेव, बाल यति ध्यानी ज्ञानी ।
देखि जिन्हें सुरयुवति लेश जलजा नहि लानी ॥
कथा भागवत् गाय, मोक्ष पथ सुलभ दिखाया ।
किया परीक्षित भक्त दिशा दश में यश छाया ॥
भोला ! मत करि मोह अब, 'मैं' 'तू' 'मेरा' त्यागरे ।
शुक गाथा नित पाठ कर, भगवत् पद अनुरागरे ॥

कथा जयदेव की ।

समस्त कवि मण्डलीक राजाओं के समान हैं । स्वामी जयदेव जी उन सब के चक्रवर्ती महाराजाधिराज हैं । इनका रचा हुआ 'गीत गोविन्द' तीनों लोकों में विख्यात कोक काव्य नव रस और शृंगार का सागर है । जो कोई इसकी अष्टपदी पढ़ता है, वह अवश्य ही सब शस्त्रों का ज्ञाता पूर्ण बुद्धिमान हो जाता है । जहाँ इसका कीर्तन होता है, वहाँ इसका श्रवण करने के लिये स्वयं भगवत् प्रसन्न होकर आते हैं । भगवद्भक्त कमल के सदृश हैं कमल रूगी भगवद्भक्तों के प्रफुल्लित करने और आनन्द देने को 'गीत गोविन्द' सूर्य के समान है । जैसा यह भगवद्भक्तों को आनन्द देने वाला है इसी प्रकार भगवत् को भी आह्लाद देने वाला है । दीपयो लोगों के मन में जो कोक और शृंगार वर्त रहा है, वह कोक और शृंगार इसके कोक और शृंगार पद से न समझना चाहिये । भक्तमाल आदि की

करने वालों का
गार का केवल भग
। इसी शृंगार का व
। माधुर्य निष्ठा में
जान करूंगा । जिसका
माण है—'जिसको प्रा
ग होता है।' इस का
कहा है । कोक इस रस
स्वामी जयदेव
मराज शृंगार की
रा राद आप ही
गण्य था कि एक रा
कु के नीचे नहीं रहते
नीचे नहीं ठहरते
अथा कुल पास नह
नी बात ही क्या है
रिगने की इच्छा हुई
न्या जगन्नाथ जी
न्या जगन्नाथ जी
री प्रवृत्ति विश्व मे
गङ्गा को आजा दे
उसको भेंट कर दे
या और प्रभु की

रचना करने वालों का शृंगार पद से यह अभिप्राय है कि इस शृंगार का केवल भगवत् और भगवत् शोभा में ही वर्णन होता है। इसी शृंगार का वर्णन कुछ कुछ इस ग्रन्थ के आदि में किया है। माधुर्य निष्ठा में हे मंसाराम ! मैं तुझ से इस शृंगार का वर्णन करूंगा। जिसका नाम रसराज है और जिसमें यह श्रुति प्रमाण है:—'जिसको प्राप्त करके अवश्य ही भगवत् का आनन्द प्राप्त होता है।' इस का जयदेव जी ने 'गीत गोविन्द' में वर्णन किया है। कोक इस रस की एक शाखा है।

स्वामी जयदेव जी कुढबिल में हुये थे। यह कविराज रसराज शृंगार की मूर्ति थे। बहुत दिनों तक इस रसराज का स्वाद आप ही आप लेते रहे क्योंकि उन में इतना तीव्र वैराग्य था कि एक रात के सिवाय दूसरी रात को किसी एक वृक्ष के नीचे नहीं रहते थे यानी एक रात से अधिक किसी पेड़ के नीचे नहीं ठहरते थे। एक गुदड़ी और एक कमंडलु के सिवाय कुछ पास नहीं रखते थे मसिपात्र लेखनी और पत्र की तो बात ही क्या है? भगवत् को इस रसराज को विश्व में फैलाने की इच्छा हुई। एक ब्राह्मण की प्रतिज्ञा थी कि मैं अपनी कन्या जगन्नाथ जी के भेंट करूंगा। जब यह ब्राह्मण अपनी कन्या जगन्नाथ जी के पास ले गया तो भगवान् ने रसराज की प्रवृत्ति विश्व में करने के लिये यह उपाय किया कि उस ब्राह्मण को आज्ञा दी कि जयदेव मेरा स्वरूप है यह कन्या उसको भेंट कर दे। ब्राह्मण कन्या को जयदेव जी के पास ले गया और प्रभु की आज्ञा का वृत्तान्त सुनाया। जयदेव जी बोले

कन्या किसी योग्य धनवान् को देनी चाहिये विरक्त फक्कड़ों को कन्या देना उचित नहीं है, जो आप ही भिक्षा मांगते फिरते हैं, उनके यहाँ स्त्री का निर्वाह कैसे हो सका है ?' ब्राह्मण बोला 'महाराज ! भगवत् आज्ञा में मेरा क्या बश है ? प्रभु की आज्ञा पालना मेरा कर्तव्य है ! जयदेव जी बोले 'प्रभु समर्थ हैं, हजारों लाखों स्त्रियाँ रखना उनको शोभा देता है, मुझे तो एक ही स्त्री पर्वत के समान है ! ब्राह्मण ने बहुत समझाया परन्तु जयदेव राजी न हुये । अन्त में ब्राह्मण हार कर कन्या को धर्म पर आरुढ़ रहने को समझा कर उसे वहाँ ही छोड़ कर चला गया । पश्चात् जयदेव जी ने कन्या को बहुत समझाया परन्तु उस धुनि की पक्की ने इनकी एक न मानी । अन्त में जयदेव जी ने थक कर और भगवत् की आज्ञा से विवश होकर कन्या को स्वीकार कर लिया और एक छोटी सी कुटी बना कर भगवत् सेवा में रहने लगे । पश्चात् उन्होंने गीत गोविन्द की रचना करना आरंभ किया । एक दिन एक अष्टपदी में प्रिया जी का मान करते समय यह भाव उनके ध्यान में आया "कि श्रीकृष्ण स्वामी प्रियाजी को मनाते समय इस दीनता सहित प्रिया जी से चिन्ता करते हैं कि कामदेव के विष का दूर करने वाला जो आपका पवित्र चरण कमल है, उस चरण कमल को मेरे मस्तक पर शोभायमान करो ." भाव तो जी में आया परन्तु ढिठाई समझ कर लेखनी रुक गई और लिख न सके । दूसरे भाव को विचारते २ स्नान करने चले गये । कौतुकी भगवत् आप जयदेवजी का रूप धारण करके आये और जो भाव जयदेवजी ने

विचार था, वह
जी स्नान करके
भाव सुन्दर प
पद्मावती स्त्री से
उत्तर दिया कि
और फिर पृच्छते हैं
विष जान कर बहुत
विष मानने लगे ।

इस गीत गो
हां फैल गई । सब
राजा परिहृत
श्री । जयदेव जी और
जी के मन्दिर में
गीत गोविन्द छान
हाकर समुद्र में डु
कर्म उचित नहीं
कविताई को तुम
जयदेव जी के ग
रहेगा परन्तु न
गीत गोविन्द
एक रा
संग की एक
थी, जिस

ऊपर विचारा था, वह ही भाव रच कर लिख गये। जब जय-
देव जी स्नान करके आये तो क्या देखते हैं कि उनका विचार
हुआ भाव सुन्दर पदों में रच कर लिखा हुआ है विस्मययुक्त
हो पद्मावती स्त्री से पूछा कि क्या कोई यहाँ आया था तो
उसने उत्तर दिया कि आप ही तो अभी आकर लिख गये हैं
और फिर पूछते हैं क्या कोई आया था? जयदेव जी भगवत्
चरित्र जान कर बहुत प्रसन्न हुये और गीत गोविन्द की परम
पवित्र मानने लगे।

इस गीत गोविन्द की ख्याति थोड़े दिनों में ही जहाँ
तहाँ फैल गई। सबने उसको अङ्गोकार किया। जगन्नाथपुरी
का राजा परिडित था। उसने भी एक गीत गोविन्द की रचना
की। जयदेव जी और राजा दोनों के गीत गोविन्द जगन्नाथ
जी के मन्दिर में रख दिये। जगन्नाथ जी ने जयदेव जी का
गीत गोविन्द छाती से लगा लिया। यह देख कर राजा लज्जित
होकर समुद्र में डूबने को जाने लगा। पशु न आज्ञा दी कि यह
कर्म उचित नहीं है, न्याय उचित है। जयदेव जी की भक्ति और
कविताई को तुम्हारी भक्ति और कविताई नहीं पहुँचती, अच्छा
जयदेव जी के गीत गोविन्द के प्रति सर्गमें एक श्लोक तुम्हारा
रहेगा परन्तु नाम जयदेव जी का प्रसिद्ध होगा। बाहर सर्ग
गीत गोविन्द में हैं।

एक बार एक माली की लड़की गीत गोविन्द के पाँचवें
सर्ग की एक अष्टपदी गाती हुई खेत में से बैंगन तोड़ती फिरती
थी जिस ओर को वह जाती थी उसी ओर जगन्नाथ स्वामी

उसके पीछे अष्टपदी सुनते हुये फिरने लगे। काँटों से उनका भगा फट गया, राजा दर्शन करने गया और भगा फटा हुआ देख कर चकित होकर पण्डों से कारण पूछने लगा। कोई बतला न सका। अन्त में जगन्नाथ स्वामी ने राजा के हृदय में सब वृत्तांत प्रकाशित कर दिया। राजा ने निश्चय करके डोंडी पिटवा दी कि जो कोई गीत गोविन्द पढ़े, तो पवित्र स्थान में बैठ कर शुद्ध होकर पढ़े क्योंकि उनके सुनने को स्वयं भगवत् जाया करते हैं। अपवित्र स्थान में पढ़ने से भगवत् को कष्ट उठाना पड़ता है।

एक मुगल इस पोथी को बड़े प्रेम से पढ़ा करता था, एक दिन घोड़े पर सवार प्रेम भाव में मग्न हुआ अष्टपदी को गाता हुआ चला जा रहा था। क्या देखता है कि भगवान् साथ २ सुनते हुये चल रहे हैं। मुगल ने मन ही मन में प्रणाम किया और अपने को धन्य माना। पश्चात् जब पढ़ता एकांत में बैठ कर पढ़ता, मार्ग चलते कभी न पढ़ने का प्रण कर लिया। इस गीत गोविन्द की महिमा और प्रताप कौन कह सकता है, स्वर्ग में देव कन्यार्ये इसका गान किया करते हैं।

एक समय जयदेव जी कहीं जा रहे थे, राह में इनके पीछे ठग लग गये। जयदेव जी ने विचार किया कि पाप का मूल धन है, रोग का मूल अधिक भोजन है, और दुःख का मूल स्नेह है इसलिये इन तीनों का त्याग उचित है। ऐसा सोच कर जो कुल पास था जयदेव जी ने ठगों को दे दिया। ठगोंने समझा कि यह धांखेवाज है, पीछे कुछ उत्पात करेगा, इस को

चालना चाहिये। ऐसा जयदेव जी को एक कू राजा वहां आ निक और हाथ पांव न कि माता के गभ से राजा जान गया कि इसका दर्शन हुआ राजधानी में लिये विनती करने आजा दी, राजा इस बात की चर्चा राजा के पास पहुंचे से भाई बड़े महापु राजा ने ऐसा ही शसयुक्त होकर परन्तु जयदेव जी तपया दिला कर वर तक पहुंचाने पूछा कि तुम्हारा ऐसी प्रीति और कहने योग्य किसी से यह के यहां हम

मार डालना चाहिये। ऐसा विचार कर ठगों ने हाथ पाँव काट कर जयदेव जी को एक कूवे में डाल दिया। भगवत् इच्छा से एक राजा वहाँ आ निकला। उसने इनको कूवे में से निकाल लिया और हाथ पाँव न होने का कारण पूछा जयदेव जी ने कहा कि माता के गर्भ से ऐसा ही जन्मा था। वार्त्तालाप होने से राजा जान गया कि यह कोई प्रतापी भगवद्भक्त हैं, भाग्य से मुझे इसका दर्शन हुआ है। ऐसा विचार कर वह राजा इनको अपनी राजधानी में ले गया और हाथ जोड़ कर कुछ सेवा के लिये विनती करने लगा। जयदेव जी ने साधु सेवा करने की आज्ञा दी, राजा इनकी आज्ञानुसार साधु सेवा करने लगा। इस बात की चर्चा दूर तक फैल गई। ठग साधु का रूप बनाकर राजा के पास पहुँचे। जयदेव जी ने राजा से कहा कि ये लोग मेरे भाई बड़े महापुरुष हैं, इनकी भली प्रकार से सेवा करो। राजा ने ऐसा ही किया। ठगों ने जयदेव जी को पहिचान लिया। वासयुक्त होकर प्रतिदिन बिदा होने के लिये विनती करते थे परन्तु जयदेव जी उनको रोक लेते थे। अन्त में एक दिन बहुत रुपया दिला कर ठगों को बिदा करा दिया और कुछ सिपाही घर तक पहुँचाने को भेज दिये। सिपाहियों ने मार्ग में ठगों से पूछा कि तुम्हारा और स्वामी जी का क्या सम्बन्ध है, जो ऐसी प्रीति और मर्यादा से तुम्हारी बिदाई हुई। ठग बोले कि कहने योग्य बात नहीं है। सिपाहियों ने बचन दिया कि हम किसी से यह बात न कहेंगे तब ठग कहने लगे कि एक राजा के यहां हम लोग और तुम्हारे स्वामी चाकर थे। किसी अपराध

से राजा ने इनको बध करने की हमको आज्ञा दी परन्तु हमने इनके हाथ पांव काट लिये और इनकी जान छोड़ दी। इसी कारण इन्होंने हमारी इतनी सेवा राजा से कराई है। भक्त का यह अपवाद प्रभु सहन न कर सके, तुरन्त ही धरती फट गई और सब ठग पाताल में चले गये। सिपाहियों ने यह सब वृत्तांत जयदेव जी से आकर कहा। जयदेव जी दया से कम्पायमान होकर हाथ पांव मलने लगे तो हाथ पांव निकल आये। जैसे यह पूर्व में थे वैसे ही हो गये। ये दोनों वृत्तांत सिपाहियों ने राजा से कहे। राजा ने आकर स्वामीजी से वृत्तांत पूछा, स्वामी जी कुछ न बोले। जब राजा ने बहुत ही आग्रह किया तो सब वृत्तांत सुनाना पड़ा। राजा अति विश्वासयुक्त होकर तन मन से स्वामी जी की सेवा करने लगा। सच है, भगवद्भक्तों की ऐसी ही रीति है कि जो कोई उनके साथ दुष्टता करता है वे उसके साथ साधुता का ही बर्ताव करते हैं। जैसे दुष्ट अपनी दुष्टता से नहीं चूकते ऐसे ही साधु अपनी साधुता का त्याग नहीं करते।

पश्चात् जयदेव जी ने अपने देश जाने का विचार किया परन्तु राजा ने उन्हें जाने न दिया, बहुत प्रार्थना करके उनको रोक लिया। आप स्वयं जाकर स्वामी जी की पत्नि पद्मावति को ले आया, राज मन्दिर में निवास कराया और रानी को पद्मावती की सेवा में किया। रानी का भाई मर गया था और भाई की स्त्री उसके साथ सती हो गई थी। एक दिन रानी ने आश्चर्ययुक्त होकर अपने भाई भावज की बात पद्मावती से

की
पद्मावती सुन क
तो उत्तर दिया
रीति की हानि है
पति की मृत्यु
को छाने कर दे। रा
मसा देती हुई कह
अन्य तो कोई दे
रानी ने राजा
वाड़ी में ले जाइये
जी मर गये। मैं प
रानी को बहुत स
मेरी अपकीर्ति हो
बहुत कुछ समझा
हो है, रानी न मा
ती को फुलवाड़ी
स्वामी जी का
आंखों में आंसू
ने दुखी होने क
करने लगी कि
रानी के मुख
छोड़ दिये।
रंग श्वेत हो
विष हो

कही। पद्मावती सुन कर हंसने लगी। रानी ने हंसने का कारण पूछा तो उत्तर दिया कि पति के साथ शरीर जला देने में प्रीति की रीति की हानि है। मुख्य स्नेह और प्रीति तो यह है कि अपने पति की मृत्यु सुनते ही तुरन्त उसी क्षण अपना प्राण न्योछावर करदे। रानी को यह बात बुरी लगी और उपालम्भसा देती हुई कहने लगी कि ऐसी सती आज कल आप ही हैं, अन्य तो कोई देखने में नहीं आई। थोड़े दिन का भुलावा देकर रानी ने राजा से कहा कि स्वामी जी को एक दिन फुलवाड़ी में ले जाइये और नगरमें विख्यात करा दीजिये कि स्वामी जी मर गये। मैं पद्मावती की परीक्षा लेना चाहती हूँ। राजा ने रानी को बहुत समझाया कि ऐसा करना योग्य नहीं है, इसमें मेरी अपकीर्ति होगी और हत्या भी लगेगी। इस प्रकार राजाने बहुत कुछ समझाया परन्तु बालहठ, तिर्याहठ, राजहठ प्रसिद्ध ही है, रानी न मानी। राजा ने ऐसा ही किया। एक दिन स्वामी जी को फुलवाड़ी में ले गया और नगर में खबर कर दी कि स्वामी जी का देहान्त हो गया। रानी यह खबर सुनते ही आँखोंमें आँसू भरे हुये पद्मावती जी के पास जा बैठी। पद्मावती ने दुखी होने का कारण पूछा तो रानी रोने लगी। बहुत आग्रह करने लगी कि स्वामी जी के देहान्त होने की खबर आई है। रानी के मुख से यह बात सुनते ही पद्मावती जी ने प्राण छोड़ दिये। यह दशा देखते ही रानी और राजा का रंग ध्वेत हो गया और इतने शोकान्वित हुये कि जीना विष हो गया अपने जलने के निमित्त इन्होंने चित

रचवाई। स्वामी जी यह समाचार सुनते ही तुरन्त आये और राजा को मृतक प्राय और शोक से जलने के लिये तैयार देख कर बहुत समझाया परन्तु राजा न माना। स्वामी जी ने सोचा कि पद्मावती के बिना जिये राजा का जीना कदापि नहीं हो सका। ऐसा विचार कर स्वामी जी गीत गोविन्द की अष्टपदी गाने लगे। तुरन्त ही पद्मावती जो उठ बैठीं और स्वामी जी के साथ गाने लगी। राजा तब भी सावधान न हुआ स्वामी जी ने समझा कर अपघात से बचाया।

कुछ दिन पीछे जयदेव जी और पद्मावती जी अपने गांव कुडदिल में आगये। वहां से गंगा आठ कोस पर थी। जयदेव जी नित्य स्नान करने जाते थे। उनकी वृद्धावस्था देख कर गंगाजी की एक धारा स्वामी जी की कुटी के नीचे बहने लगी। आज तक बहती है और जयदेवी गंगा के नाम से विख्यात है।

कुं:-सुन्दर श्री जयदेव जी, रचा गीत गोविन्द।

अनुपम पावन ग्रन्थ पढ़, होय परम आनन्द ॥

होय परम आनन्द, दर्श भगवत् हैं देने।

भक्तजनन सुख दें, ताप तीनों हर लेते ॥

मुगल हुआ कृत कृत्य, दर्शन भगवत् का पाकर।

भोला ! मोद बढाय, ग्रन्थ पढ अद्भुत सुन्दर ॥

छप्पस:-पंडित श्री जयदेव, घेर डाकुन ने लीन्हे।

दुःख मूल धन जानि, द्रव्य सारा दे दीन्हे ॥

की

काटि हाथ अ

माना लेश

किया भक्त अप

भोला ! भगवत्

कुं:-गानी मुख से पति

सती परम पद्माव

तज दीन्हे प्रिय

सन देह का

अष्टपदी सुनि

भोला ! हुये

कथा गोस्वामि

गोस्वामि तुलस

ने वाल्मीकि जी

गोस्वामीकी अवतार होने

गोस्वामी का ऐसा प्रभा

गोस्वामी रूपी अमृत को

गोस्वामी से भी पापी कर्ण

गोस्वामीकारी होजाते हैं।

गोस्वामी रामायण, (२)

गोस्वामी तावली, (५)

गोस्वामी बाहुक, (८)

गोस्वामी का लन्द, (११)

काटि हाथ भरु पांव, दुष्ट जन कूप गिराये ।
माना लेश न खेद, भूप से द्रव्य दिवाये ॥
किया भक्त अपवाद जब, दुष्ट पाताल समाये ।
भोला ! भगवत् कृपा से, हाथ पग पंडित पाये ॥

कुं:-रानी मुख से पति मरण, शब्द पड़त ही कान ।
सती परम पद्मावती, तज दीन्हे प्रिय प्राण ॥
तज दीन्हे प्रिय प्राण, राव रानी धवराये ।
करन देह का दाह, चिता ऊंची चिनवाये ॥
अष्टपदी सुनि गान, उठी जी सती सयानी ।
भोला ! हुये प्रसन्न, भक्तवर राजा रानी ॥

कथा गोस्वामि तुलसीदास जी की ।

गोस्वामि तुलसीदास जी को भक्त माल के कर्ता नामा जी ने वाल्मीकि जी का अवतार लिखा है। गोस्वामी के वाल्मीकी अवतार होने में कोई सन्देह नहीं है क्योंकि उनकी वाणी का ऐसा प्रभाव है कि हृदय में चुभ जाती है। राम चरित्र रूपी अमृत की धारा इस कलियुग में ऐसी बहाई है कि पापी से भी पापी कर्णपुट द्वारा उसका पान करके अमरपद के अधिकारी होजाते हैं। चौदह ग्रन्थ इनके विख्यात हैं। (१) चौपाई बद्ध रामायण, (२) विनय पत्रिका, (३) गीतावली, (४) कवितावली, (५) दोहावली, (६) राम शलाका, (७) हनुमान् बाहुक, (८) जानकी मंगल, (९) पार्वती मंगल, (१०) कड़का छन्द, (११) बरवा छन्द, (१२) होलाछन्द (१३)

भूलना छन्द, (१४) कृष्णावली, ये सब प्रेमी उपासकों को भारत में सर्वत्र मिल सकते हैं। भगवद्भक्तों का अनुभव है कि जो कोई नियम पूर्वक प्रेम से रामायण का नित्य पाठ करता है, उसकी श्रीरघुनन्दन स्वामी के चरणों में अवश्य प्रीति हो जाती है। रामायण के एक कांड का यदि किसी कामना से पाठ किया जाय तो वांछित मनोरथ सिद्ध होता है। रामशलाका में यदि कोई प्रश्न करे तो ऐसे दोहे निकलते हैं कि होने वाली बात ज्ञात हो जाती है। रामायण को यदि भाषा का वेद कहें तो इसमें किंचित् भी प्रौढोक्ति नहीं है, इसमें सब सन्त महात्माओं का सम्मत है। एक बार काशी के पंडितों ने सभा की, आदि से अन्त तक सम्पूर्ण रामायण पढ़ी, वेद, शास्त्र, पुराण, गीता सबके अनुकूल देख कर सब ने अंगीकार की। किसी ने द्वेष करके वाद ठाना। पीछे विश्वेश्वर नाथजी के अंगीकार करने से सबने अंगीकार करली।

गोस्वामि तुलसीदासजी कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे। अपनी स्त्री से बहुत स्नेह रखते थे। एक दिन स्त्री अपने मैके मा बाग से मिलने गई। गोस्वामि जी उसका वियोग सह न सके। सुसरार ही में पहुंचे स्त्री को लज्जा आई, क्रोध करके कहने लगी:-

स्त्री:-“यह शरीर अस्थि, मांसरक्त आदिका बना हुआ, मल मूत्र से भरा हुआ परम अपवित्र और अनित्य है! कोई वस्तु इसमें पवित्र नहीं है, त्वचा से ढका हुआ है यदि त्वचा उतारली जाय तो काग चील नोच २ कर खा जाय, मनुष्य दिन

आदि पक्षियों को ह
नहीं है मूर्खों क
स्वयं स्वरूप, नि
खीं करते? यदि ऐसा
उनकी ही अनन्य भ
गोस्वामि पंडित औ
जके पूर्व के पुण्य पुंज
प्ये! संसार से मुख
स्वामी का भजन की
फिरने जाया कर
शुद्ध को जड़ में
था, उस पानी से
भूत प्रत्यक्ष होकर
कहो! गोस्वामिजी
या दे। भूत बोला कि
उसको उपाय बताता
रामायण की कथा नि
या सुनने आया
मनो देख कर भ
हिले आते हैं और
हिचान है। उन
तुम्हारा मनोरथ
पाव हैं। भगवद्भ

रात काकादि पक्षियों को ही उड़ाया करें ! इसमें प्रीति करना बुद्धिमानी नहीं है मूर्खों का काम है ! श्रीरघुनन्दन स्वामी सच्चिदानन्द स्वरूप, निर्विकार पूर्ण ब्रह्म हैं। उन से स्नेह क्यों नहीं करते ? यदि ऐसा करो तो लोक परलोक दोनों सुखर जायें। उनकी ही अनन्य भक्त करो ।”

गोस्वामि पंडित और ज्ञानवान् थे ही इतनी बात सुनते ही उनके पूर्व के पुण्य पुंज उदय हो आये, ज्ञान वैराग्य के नेत्र खुल गये ! संसार से मुख मोड़ कर काशी जी आकर श्रीरघुनन्दन स्वामी का भजन कीर्तन करने लगे। गोस्वामी जी बन में दिशा फिरने जाया करते थे और शौच से बचा हुआ पानी एक वृक्ष की जड़ में डाल देते थे उस वृक्ष पर एक भूत रहता था, उस पानी से उसकी तृप्ति बुझ जाती थी। एक दिन वह भूत प्रत्यक्ष होकर कहने लगा कि जो तुमको कामना हो, वह कहो ! गोस्वामिजी बोले कि श्रीरघुनन्दन स्वामी का दर्शन करा दे। भूत बोला कि यह बात मेरे सामर्थ्य से बाहर है मैं तुमको उपाय बताता हूँ विश्वेश्वरनाथ जी के मंदिर के समीप रामायण की कथा नित्य हुआ करती है और वहाँ हनुमान् जी कथा सुनने आया करते हैं परन्तु ऐसे कुरूप से आते हैं कि उनको देख कर भय लगता है और घृणा होती है। सबसे पहिले आते हैं और सब से पीछे जाते हैं यह ही उनकी पहिचान है। उनके मिलने और उनके प्रसन्न हो जाने से तुम्हारा मनोरथ अवश्य सिद्ध हो जायगा। वे भगवान् के कृपापात्र हैं। भगवद्भक्तों के अनुग्रह से ही भगवत् के दर्शन होते हैं,

अन्य कोई उपाय नहीं है।

गोस्वामी कथा में गये और भूत के बताये हुये चिन्ह से उन्होंने हनुमान् जी को पहिचान लिया। जब वे चलने लगे तो गोस्वामि उनके पीछे हो लिये। बन में जाकर उनके चरण पकड़ लिये और हनुमान् जी के अनेक उपाय करने पर भी चरण न छोड़े अंत में हनुमान् जी ने प्रसन्न होकर दर्शन दिये और उनका मनोरथ पूछा। गोस्वामी जी ने विनय का कि श्रीरघुनन्दन स्वामी के दर्शन चाहता हूँ। हनुमान् जी ने कहा कि चित्रकूट में दर्शन होंगे। गोस्वामी जी अति अभिलाष से चित्रकूट पर आये एक दिन इस स्वरूप से दर्शन हुवा कि श्री रघुनन्दन स्वामी श्यामसुन्दर राजकुमार रूप में बहुमूल्य वसन भूषण धारण किये हुये थे धनुष बाण हाथ में लिये हुए घोड़े पर सवार हैं और वैसी ही सजावट सहित गौर मूर्ति लक्ष्मणजी उनके साथ हैं। एक हरिण के पीछे दोनों घोड़े डाले हुए जा रहे हैं। यद्यपि स्वामी की मूर्ति गोस्वामि जी के मन और आंखों में समागई परन्तु स्वामी को पहिचान न सके। पीछे हनुमान् जी ने आकर पूछा कि दर्शन किये। गोस्वामी जी ने विनय किया कि दो राजकुमार देखे हैं। हनुमान् जी बोले वे दोनों ही राम लक्ष्मण थे। गोस्वामी जी इसी रूप का ध्यान करते हुये मनोरथ को प्राप्त हुये।

एक हत्यारा राम का नाम पुकारता हुआ कहा करता था कि हत्यारे को मित्रा दो। गोस्वामी जी को बड़ा आश्चर्य हुआ कैसा पुरुष है कि पहिले राम नाम लेता है और फिर

को हत्यारा ठहराया और शुद्ध जाया। काशी के प... बुला कर पूछा कि... दूर हो गया।... का शास्त्र में क्या... से करोड़ों जन्म... राम नाम का उ... विश्वास न हो... पण्डितों ने... अविश्वास से... नादिया इसके ह... लिया जाय कि इ... के दिये हुये प्रस... पण्डितों ने लज्ज... किया और गो स... एक दिन... करने आये तो श... चोरों को डराते... ही चोरों ने गो... श्याम सुन्दर वि... यहाँ पहिरा देत... ह्वगये। फिर

आप को हत्यारा ठहराता है। गोस्वामी ने प्रेम से अपने पास बुलाया और शुद्ध जानकर उसको अपने साथ भगवत् प्रसाद जिमाया। काशी के परिडतों ने सभा की और गोस्वामी जी को बुला कर पूछा कि प्रायश्चित्त किये बिना उसका पाप किस प्रकार दूर हो गया। गोस्वामी ने कहा कि एक बार राम नाम लेने का शास्त्र में क्या माहात्म्य कहा है? एक बार राम नाम लेने से करोड़ों जन्मों के पाप दूर हो जाते हैं। इसने तो सैकड़ों बार राम नाम का उच्चारण किया है। जब तक शास्त्र के वचन पर विश्वास न हो तब तक अज्ञान रूप अन्धकार दूर नहीं हो सकता। परिडतों ने यद्यपि शास्त्र को प्रमाण माना परन्तु फिर भी अविश्वास से यह ठहराया कि यदि विश्वेश्वरनाथ का नादिया इसके हाथ से दिया हुआ भोजन करले तो समझ लिया जाय कि इसका पाप दूर हो गया है। जब उसके हाथ के दिये हुये प्रसाद का नादिये ने भोग लगा लिया तब सब परिडतों ने लज्जित होकर राम नाम की महिमा पर विश्वास किया और गोस्वामी जी की भक्ति की सराहना की।

एक दिन गोस्वामी जी के स्थान पर रात को चोर चोरी करने आये तो श्री रघुनन्दन स्वामी हाथ में धनुष बाण लिये चोरों को डराते रहे इसलिये चोर चोरी करने न पाये। सबेर ही चोरों ने गोस्वामी जी से आकर पूछा कि महाराज! वह श्याम शुन्दर किशोर मूर्ति परम मनोहर कौन है, जो आपके यहाँ पहिरा देता है। गोस्वामी जी सब वृत्तांत सुन कर प्रेम में डूब गये। फिर विचार ने लगे कि इस सामग्री के हेतु भगवान

को पारश्रम और रात को जागरण करना पड़ता है, यह बात ठीक नहीं है। बहुत रोये और उसी घड़ी सब धन सामग्री दान देदी। चोर यह वृत्तांत देख कर घर बार छोड़ कर भगवत् शरण हुये।

एक बार एक ब्राह्मण मर गया और उसकी स्त्री मृतक के साथ सती होने को जा रही थी। मार्ग में गोस्वामि जी मिल गये। स्त्री ने दंडवत किया। गोस्वामी जी के मुख से निकल गया कि सोभाग्यवती हो। स्त्री ने कहा कि पति तो मर गया यह दासी सती होने जा रही है। सौभाग्य कहां है? गोस्वामी जी ने उसके कुल में भगवद्भक्ति करने की प्रतिज्ञा करा के भगवत् से प्रार्थना करके उसके पति को जिला दिया।

जब यह बात विख्यात हुई तो बादशाह ने बड़े आदर से बुलवा कर और उच्च आसन पर बैठा कर सिद्धाई दिखाने के लिये विनती की। गोस्वामि बोले कि सिवाय रघुनन्दन स्वामी के दूसरी सिद्धाई कुछ नहीं जानता और न इस झूठे खेल से काम रखता हूं। बादशाह बोला कि अपने स्वामी के दर्शन करादो। गोस्वामी जी कुछ न बोले। बादशाह ने उनको बन्दीघर में भेज दिया। गोस्वामी जी ने हनुमान जी का स्मरण किया। उसी घड़ी बानरों की अगणित सेना ने आकर बादशाही किले में ऐसा उत्पात मचाया कि प्रलयकाल दिखाई देने लगा। जब बादशाह का पलंग उलटा दिया गया तब वह शुद्ध मन से गोस्वामि जी के शरण हुआ और उनके चरणों में गिर गया। बानरी सेना अन्तर्ध्यान हो गई। तुलसीदास जी ने

की
... की तुम दूसरा
... जी का हुआ
... दास जी काशी
... एक बार गोस्व
... और भक्तमाल की
... जो लोक में प्रसि
... के दर्शन के समय
... तब दर्शन कर
... णावली में गोस्
... सिवाय इसके
... किया है।

सियाराममय स
जिनकी यह

ऐसी हठ वाणी
... फैलने का कार
... जाता है, वहां
... शास्त्र सम्म
... मदनगोपाल जी
... देखा तो श्री
... किया और गो
... गोपाल जी
... उस स
... में आये

आज्ञा दी कि तुम दूसरा किला रहने को देखलो, यह स्थान रघुनाथ जी का हुआ। बादशाहने तुरन्त किला छोड़ दिया, तुलसीदास जी काशी चले आये।

एक बार गोस्वामी जी वृन्दावन आये, नाभा जी से मिल और भक्तमाल की रचना देख कर बहुत प्रसन्न हुये। यह बात जो लोक में प्रसिद्ध है कि गोस्वामी जी ने मदनगोपाल जी के दर्शन के समय यह बात कही थी कि धनुषबाण धारण करोगे तब दर्शन करूंगा, यह बात बिना शिर पैर की है क्योंकि कृष्णावली में गोस्वामी जी ने कृष्ण यश गाया है यह प्रसिद्ध है। सिवाय इसके गोस्वामी जी ने सब जगत् को दण्डवत् किया है।

सियाराममय सब जग जानी। करुं प्रणाम सप्रेम सुवानी ॥

जिनकी यह चौपाई कही हुई है, वे भगवत् के सामने ऐसी हठ वाणी कब कह सकते हैं? नहीं कह सकते। इस बात के फैलने का कारण यह है कि उपासक जिस देव के मन्दिर में जाता है, वहां अपने इष्ट के रूप का ध्यान करता है। यह बात शास्त्र सम्मत के अनुकूल माननीय है। जब गोस्वामी जी मदनगोपाल जी के दर्शन को गये और परम मनोहर मूर्ति को देखा तो श्री रघुनन्दन धनुर्धारी का ध्यान करके दंडवत् किया और गोस्वामी जी सिद्ध सच्चे भक्त थे इसलिये मदन गोपाल जी ने भी उनके ध्यान के अनुसार रूप दिखाया और उस समय जो दर्शन करने वाले थे उनको भी धनुर्धारी दृष्टि में आये। इसलिये यह बात फैल गई और किसी ने एक दोहा

भी बना लिया ।

वृन्दावन में गोस्वामि जी से किसी ने प्रश्न किया कि श्रीकृष्ण महाराज पूर्ण ब्रह्म और अवतारी हैं और नृसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र आदि उन अवतारी के अंशकला से अवतार हैं, फिर तुम श्रीकृष्ण महाराज की उपासना क्यों नहीं करते ? यद्यपि शास्त्र प्रमाण से गोस्वामि जी उत्तर देने को समर्थ थे परन्तु माधुर्य भाव में प्रेम भक्ति दृढ़ करते हुये ऐसा उत्तर दिया कि प्रश्न करने वाला चुप हो गया और सिद्धान्त भी बना रहा । गोस्वामि जी ने यह उत्तर दिया कि श्रीरामचन्द्र दशरथनन्दन की बहुत सुन्दर, सुकुमार, अंग मनोहर मूर्ति परम शोभायमान देख कर मेरा मन उनमें ऐसा लग गया है कि छूटता ही नहीं । यदि तुम्हारे वचन से उनमें कुछ ईश्वरता है तब तो और भी अधिक मन भाई हुई ! सोना सुगंधित भी होगया अब तो और भी विशेष करूंगा जिस से सुगंधित सोना मीठा भी हो जायगा । वाह जी वाह ! भगवद्भक्तों के हृदय ऐसे शुद्ध हो जाते हैं कि उनकी वाणी सुन कर पूर्वपक्षी भी उनकी सराहना ही करते हैं ।

कुं:-गोस्वामी कलियुग भये, वाल्मीकि अवतार ।

गाया रघुवर विमल यश, पढत पाप हों क्षार ॥

पढत पाप हों क्षार, भक्ति उपजे रघुवर की ।

अक्षय सुख भंडार, तापहारक सुख कर की ॥

भोला ! हो निष्काम, राम भज देव अनामी ।

शिक्षा यह ही दीन्ह भक्त जानी गोस्वामी ॥

वृष्णयः-तुलसी

हत्या

किया

मुर्दा

दिया

भोल

पृथ्वी

सुन कर प्रेम मे

तकी रचना

सजावट है अ

अर्थ है और त

जो चरित्र वि

है कि मानों अ

ने अपने दिव्य

वत् के जन्म

किये हैं कि उ

निर्मल और

हो जाता है

थे । सूरदास

स्वामी सं

छप्पयः—तुलसी भगवद्भक्त, दर्श भगवत् का पाये ।
 हत्यारा करि शुद्ध, साथ में बैठ जिमाये ॥
 किया द्रव्य सब दान चोर हरि भक्त बनाये ।
 मुर्दा दिया जिलाय, सती के प्राण बचाये ॥
 दिया बादशा मान बहु, बने कृष्ण धनुवागधर ।
 भोला ! भगवत् भजन कर अन्य न कोई काम कर ॥

कथा सूरदास जी की ।

पृथ्वी पर ऐसा कौन है, जो सूरदास जी की रचना सुन कर प्रेम में मग्न न हो जाय ? सब ही मग्न हो जाते हैं । इनकी रचना में आर्थ भाव, स्वाद और ललित अक्षरों की सजावट है अनुप्रास, भगवत् प्रेम का निर्वाह और सलिल अर्थ है और तुल्य हुये विकलित वाक्य बहुत से हैं । भगवत् ने जो चरित्र किये, उनका विस्तार सहित ऐसा वर्णन किया है कि मानों आँखों देखे थे । इनके विमल हृदय में स्वयं भगवत् ने अपने दिव्य और अद्भुत चरित्रों का प्रकाश किया था । भगवत् के जन्म, कर्म, गुण और रूप इन्होंने इस सौन्दर्य से वर्णन किये हैं कि जो उनको पढ़ता अथवा सुनता है, उसकी बुद्धि निर्मल और मन पवित्र हो जाता है । वह अवश्य भगवत्परायण हो जाता है । उद्धवजी श्रीकृष्ण महाराज के सखा और मित्र थे । सूरदास जी उद्धवजी का अवतार हैं । यद्यपि यह विष्णु स्वामी संप्रदाय में थे और भगवत् के बाल चरित्रों में इनके

चित्त की चाह बहुत थी फिर भी इनको शृंगार निष्ठा और सखा भाव का प्रेम भी अत्यन्त था। यह बात सूरसागर से प्रकट होती है। सूरदास और सूरसागर जिनकी कृपा और प्रताप से हजारों अपराधी सिद्ध और शुद्ध भगवद्भक्त होगये हैं और हो रहे हैं उनकी महिमा कौन वर्णन कर सकता है? कोई समर्थ नहीं है! इनका संकल्प था कि सवा लाख विष्णु पद में भगवच्चरित्रों का कीर्तन करेंगे परन्तु पितृहत्तर हजार विष्णु पदकी रचना कर चुकने के बाद ही परम धाम को चले गये। श्रीकृष्ण भगवान् ने आप पचास हजार पद की रचना करके अपने भक्त का संकल्प पूरा किया और सूरश्याम के नाम से भोग रख दिया।

अकबर बादशाह का बजीर खाना संस्कृत विद्या और भाषा का पंडित था और कवि था। उसने जहाँ तहाँ से सूरदास जी के पद ढूँढ़ २ कर एकत्रित किये। अन्त में उसने ऐसी डोंडी पिटवादी कि जो कोई सूरदास का एक पद लावेगा, उसको एक मोहर सोने की दी जायगी। मोहर के लोभ से बहुत लोग नये पद बना कर और भोग में सूरदास जी का नाम डाल कर ले जाने लगे। जब बहुत भीड़ हुई तो यह विचार किया कि सूरदास जी का एक पद तोल कर उसका बोझ तराजू के एक पलड़े में रख लिया जाय और जो पद आवे, दूसरे पलड़े में रख कर तोला जाय। इस प्रकार तोलना आरंभ किया तो जो नया पद आता, उसका कागज मोटा और पद भी बड़ा होता तो भी सूरदास जी के पद के बराबर न तुलता।

और सूरदास जी
भी बराबर हो जा
लाया गया। कि
सूरसागर इकट्ठा
होगया तो सब
पद न जले और
मे से कोई कथन
किसी प्रकार का
न हो तो भी क्या
हो वह प्रभाव
मंत्र सदृश है।

कुं:-अद्भुत

प्रेम भा

हरि सं

अक्षय

भोला

पापन

नन्ददा

पुर के रहने व

भगवत् कीर्तन

रुक्मिणी

और सूरदास जी का पद छोटा और कागज पतला भी होता तो बराबर हो जाता। इस परीक्षा से सूरसागर रूपमान ग्रन्थ बनाया गया। किसी २ का यह कथन है कि अकबर बादशाह ने सूरसागर इकट्ठा किया। जब दो लाख विष्णुपद का संयोग हो गया तो सब आग में डाल दिये। सूरदास के बनाये हुये पद न जले और दूसरों के बनाये हुये जल गये। दोनों कथनों में से कोई कथन सच्चा हो, सूरसागर के प्रभाव और बड़ाई में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। यदि ये लोकोक्ति विख्यात भी न हो तो भी क्या सूर्य छुपा रहता है? भगवत् ने सूरसागर को वह प्रभाव और प्रताप दिया है कि उसका एक २ अक्षर मंत्र सदृश है।

कुं:-अद्भुत रचना सूकी, पाप सकल हर लेय।
प्रेम भाव उपजाय के, हरि संमुख कर देय ॥
हरि संमुख कर देय, चित्त भगवत् में लागे।
अक्षय सुख हो प्राप्त, शोक चिन्ता भय भागे ॥
भोला ! हो निर्मोह, देव भज शास्वत् अच्युत।
पापन करि निर्मूल, सूर रचना पढ़ि अद्भुत ॥

कथा नन्ददास जी की।

नन्ददास जी चन्द्रहास के पुत्र, जाति के ब्राह्मण, रामपुर के रहने वाले प्रेमी भगवद्भक्त विख्यात हैं। अनुक्षण सिवाय भगवत् कीर्तन के इन को दूसरा काम ही नहीं था। पंचाध्यायी, रुक्मिणी मंगल, दशम स्कन्ध, नाम माला, दान लीला और

मान लीला आदि इनके रचे हुये हजारों विष्णु पद इनकी भक्ति के समान संसार भर में विख्यात हैं। इनकी काव्य की श्लाघा में कवि लोगों का यह कथन है (और सब घड़िया, नन्ददास जड़िया) अष्टछाप के भक्तों ने श्रीकृष्ण स्वामी के चरित्र कीर्तन किये हैं। इनके आठों रचे हुये विष्णुपद व्रज में भगवत् के संमुख कीर्तन किये जाते हैं। इन आठों की अष्टछाप में गणना है। उन आठों के मंगल रूप नाम ये हैं:- (१) सूरदास, (२) कृष्णदास, (३) छीतास्वामी (४) नन्ददास, ५] परमानन्द, (६) चतुर्भुज, (७) व्यासजी, (८) हरिदास।

दोः०-नन्ददास कवि भक्त वर, अष्टछाप विख्यात।

भोला ! इनका काव्य पद, क्यों न लहें कुशलात ॥

कथा चतुर्भुज जी की।

चतुर्भुज जी परम रसिक भगवद्भक्त थे। श्रीवृन्दावन में विहारी के मन्दिर में अत्यन्त प्रेम भाव से नित्य नृत्य किया करते थे। एक दिन नृत्य करने में लंगोटी खुल गई, दोनों हाथों से भांझ बजा रहे थे ताल, स्वर और सम के भंग होने के भय से लंगोटी न सभाली ! लोग ठट्टा उड़ाना चाहते थे कि इतने ही में परम रिक्कवार विहारी ने दो भुजा और उत्पन्न कर दी। अपने भक्त की लज्जा रखली और उसका नाम भी सार्थक कर दिया।

कुं:-नाचत थे हरिप्रेम में, मग्न चतुर्भुज भक्त।

खुली लंगोटी नाचते, देखि हंसी का वक्त ॥

देखि हंस

करि दीन

भोला !

जाकी

मथुरादास

में परम सावधान

और बल रखते थे

शिर पर रख कर

हा ऐसा श्रृंगार

वचन और म

कोई साधुवेप से

था कि शालिग्राम

जी भी शिष्यों के

बन्द हो गया।

वह भी उलट

सहाई ताकी व

को हुआ तो म

पश्चात् वह भ

दोहा:-

देखि हंसीका वक्त, परम रिझवार विहारी ।
करि दीन्ही भुजवार, भक्त की लज्जा टारी ॥
भोला ! भज सो देव, जाहि सुर नर मुनि याचत ।
जाकी मायाग्रस्त, देव ब्रह्मादिक नाचत ॥

कथा मथुरादास जी की

मथुरादास जी वृद्धमान जी के शिष्य भगवद्भक्त धर्म में परम सावधान थे । नन्दनन्दन महाराज का दृढ़ विश्वास और बल रखते थे । भगवत् में ऐसी प्रीति थी कि जल का कलश शिर पर रख कर ले आते और प्रेम पूर्वक भक्ति से रास चरित्र का ऐसा शृंगार किया करते थे कि मानों उनका हाथ भगवच्चरित्र और माधुर्य के दर्शनों को सूर्य सदृश था एक समय कोई साधुवेष से वृन्दावन में आया था और ऐसी चेटक करता था कि शालिग्राम जी सिंहासन पर डोलते रहते थे । मथुरादास जी भी शिष्यों के आग्रह से वहां गये । इनके पहुंचते ही चेटक बन्द हो गया । तब उस साधु वेषधारी ठग ने मूठमंत्र मारा । वह भी उलट कर उसी पर पड़ा । सच कहा है 'जाके राम सहाई ताकी क्यों बिगड़ेगी भाई ।' जब वेषधारी साधु मरने को हुआ तो मथुरादास जी ने उसे व्याधि से मुक्त कर दिया । पश्चात् वह भी भगवत्परायण हुआ ।

दोहा:-प्रेमी मथुरादास जी, हर पद में विश्वास ।

भोला ! मायादास से, कीन्हा भगवत् दास ॥

कथा सुखानन्द जी की ।

सुखानन्द जी संसार के आवागमन के भय को दूर करने वाले एक ही थे । उनकी काव्य रचना गुरु मंत्र और तंत्रशास्त्र के समान विख्यात है, भोग में जहाँ अपना नाम लिखा वहाँ भगवत् का नाम सुख सागर लिखा । जैसे कि चन्द्रसखी ने बाल कृष्ण और मीरां जी ने गिरिधर नागर नाम लिखा है । भगवत् गुण चरित्र, कीर्तन, भजन अति प्रेम से करते थे और भक्ति कमल के सेवा करने में मानों सरोवर थे ।

दोः—सुखानन्द जी भक्तवर, रचे कवित्त अमूल्य ।

भोला ! भक्ति सरोज हित भये सरोवर तुल्य ॥

कथा श्रीभट्टजी की

श्री भट्ट जी ने आनन्द व्रजचन्द महाराज और वृषभानु किशोरी के भजन स्मरण की ऐसी सामग्री इस संसार में ढूढ़ कर दी संसार समुद्र के उतरने को नौका के समान है यानी माधुर्य उपासना के प्रिया प्रीतम के जो शोभायमान चरित्र हैं, उनको अपने युगलशत आदि गून्थों में इन्होंने इस माधुर्यता, (मधुर वाणी) और सुन्दरता के साथ वर्णन किया है कि मन अवश्य ही द्रवीभूत होकर नवल किशोर महाराज और नवल किशोरी महारानी के चरित्र और प्रेम में मग्न हो जाता है ।

दोः—वर्णन कीन्हें भट्ट जी, प्रीतम प्रिया चरित्र ।

द्रवीभूत मन होय है, सुनत चरित्र पवित्र ॥

कथा

वर्द्धमान और
दोनों भक्ति
श्रीमद्भागवत के
पापों से पवित्र
थी कि इनके स
यशोदानन्दन म
और दीन जनों पर
अन्य कोई चर्चा
रहते थे ।

दोः—वर्द्धमान
नदी व

कृष्णदास
छन्द और विष्ण
पर्यन्त पहुँच गई
और भगवत् भ
समान सुख देने
अवतार हुआ

कथा वर्द्धमान मंगल की

वर्द्धमान और मंगल दो भाई भीष्म भट्ट के बेटे परम भक्त थे। दोनों भक्ति के पुष्ट करने वाले हुये हैं। भगवच्चरित्र और श्रीमद्भागवत के कीर्तन की नदी बहा दी और इस संसार को पापों से पवित्र और निर्मल कर दिया। भक्तों से इनको ऐसी प्रीति थी कि इनके समीप सर्वदा भक्तों की भीड़ लगी रहती थी। यशोदानन्दन महाराज के स्मरण भजन से इनको प्रेम था और दीन जनों पर अत्यन्त कृपा करते थे। सिवाय भक्ति भाव के अन्य कोई चर्चा नहीं करते थे, सर्वदा भगवच्चर्चा में ही लगे रहते थे।

दो:-वर्द्धमान मंगल भये, भक्त मधुर रस पूर्ण।

नदी बहाई अमृत की, अवगण कीन्हे चूर्ण ॥

कथा कृष्णजी की

कृष्णदास जी की विख्यात चालक की रचना चर्चरी छन्द और विष्णुपद आदि की ऐसी विख्यात हुई कि समुद्र पर्यन्त पहुँच गई। गुरुधन चरित्र, पंचाध्यायी, रुक्मिणी मंगल और भगवत् भोजन विधि इत्यादि ग्रन्थों की रचना मेघ के समान सुख देने वाली है। भगवत् सन्मुख करने के लिये इनका अवतार हुआ था।

कृष्णदास जी भक्तवर, रचे ग्रन्थ अनेक।

भगवत् संमुख कर तजे, देते विमल विवेक ॥

कथा नारायण मिश्र की

नारायण मिश्र नवलाचंश में परम भक्त हुये। भागवत् के कीर्तन में तो मानों एक यह ही जन्मे थे। बद्रिकाश्रम की ओर शुकदेवजी ने स्वयं इनको भागवत् पढ़ाई थी। इनके पास भक्तों की समाज नित्य एकत्र रहती थी। इन्होंने नवधा भक्ति की भली प्रकार साधना की, सब शास्त्रों को भली प्रकार समझ कर वह तत्व चुन लिया था, जो बृहस्पति, शुकदेव, सनकादिक, व्यास आदिकों के हृदय में स्थित है। यह सुधाबोध थे और गंगाजी के समान इनका दर्शन था।

दो:-श्रीनारायण मिश्रजी, कीर्तन कर्ता एक।

श्रीशुक से पढ़ि भागवत्, पाया तत्व विवेक ॥

कथा कमलाकर की

कमलाकर भट्ट परमभक्त, पंडित और सर्व शास्त्रों के ज्ञाता थे। उपासना शास्त्र की तो ध्वजा ही थे। भक्ति विरोधियों को शास्त्रार्थ में जीत कर भगद्धक्ति पर आरुढ़ हुआ। माध्व संप्रदाय में मानों माधवाचार्य का अवतार थे। माधवाचार्य ने जो दिग्विजय टीका भागवत की रचना की है, उसी के अनुकूल भागवत् का कीर्तन और वर्णन किया करते थे। स्मृति और पुराणों के अनुकूल भागवत् के शंख चक्र की महिमा वर्णन करके आप भी उन चिन्हों को धारण किया था। सब अवतारी को पूर्ण समझते थे, किसी में कुछ भेद नहीं मानते थे।

कीर्तन नि

पंडित कमलाकर
भक्ति विरोधिन जी

कथा पर

परमानन्दजी श्रीकृष्ण
मान वेसुध और म
वर्ष की अवस्था के
मान हैं, इन्होंने शोभ
राज की लीला का अ
माध्वचर्य नहीं है क्य
रित्र इनकी आँखों के
हने लगता था, रोम
जाता था। शोभाधाय
उन्हीं के रंग में रं
के भगवत् का सार
मे को बढ़ाने वाली
थे वाली है।

दो:-प्रेमी परम
भोला ! शु

दो:-पंडित कमलाकर भये, भक्ति शास्त्र मर्मज्ञ ।

भक्ति विरोधिन जीत कर, अज्ञ किये सर्वज्ञ ॥

कथा परमानन्दजी की

परमानन्दजी श्रीकृष्ण जी के स्नेह और प्रेम में गोपियों के समान वेसुध और मग्न रहते थे। ब्रजकिशोर स्वामी की बारह वर्ष की अवस्था के चरित्र ऐसे कीर्तन किये कि भक्तों में विख्यात हैं। इन्होंने शोभा, सुन्दरता, माधुरी रूप नटनागर महाराज की लीला का अति प्रेम युक्त जो वर्णन किया है उसमें कुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि उनकी शोभा उनके बाहर भीतर के चरित्र इनकी आँखों के आगे आ जाते थे, प्रेम का जल नेत्रों से बहने लगता था, रोमांच अनुक्षण रहता था, और स्वरभंग हो जाता था। शोभाधाम महाराज की शोभा में सर्वदा लगे हुये और उन्हीं के रंग में रंगे हुये रहते थे। अपने काव्य में विशेष करके भगवत् का सारंग नाम लिखते थे। इनकी रचना भगवत् प्रेम को बढ़ाने वाली और भगवत् के ध्यान में मन को लगा देने वाली है।

दो:-प्रेमी परमानन्दजी, रंगे भक्ति के रंग ।

भोला ! छुटे न एक क्षण, हरि चरणन का संग ॥

गुरु निष्ठा ।

सर्व पूज्य सदापूर्ण अखंडानन्दविग्रहम् ।

चित्त्वभावं सदाशिलं नमामि श्रीमद्गुरुम् ॥

मंसारामः—महाराज ! कल आपने कीर्तन निष्ठा का वर्णन किया था और कई भक्तों की कथाएँ सुनाई थी, आपके वचनामृत सुनने से तृप्ति नहीं होती, ज्यों २ सुनभा हूँ, रुचि दूनी होती जाती है, कृपा करके आज गुरु का माहात्म्य सुनाइये और गुरु कितने हैं, एक ही गुरु करना चाहिये अथवा अधिक ?

मस्तरामः—भाई ! श्री गुरु की महिमा किस से वर्णन हो सकती है ? ब्रह्मांड भर में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है, जो श्री गुरु का माहात्म्य वर्णन कर सके, फिर भी अपनी बुद्धि अनुसार संक्षेप में कुछ सुनाता हूँ, ध्यान देकर सुन ! शास्त्र का वचन है कि गुरु तीन हैं, प्रथम गुरु पिता, दूसरा गुरु संस्कारकर्ता जिसने यज्ञोपवीत दिया हाँ और तीसरा गुरु भगवत् मंत्र और भगवद्धर्म का उपदेश करने वाला है । एक शास्त्र के वचन से स्त्री का गुरु पति ही है । यद्यपि ये सब मर्यादा और महिमा में बराबर हैं । मैं तुझे इसी निष्ठा में उस गुरु का माहात्म्य सुनाता हूँ, जो गुरु भगवत् प्राप्ति के हेतु किया जाता है । वेद, शास्त्र तथा सब महात्माओं का संगत है कि गुरु और भगवत् में कुछ भी भिन्नता नहीं है, दोनों अभिन्न हैं, भागवत् के एकादश स्कंध में भगवत् का वचन है कि गुरु को मेरा रूप जाने ।

भक्त माल के कर्ता का वचन है कि भक्त भक्ति, गुरु और भगवत् कथन मात्र को चार हैं, नहीं तो वस्तुतः चारों एक ही स्वरूप हैं। गुरु कैभाही, कामी, क्रोधी, लोभी हो उसको भगवत् रूप जानना चाहिये, किसी विद्वान् का वचन है कि कामी गुरु श्रीकृष्ण स्वरूप है, क्रोधी गुरु श्रीवामन स्वरूप है, और धर्मात्मा गुरु रामरूप है ! भागवत् में लिखा है कि जो मनुष्य ज्ञानदाता गुरु को अन्य मनुष्य के सामान जानता है, उसकी बुद्धि उस हाथी के समान है, जो स्नान करके अपने मस्तक पर धूल डाल लेता है। आज तक न तो कोई देखने में ही आया और न सुनने में ही आया है कि कोई विनागुरु किये ईश्वर को प्राप्त हुआ है, जो २ ईश्वर को प्राप्त हुए हैं, गुरु के उपदेश द्वारा ही हुये हैं। विचार करने की बात है कि लौकिक विद्या भी विना गुरु के प्राप्त नहीं होती, तो भगवत् जो अलौकिक और गुह्य से भी गुह्य हैं, विना गुरु किस प्रकार प्राप्त हो सके हैं? नहीं हो सके, महाभारत में लिखा है कि जब तक गुरु न किया जाय तब तक कुछ प्राप्त नहीं होता। लोकोक्ति भी है कि विना ठगाये कोई ठाकुर नहीं बनता, इसलिये गुरु करना अवश्य प्रयोजन है। यह भी शिष्ट पुरुषों का वचन है कि वेद, पुराण, जप, तप आदि गुरु विना निष्फल हैं। वेद की आज्ञा है कि गुरु के उपदेश विना पूजा पाठादि जो कर्म किया जाता है, वह सब व्यर्थ है। इसलिए जिसको भक्ति और भगवत् प्राप्ति की इच्छा हो, उसको उचित है कि गुरु की शरण होवे। कई जातियों में नियम है कि संस्कार होने के बाद फिर गुरु नहीं करते और कई जातियों में

यह रीति है कि संस्कार होने के बाद भगवत् प्राप्ति के लिये अलग गुरु किया जाता है, लाभ हानि से कुछ प्रयोजन नहीं रखते गुरु करने से ही प्रयोजन रखते हैं। परन्तु बड़े लोगोंका कथन है कि "पानी पीजे छान, गुरु, कीजे जान" ! है भी ऐसा ही धोले की हाँडी भी ठोक बजा कर ली जाती है, इसलिये गुरु पहिचान कर ही करना चाहिये क्योंकि अंधेरी कोठरी में सूक्ष्म सुई रक्खी हुई है। एक तो उसको जानता है कि कोठरी में सुई निश्चय रक्खी हुई है और दूसरा जानता है कि अमुक स्थान पर दीवार में गड़ी हुई है। इन दोनों के शिष्य जब सुई को ढूँढने जायेंगे तो पहले का शिष्य तो ढूँढता फिरेगा, मिल गई तो मिल गई नहीं हार कर लौट आवेगा अथवा रह ही जायगा, ढूँढते २ मिले या न मिले, मिले भी तो न मालूम कब तक मिले इसका निश्चय नहीं हो सकता। और दूसरे का शिष्य अपने गुरु के बताये हुये स्थान पर सीधा चला जायगा और बिना श्रम तुरन्त ही सुई को ले आवेगा यह नहीं हो सकता कि नहीं मिले, अवश्य ही मिल जायगी। अभिप्राय इस कथन का यह है कि संस्कार हो जाने के पीछे जब कुछ समझ आजाय तो भगवत् की प्राप्ति के लिये भगवत् के जानने वाले को गुरु अवश्य करना चाहिये, बिना गुरु किये कुछ नहीं होता यदि उस गुरु से भी कुछ संदेह रह जाय और अपने लाभ और अपनी इच्छा की पूर्णता न हो, तो दूसरा गुरु करने में कोई हानि नहीं है और शास्त्र की भी आज्ञा है। दत्तात्रेय ने चौबीस गुरु किये थे। श्रीरामचन्द्र जी के ब्रह्मविद्या के गुरु वशिष्ठ जी थे।

विद्या के गुरु विश्वा
पीछे सूर्य भगवान् क
गुरुन करके जन
प्राप्त मिलते हैं। जब
यवा इससे भी अधि
जायदाद नहीं है,
! इतनी बात अवा
तना गुरु माने।

यद्यपि शास्त्रों
परन्तु गुरु के
शास्त्र का ज्ञाता हो
और चौथे वेद की
आर एक धर्म सव
करने के निमित्त है
संमुख कर देवे।
गुरु का अर्थ अन
है, इसलिये अ

इसी प्रकार
कीसेवा करे, दूस
का त्याग और
है कि जिसकी
के सब मनोर
अर्थ का जान

धनुर्विद्या के गुरु विश्वामित्र थे। याज्ञवल्क्य ने वैशंपायन ऋषि के पीछे सूर्य भगवान् को गुरु बनाया था। शुकदेव जी ने पिता को गुरु न करके जनक को गुरु किया इस प्रकार बहुत से दृष्टान्त मिलते हैं। जब तक पूर्ण शान्ति न हो, एक, दो, तीन, अथवा इससे भी अधिक गुरु करने चाहिये। शिष्य कोई जमीन या जायदाद नहीं है, जिस पर एक ही गुरु का अधिकार हो, हां! इतनी बात अवश्य है कि जिससे जितना सीखे उसको उतना गुरु माने।

यद्यपि शास्त्रों में शिष्य और गुरु के बहुत से धर्म लिखे हैं परन्तु गुरु के चार धर्म आवश्यक हैं, एक तो गुरु शास्त्र का ज्ञाता हो दूसरे भगवद्भक्त हो, तीसरे समदर्शी हो और चौथे वेद की आज्ञा के अनुकूल वर्तने वाला हो, इन सबसे ऊपर एक धर्म सब शास्त्रों में कहा है कि गुरु अज्ञान के दूर करने के निमित्त है, जिस प्रकार हो सके शिष्य को भगवत् संमुख कर देवे। यह अर्थ गुरु शब्द में घटता भी है क्योंकि गु का अर्थ अन्धकार है और रु का अर्थ दूर करने वाला है, इसलिये अज्ञान रूप अंधकार को दूर करने वाला गुरु है।

इसी प्रकार शिष्य के चार धर्म मुख्य हैं। प्रथम तन मन से गुरु की सेवा करे, दूसरे सेवा के समय सुख स्वाद का त्याग तीसरे गर्व का त्याग और चौथे गुरु में हृदय विश्वास हो। श्रुति भगवती कहती है कि जिसकी भक्ति भगवत् और गुरु में समान है, उस महात्मा के सब मनोरथ आप से आप सिद्ध होते हैं और वह गूढ़ से गूढ़ अर्थ का जानने वाला हो जाता है। गुरु में विश्वास ऐसा हो

कि जैसे भगवद्भक्तों को भगवत् में होता है और सेवा ऐसी हो कि जिस प्रकार अज्ञानी अपने शरीर की सेवा करते हैं। महाभारत के आदि पर्व में लिखा है कि धूम्र ऋषीश्वर के चार शिष्य थे, वे चारों गुरु में दृढ़ विश्वास रखते थे और गुरु की सेवा करके केवल गुरु के आशीर्वाद से सब विद्या के ज्ञाता और दोनों लोकों के फल को प्राप्त होगये। यदि कोई यह प्रतिवाद करे कि बिना परिश्रम केवल विश्वास से कैसे विद्या प्राप्त हो गई तो इसका समाधान यह है कि उन्होंने गुरु में जो विश्वास किया, वह भगवत् रूप जान कर किया भगवत् ने गुरु द्वारा उनके सब मनोरथ सिद्ध कर दिये। सिवाय इसके कई स्थलों पर यह वर्ण है कि अमुक ऋषि ऐसे प्रताप वाले थे कि उनके स्थान में सिंह बकरी एक घाट पानी पीते, व्याघ्र का स्वभाव बदल जाना स्थान का प्रभाव है, इसी प्रकार गुरु का प्रताप भी अपने प्रभाव से क्षण भर में शिष्य को वांछित फल की प्राप्ति करा देता है। बहुत प्रसंगों में ऐसा हो चुका है और अयुक्त भी नहीं है। जैसे निर्मल जल कपड़े के मैल को दूर करके निर्मल कर देता है इसी प्रकार भले का आशीर्वाद शीघ्र लग जाता है।

उपरोक्त कथन से यह सिद्ध हुआ कि गुरुमहात्मा योग्य होना चाहिये परन्तु आज कल ऐसे गुरु नहीं मिलते हैं कि चेला चाहे नरक में चाहे स्वर्ग में जाय, उन्हें कुछ प्रयोजन नहीं, केवल द्रव्य खींचने से उनको मतलब है, छै मास अथवा साल में पधारे, आकर दुकानदारी फैलाई, यह बात, वह बात, टका

पर मेरे हाथ, कृप
विद्यार्थियों के भोजन
पियाऊ खुल जाय त
ऐसा, धोती अंगोछा
हुए, नियत समय
शिष्य ने अपने संदे
उत्तर तो गया च
शत्रुता है, अभिमा
सुतायो पीछे पीछे
यह वृत्तांत है कि
तो बात ही क्या
मानों यम के दूत
हुआ? अभी तो अ
से कम ठहरेंगे, अ
विदाई भी देनी प
गिरा हुआ गोबर
पत्तक है, क्या वि
पड़ेगी भला आज
कहाँ गरु और क
जैसे गु
विचार
बहुत मिल
है। यदि थो

घर मेरे हाथ, कूड़ा बनाना है, मंदिर की मरम्मत करानी है, विद्यार्थियों के भोजन का प्रबंध होना चाहिये, सड़क के किनारे पियाऊ खुल जाय तो अच्छा है, इत्यादि बातें बना कर रुपया पैसा, धोती अंगोछा जो हाथ आगया अंटी में चढ़ाया, चम्पत हुये, नियत समय पर फिर आने को कह गये। यदि किसी शिष्य ने अपने संदेह की निवृत्ति के लिये कोई बात पूछी तो उत्तर तो गया चूल्हे भाड़ में, अविश्वासी है, नास्तिक है, बातूनी है, अभिमानो है इत्यादि अनेक बातें उसके मुख पर सुनायी पीछे पीछे उसकी निन्दा करते फिरने लगे। शिष्यों का यह वृत्तांत है कि गुरु का शिक्षा ग्रहण करने, गुरुमंत्र जपने की तो बात ही क्या है, दो वर्ष पीछे गुरुजी घर पर पधारे तो मानों यम के दूत आगये, मन में विचारने लगे अरे यह क्या हुआ ? अभी तो आये ही थे, फिर आगये ! पांच चार दिन कम से कम ठहरेंगे, अच्छे २ मिष्टान्न दूध मलाई भोजन करेंगे। विदाई भी देनी पड़ेगी, कुछ न कुछ लेकर ही टलेगें, जमीन पर गिरा हुआ गोबर बिना मिट्टी लिये थोड़ा ही उठता है ? पुरो पन्नक है, क्या किया जाय ! जैसे बनेगी वैसे बला टालनी ही पड़ेगी भला आज कल जब गुरु शिष्यों का यह वृत्तांत है, तो कहाँ गुरु और कहाँ चेला।

जैसे गुरु वैसे चेला, दोनों नरक में ठेलम ठेला।

विचार कर देखा जाय तो गुरुओं की कमी नहीं है, गुरु बहुत मिलते हैं परन्तु शिष्यों की आंखों में ही पट्टी बन्ध रही है। यदि थोड़ा सा भी परलोक और भगवत् का भय, मान कर

गुरु की खोज करें, तो ऐसा नहीं है कि गुरु न मिलें ! कहा भी है, 'जिन ढूँढ़ा तिन पाइयां। परन्तु जब काम काज से फुरसत नहीं है, घर से पैर बाहर नहीं धरा जाता परलोक का भय नहीं है, और भगवत् प्राप्ति की इच्छा भी नहीं है, तो गुरु कहाँ से मिले ? कहीं छप्पर झाड़ कर भी किसी को धन मिलता हुआ देखने में आया है ? जिसको जो कुछ मिलता है प्रयत्न से ही मिलता है।

कहीं इस लिखने से यह भी न समझ लेना चाहिये कि जब योग्य गुरु मिलेंगे, तब ही गुरु करें यह बात नहीं है, ऊपर तो इस समय का वर्णन किया है। अभिप्राय इस लिखने का यह है कि गुरु का निश्चय अवश्य कर लेना ही पर्याप्त है कि गुरु उपासना का जानने वाला है गुरु दीक्षा से उसको मंत्र मिला है, ऐसा गुरु कर लेना चाहिये। यह नहीं कि पोथी देख कर मंत्र ले लिया और शिष्य बन गये। जिसके उपदेश वचन पर दृढ़ विश्वास हो बस वह गुरु है। गुरु उसको हाथों हाथ संसार समुद्र से पार उतार देगा। धर्म कर्म गुरु के बुरे हों अथवा भले हों, शिष्य को सब धर्म रूप हैं क्योंकि शिष्य को दृढ़ विश्वास है। गुरु रूप भगवत् आप हैं, वे ही मार्ग दिखा कर दोनों लोकों के अर्थ को सिद्ध कर देंगे। यदि विश्वास न हो, तो कैसा ही महात्मा गुरु हो, उसके मिलने से कुछ लाभ न होगा। सच कहा है कि जो मनुष्य भगवत् से विमुख हो, उसको गुरु के अवलम्बन से ईश्वर मिल सकता है और जो गुरु न किया और गुरु के वचन पर विश्वास न हुआ तो कहीं ठिकाना

है।

बहुधा ऐसा हुआ

है, उनकी कथा बता है।

एक खत्री

एक खत्री के ल

नन्दनन्दन महाराज

हुता है, उसको मिल

गान का अत्यन्त आका

शोर को ढूँढ़ने लगा

किसी ने कहा

किसी ने कहा है तो

कहा कि परमधाम

विश्वास न हुआ औ

धर्म मिथ्या नहीं हो

खाना, पीना,

ढूँढ़ने लगा। जब क

रिक्ता ही रहा तो

ही बना, आकर

वह मैं ही

अधि देख कर

लड़क

है, जिनको मैं

नहीं है।

बहुधा ऐसा हुआ है कि शिष्य के विश्वास से गुरु तर गये हैं, उनकी कथा आगे सुनाऊंगा एक कथा इस समय सुनाता हूँ।

एक खत्री के लड़के की कथा।

एक खत्री के लड़के ने अपने गुरु के मुख से सुना कि श्रीनन्दनन्दन महाराज व्रज में नित्य रहते हैं जो मन लगा कर ढूँढता है, उसको मिल जाते हैं। यह सुन कर लड़का भगवत् दर्शन का अत्यन्त आकांक्षी होकर व्रज में गया और वहाँ श्रीनन्द किशोर को ढूँढने लगा परन्तु कुछ पता न चला, लोगों से पूछा तो किसी ने कहा गोलोक में हैं, किसी ने वैकुण्ठ में बताये। किसी ने कहा है तो व्रज में ही परन्तु देखने में नहीं आते, किसी ने कहा कि परमधाम को गये हैं। लड़के को किसी के वचन पर विश्वास न हुआ और मन में कहने लगे कि मेरे गुरु का वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता, मेरे ढूँढने में कसर है! ऐसा सोच कर खाना, पीना, सोना सब छोड़ छोड़ कर व्याकुल होकर ढूँढने लगा। जब कई दिन तक बिना खाये पिये बिना सोये बैठे फिरता ही रहा तो करुणाकर दीन वत्सल घबराये और दर्शन देते ही बना, आकर कहने लगे, 'भाई! जिसको ढूँढता फिरता है, वह मैं ही हूँ'! लड़का भगवान् के रूप की माधुरी और अनूप छवि देख कर चरणों में गिरपड़ा और कहने लगा:-

लड़का:-भगवन्! इसमें सन्देह नहीं है कि आप वही हैं, जिनको मैं ढूँढता फिर रहा हूँ, परन्तु मैंने सुना है कि आप

चोर छलिया भी हैं, ग्वालियों का मक्खन चुरा २ कर खा जाते हैं, बलिराजा को छल चुके हैं, इसलिये जब तक मेरे गुरु आपको पहिचान कर निश्चय न कर देंगे, तब तक मुझे विश्वास नहीं आवेगा ! बड़ों का भी कथन है कि नये आदमी का शोध ही विश्वास करके उसके धोखे में न आ जाना चाहिये ! आप मेरे गुरु के पास चलिये ।

भाव प्रिय भगवान् प्रेम की रस्सी में बन्धे हुये भक्ति के विश्वास के वश कुछ न कह सके, साथ हो लिये । लड़के ने भगवान् के छल और कपट के भय से उनका हाथ पकड़ लिया दोनों तुरंत ही गुरु के स्थान पर आ पहुँचे आधी रात थी, गुरुजी अट्टे पर शयन करते धातु की आवृत्ति कर रहे थे ! लड़का पुकार कर कहने लगा:-

लड़का:-महाराज ! गुरु महाराज ! किवाड़ खोलिये नीचे आइये ! ब्रज सुन्दर शोभा मन्दिर मन मोहन महाराज को लाया हूँ, आप आकर पहिचान कर लीजिये ।

चार बार के पुकारने पर गुरुजी के कान में भनक पड़ी, लड़के की बात का विश्वास न आया समझे कि मिथ्या बक रहा है परन्तु क्या देखते हैं कि उजाला हो रहा है, शोभाधाम के मुख की झलक आभूषणों से विलक्षण चांदनी सी छिटक रही है । झरोकों की राह से ऐसा देख कर घबराकर उठे और खिड़की खोल कर भाँके तो क्या देखते हैं कि सच है । नट नागर सुख सागर, ब्रजचन्द, छवि समुद्र, मदन मुरारी, बाँके बिहारी, बाँकी सजधज से खड़े हुये हैं । मुखारविन्द की चांदनी

दिशाओं में खिल
नीलकंठ गोरे गोरे
राजल शोभा दे रहा
पर धारण किये
तलों के मोतियों की
झलक मोतियों
क हैं, बुलाक में स
ऊपर पचरंगी माला
मोतियों का हार है, म
विचित्र हार है ! स
बागों के ऊपर सुन
कर झालर के स
झल झलक रही है ।
पेट में कस रखी है
ब्रजचन्द हैं अंगुलियों
गुठिया हैं ।

भक्तों को आ
धुत चित्त आकर्षक
पड़ गई और एक
अरे धूर्त ! य
हाथ पकड़ रहा
राजाओं के
राज दुर्लभ

दशों दिशाओं में खिल रही है ! कारी कारी मधुकर को लजाने वाली अलकें गोरे गोरे कपोलों पर छुटी हुई हैं । अलसीली आँखों में काजल शोभा दे रहा है । जवाहरान का जड़ाऊ मोर मुकुट शीश पर धारण किये हुये हैं । कानों में मकराकार कुँडल है कुण्डलों के मोतियों की झलक कपोलों पर पड़ रही है ! कपोलों की झलक मोतियों पर पड़ रही है । नासिका में छोटा सा बुलाक है, बुलाक में सब्जा जड़ा हुआ है कंठा गले में है, कंठ के ऊपर पंचरंगी माला है । माला के ऊपर जवाहरात और मोतियों का हार है, मोतियों के हार के ऊपर सुगंधित पुष्पों का विचित्र हार है ! सुकुमार शरीर है, कोमल शरीर पर बागा है । बागे के ऊपर सुनहरी तार की मुक्केश में गोपियों ने मोती गूँथ कर झालर के समान लगा दिये हैं । हार के ऊपर जड़ाऊ हैकल झलक रही है । प्याजी रंगकी जरी का दुपट्टा है दुपट्टे को कटि में कस रक्खा है ! हाथों में कंकण, पहुंची और जड़ाऊ बाजूबन्द हैं अंगुलियों में नाना प्रकार के नगरों की सुवर्ण की अंगुठिया हैं ।

भक्तों को आह्लाद देने वाली कुँवर कन्हैया की ऐसी अद्भुत चित्त आकर्षक छवि देख कर गुरु जी की आँखें चकाचौंध में पड़ गई और एक साथ पुकार कर कहने लगे ।

अरे धूर्त ! यह कैसी ढिठाई कर रहा है । किस बुरी तरह से हाथ पकड़ रहा है ? यह नन्दनन्दन, भक्तउर चन्दन, महाराजाओं के महाराज हैं ! पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्दघन हैं ! इनके दर्शन दुर्लभ हैं ! कोटि जन्म तक महापुण्य कर्म करने से भी इन

का दर्शन होना दुर्लभ है ! तेरा कोई महान् पुण्य उदय हुआ है, जो तुझे इनका दर्शन प्राप्त हुआ है, और तेरे प्रेम की रस्सी में बन्ध कर तेरे साथ चले आये हैं ! ठहर जा ! मैं भी आता हूँ, अभी आता हूँ, दौड़ा हुआ आ रहा हूँ ! ठहरा रह !

इतना कह कर गुरुजी तो आते ही रहे, नटनागर सुख के अपार सागर लड़के साहत अन्तर्ज्ञान होगये ! गुरुजी आये तो क्या देखते हैं कि वहाँ तो कुछ नहीं ! हाथ मलते रह गये ! कभी अपने चेले के दृढ़ विश्वास पर दृष्टि करके उसकी सराहना करते थे, कभी अपने को धिक्कार देते थे ! कभी दर्शन पाने से अपना अहोभाग्य मान कर बदन में फूले नहीं समाते थे ! अन्त में त्यागी होगये और अपने चेले के निश्चय के प्रभाव से भगवत् को प्राप्त हुये ।

हे मंसाराम तू भी मूर्खता छोड़ दे, ऊपर के स्वरूप का ध्यान किया कर जैसे बने वैसे भगवत् संमुख हो जा यह ही मनुष्य जन्म का सार्थक है । भगवच्चरण कमलों के बिना किसी को कुछ प्राप्त नहीं होता । ब्रह्मादि देवता भी भगवत् के चरण कमलों की रज को अपना धन्य भाग्य समझते हैं, मनुष्यों का तो कहना ही क्या है ? जो मनुष्य असावधान रह कर भगवत् की भक्ति में नहीं लगता, उसका अभाग्य है ! तू भी भाई समझ जा और रूप अनूप का चिंतवन किया कर ! ऐसा करने से सब से पहिले तेरी नाव ही तीर पर पहुँचेगी ।

कथा

पादपद्माचार्य

तट पर गुरु सेवा

पाने लगे । पद्माचार्य

र गुरु जी ने आज्ञा

समझ कर उनका ध

पद्माचार्य जी गंगा

चरण नहीं रखते थे

थे । दूसरे उनको प

गुरुजी तीर्थों से ल

की निन्दा की ! गुरु

मर्यादा के भय से

मोह दूर करने के

समय पद्माचार्य से

धर तो गुरुजी

गुरुजी कोई सौ

किस प्रकार उन

रहे थे कि इतने

हो आए और प

अंगोछा दे कर

पद्माचार्य नाम

'साधु' कहने ल

कथा पादपद्माचार्यजी की ।

पादपद्माचार्य जी परम भगवद्भक्त गुरु निष्ठ थे । गंगाजी के तट पर गुरु सेवा में रहा करते थे । एक समय गुरु तीर्थ को जाने लगे । पद्माचार्य को अपने वियोग से विकल होते हुए देख कर गुरु जी ने आज्ञा की कि गंगाजी को हमारा ही स्वरूप समझ कर उनका ध्यान किया करना । गुरुजी के जाने के बाद पद्माचार्य जी गंगाजी का पूजन करने लगे । कभी गंगाजी में चरण नहीं रखते थे । कूप जल से स्नानादि कर लिया करते थे । दूसरे उनको ऐसा करते देख कर अप्रसन्न रहते थे । जब गुरुजी तीर्थों से लौट कर आये तो सबने उनसे पद्माचार्य जी की निन्दा की ! गुरुजी पद्माचार्य के जी की बात जान गये कि मर्यादा के भय से गंगाजी में चरण नहीं डालते परन्तु सबका मोह दूर करने के लिये एक दिन गुरुजी गंगा में स्नान करते समय पद्माचार्य से अंगोछा मांगा । पद्माचार्य सोचने लगे कि इधर तो गुरुजी की आज्ञा है और उधर गंगाजी गुरु रूप हैं, गुरुजी कोई सौ गज के फासले पर खड़े हुये हैं, अंगोछा लेकर किस प्रकार उनके पास जाऊँ । पद्माचार्य जी यह चिन्ता कर ही रहे थे कि इतने ही में कमल के पत्र और फूल गंगाजी में प्रकट हो आए और पद्माचार्य उन पत्तों पर पैर रखते हुये गुरुजी को अंगोछा दे कर गंगा तट पर लौट आए । गुरु ने ऐसा देख पद्माचार्य नाम रक्खा । सब साधु भी यह देख कर 'साधु' 'साधु' कहने लगे ।

कु:-लीन्हे पद्माचार्य जी गुरुवाक्य शिर धार ।

पूजी गंगा प्रेम सं, गुरु सम सह उपकार ॥

गुरु सम सह उपकार, पूजते गंगा भाई ।

दे न धार में पांव, कूप जल लेंय नहाई ॥

बना पद्म का सेतु, वख गुरु कं जा दीन्हे ।

भोला ! कहि गुरु धन्य, लगा छाती से लीन्हे ॥

कथा विष्णुपुरी की

विष्णुपुरी जी परम भगवद्भक्त थे । भागवत् धर्म के सामने अन्य सब धर्मों को असार समझते थे । यह माध्व संप्रदाय में श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के शिष्य थे । श्रीमद्भागवत् रूप समुद्र में से इन्होंने श्लोक रूपी अमूल्य रत्न निकाल कर कल के दरिद्री जीवों को निहाल कर दिया । जगन्नाथपुरी में एक बार बातों ही बातों में साधुओं में यह प्रतिवाद होने लगा कि विष्णुपुरी मुक्ति के हेतु काशीपुरी में निवास कर रहे हैं, श्रीकृष्ण महा प्रभु जी ने उत्तर दिया कि उन को न तो मुक्ति से कुछ प्रयोजन है, न किसी देवता से, न काशी से कुछ मतलब है, श्रीकृष्ण चरण कमलों के सिवाय किसी अन्य में भूलकर भी उनकी चित्तवृत्ति नहीं जाती, केवल सत्संग के अर्थ काशी में टिके हुये हैं, जब लोगों ने न माना तो महाप्रभु ने एक रत्न की माला भेजने के लिये विष्णुपुरी को पत्र लिखा । विष्णुपुरी अपने गुरु के मन की बात को समझ गये और उन्होंने श्रीभागवत् रूपी समुद्र में से पांच सौ श्लोक रूपी रत्न चुनकर एक माला

मार्द और भक्त रत्न

मार्द भेज दी । साधु

मार्द विश्वास हो

मार्द हैं और गुरु नि

मार्द तेरहवें अध्याय

मार्द का वर्णन है

मार्द प्रेम में रंग

विष्णुपुरी

करते ह

लिखा

मंत्र भा

पढी भ

भोला !

पृथ्वीराज

गुरु निष्ठ हुए

पाते, शंख चक्र

दास की कृपा

यह भीष्मपित

भजन करने

प्रकार हुये,

एक बार पृ

बनाई और भक्त रत्नावली उसका नाम रख कर अपने गुरु के, पास भेज दो। साधु उसको पढ़ कर भक्ति रस में मग्न होगए सबको विश्वास होगया कि विष्णुपुरी जी श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हैं और गुरु निष्ठा में भी ऐसे ही हैं। इस भक्त रत्नावली के तेरहवें अध्याय में क्रम से भिन्न २ नवधा भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का वर्णन है। विषयी से भी विषयी पुरुष उसको पढ़ कर कृष्ण प्रेम में रंग जाते हैं।

विष्णुपुरी गुरु भक्त, वास काशी में करते।
करते हरि गुण गान, ध्यान भगवत् का धरते ॥
लिखा पत्र गुरुदेव, रत्न माला मंगवाई।
मंत्र भागवत् रत्न, पंच शत माल बनाई ॥
पढ़ी भक्त रत्नावली, भक्त भक्ति रस मग्न मन।
भोला ! निर्धन जन्म का, पाया अक्षय भक्ति धन ॥

कथा पृथ्वीराज की

पृथ्वीराज कछुवाहे आमेर के राजा ऐसे भगवद्भक्त और गुरु निष्ठ हुए कि घर बैठे ही द्वारकानाथ महाराज के दर्शन पाते, शंख चक्र का छाप उनके शरीर पर प्रकट हुआ और कृष्णदास की कृपा से सब धर्म और उपासना के ज्ञात हो गये। यह भीष्मपितामह के सदृश निष्पाप, युधिष्ठिर के समान भजन करने वाले थे। यह श्रीकृष्णदास जी के शिष्य किस प्रकार हुये, इस बात का श्रीकृष्णदास जी की कथा में वर्णन है, एक बार पृथ्वीराज ने कृष्णदास जी के साथ द्वारका जाने का

विचार किया। जब सब सामग्री तैयार हो गई तब राज मंत्रियों ने कृष्णदास जी से विनय की कि इस देश में भक्ति का प्रचार बढ़ता जाता है राजा के चले जाने से भक्ति की चलती हुई गाड़ी में रोड़ा लग जायगा। यह सुनकर कृष्णदास जी ने राजा को राज्य में ही रहने की आज्ञा दी। राजा उदास होकर कहने लगा कि एक तो आपके चरण कमलों का संग, दूसरे द्वारकानाथ का दर्शन, तीसरे गोमती का स्नान और भगवत् शस्त्रों के चिन्ह प्राप्त होने का लाभ था, इन सब लाभों से विमुख रहा जाता हूँ, इस लिए आप से साथ ले चलने के लिए विनय करता हूँ। कृष्णदास जी ने कहा कि शीघ्र मत कर, यह सब लाभ तुझे यहां ही प्राप्त हो जायेंगे। इतना कह कर कृष्णदास जी द्वारका चले गये। राजा उनके वियोग से फाट २ कर रोने लगा। उसके नेत्रों में से श्रावण भादवा की सी वर्षा का झड़ लग गया। तीन दिन तक रोते २ बीत गये। आधी रात को कृष्णदास जी का शब्द सुनाई दिया। राजा दौड़ कर गया तो क्या देखता है कि द्वारकानाथ स्वयं खड़े हुये हैं। राजा ने प्रेम में मग्न होकर दंडवत् और पारव्रमा की फिर आज्ञा पाकर गोमती में स्नान किया। शरीर पर शंख चक्र के चिन्ह अंकित हो गये। रानी भी राजा की आज्ञा से गोमती में स्नान करके कृतार्थ हो गई। सवेरे ही यह वृत्तांत सारे संसार और देश २ में फैल गया नगर के लोग और जहां तहां के सन्त महन्त दर्शन के लिए आये नाना प्रकार की भेट लाये और सब को गुरु भक्ति तथा भगवत् भाव का विश्वास दृढ़ हुआ। पश्चात् राजा ने एक

द्वार बनवाया और
 पंद्रह दिन रात सेवा
 पूत दिनों तक सुवा
 र पड़ा रहा, एक
 धीराज का अंगो
 गृहण राजा के पा
 भीछा मांगा। रा
 से बुधा कर ब्राह्म
 गृहण सूआंखा हे
 ऐसा प्रताप है कि
 भगवत् में पूर्ण
 उनके लिए कुछ
 राजा
 आय
 शंख
 राज
 हु
 भ
 तत्व
 नाम देश क
 भगवद्भक्ति

मन्दिर बनवाया और उसमें द्वारकाधीश की मूर्ति विराजमान करके दिन रात सेवा पूजा में रहने लगा एक अन्धा ब्राह्मण बहुत दिनों तक सुवांखा हो जाने के लिये वैजनाथ जी के द्वार पर पड़ा रहा, एकदिन वैजनाथ जी ने दया करके कहा कि पृथ्वीराज का अंगोछा आँखों पर मल दे, आँखें खुल जायगी। ब्राह्मण राजा के पास आया और सब वृत्तांत कह कर राजा का अंगोछा मांगा। राजाने एक नवीन अंगोछा लेकर अपने शरीर से छुवा कर ब्राह्मण को दे दिया। तुरंत ही आँखें खुल गई और ब्राह्मण सुआंखा होगया। सच है, भगवद्भक्ति और गुरु निष्ठा का ऐसा प्रताप है कि असम्भव भी सम्भव हो जाता है। जिसको भगवत् में पूर्ण प्रेम है और जिनकी गुरु में पूर्ण आस्था है, उनके लिए कुछ भी दुर्लभ्य नहीं है सब कुछ सुलभ्य है।

राजा पृथ्वीराज, प्रेम गुरु चरणन कीन्हा।

आय द्वारकानाथ दर्श घर पर ही दीन्हा ॥

शंख चक्र हरि चिन्ह, छाप घर बैठे पाये।

राजा रानी साथ, गोमती शुचि जल न्हाये ॥

हुआ अन्ध भी सूझता, भूप अंगोछा आँख मल।

भोला निर्वल निपट ही, पाया अद्भुत भक्ति बल ॥

कथा तत्वा जीवा की

तत्वा जीवा दो भाई थे। यह दोनों भाई कमल रूप पद्मनाभ देश को प्रफुल्लित करने के लिये सूर्य सदृश हुए। अथवा भगवद्भक्ति रूप सुधासिन्धु के ये दोनों भाई तट थे। इनके

प्रभाव से लाखों स्त्री पुरुष को भगवद्भक्ति प्राप्त हुई। गधुकुल वालों के समान ये दोनों सत्यपरायण थे। इन्होंने अपने द्वार पर एक सूखी लकड़ी गाड़ रखी थी और इनका यह प्रण था कि जिस के चरणामृत से यह लकड़ी हरी होजायगी उसको गुरु करेंगे। कबीर जी के चरणामृत से वह हरी होगई, यह दोनों कबीर जी के चेले होगए। चलते समय कबीर जी कह गये कि जब तुम पर कोई आपत्ति पड़े तब तुम मेरा स्मरण करना। उनके जाने के बाद जुलाहे के चेले होने के कारण इन दोनों ब्राह्मणों को इनके सजातियों ने जाति से बाहर कर दिया और इनकी लड़की का विवाह लेना अंगीकार न किया, दोनों भाई बड़ी चिंता में पड़े और उन्होंने यह सन्देशा अपने गुरु को कहला भेजा। कबीर जी ने उत्तर भेज दिया कि यह लोग भगवत् से विमुख हैं, तुम्हारे सम्बन्ध के योग्य नहीं हैं, इस लिये तुम दोनों भाई अपनी लड़कियों का आपस में सम्बन्ध कर लो। गुरु जी की आज्ञानुसार दोनों भाई ऐसा ही करने को तैयार होगये। यह सुन कर जाति वाले घबराये और सब ने एकत्र होकर दोनों भाइयों से कहा कि ऐसा करना उचित नहीं है। इन्होंने उत्तर दिया कि हमको गुरु आज्ञा के सिवाय और कुछ करना स्वीकार नहीं है दोनों भाइयों को अपने निश्चय में दृढ़ देखकर सब लोग ऐसा न करने की विनय करने लगे। दोनों भाई कबीर जी के पास गये और सब वृत्तांत सुनाया इन्होंने कहा कि यदि वे लोग भगवद्भक्ति स्वीकार करें तो उनकी बात मानलो! सब ने भगवद्भक्ति स्वीकार करली और

जिस में नातेदारी हो
सब कृतार्थ हुए

तत्वा जीवा

गुरु परस्वन

पा कबीर

गुरु जुलाहा

हारि गये द्वि

भोला ! जब

खोजी परम

अपने स्थान पर एक

प्रमत्ता दिया था कि

पण्डा बजेगा, जब

बड़ी चिंता हुई

तो सब वृत्तांत सु

ले कर खोजी ने

भय लगा रहा है

तो एक कृमि उस

पया और घण्टा

कि गुरुजी परम

यह उपदेश दि

होगा। भगवान

आपस में नातेदारी होने लगी। भक्ति के प्रताप से भगवत् शरण होकर सब कृतार्थ हुए।

तत्त्वा जीवा भ्रात, सत्य पथ चालन हारे।

गुरु परखन के हेतु, ठूठ था गाडा द्वारे ॥

पा कवीर पद तोय, ठूठने कुल्ला दीन्हे।

॥ गुरु जुलाहा जान, विप्र सुत गिल्ला कीन्हे ॥

हारि गये द्विज भन्त में, नातेदारी कीन्हे सब।

भोला ! जब हो गुरु कृपा, हारें क्यों नहिं शत्रु तब ॥

कथा खोजी की।

खोजी परम भगवद्भक्त और गुरुनिष्ठ थे। उनके गुरु ने अपने स्थान पर एक घण्टा लटका रक्खा था और चेलों को समझा दिया था कि हम जब परम धाम को जायेंगे तब यह घण्टा बजेगा, जब गुरु ने देह त्यागा तो घण्टा न बजा। चेलों को बड़ी चिंता हुई। खोजी उस समय वहाँ थे नहीं। जब आये तो सब वृत्तांत सुना। जहाँ गुरु ने देह त्याग किया था, वहाँ लेट कर खोजी ने देखा कि सामने आम्ब के वृक्ष पर एक पक्का भम्ब लगा रहा है। खोजी ने उस आम्ब को तोड़ कर देखा जो एक कृमि उसमें रेंगता हुआ मिला। उसी क्षण वह कृमि मर गया और घण्टा टनन २ बजने लगा। सब को निश्चय हो गया कि गुरुजी परम धाम को गये। ऐसा करने से गुरु ने चेलों को यह उपदेश दिया कि अन्तकाल में जहाँ मन जायगा, वहीं जन्म होगा। भगवान् ने भी गीता में यही कहा है।

सोजी शानी भक्त, योगवित् परम सयान ।
 गुरु गये परमधाम, शिष्य शंकायुत जाने ॥
 कीन्हा गुरु पद ध्यान, आम्ब का फल तुड़वाये ।
 मरा कीट गुरु शीघ्र, विष्णु परमधाम सिधाये ॥
 शिष्य भये सब मग्न मन, घंटा बाला टनन टन ।
 भोला ! शिक्षा दीन्ह गुरु, रखो न इच्छा लेश मन ॥

कथा गुरुनिष्ठ की

एक गुरु निष्ठ भगवद्भक्त ऐसे हुए कि गुरु के सिवाय दूसरे साधु सन्त की सेवा करना ही नहीं जानते थे । गुरु की इच्छा यह थी कि साधु सन्तों की भी सेवा किया करे तो अच्छी बात है, परन्तु इस बात की परीक्षा किये बिना आज्ञा करें या न करें, यह विचार कर चुप हो गए । जब शिष्य तीर्थ यात्रा को जाने लगा तो गुरु ने कहा कि जब तू लौट कर आवेगा, तब मैं तुझे शिक्षा दूंगा । जब शिष्य लौटने को था, तो उसके आने से एक दिन पहिले गुरुजी ने प्राण छोड़ दिये, लोग जलाने को ले चले, इतने ही में गुरु निष्ठ आगया, रोता हुवा दौड़ा और शव को रोक कर कहने लगा कि मेरे गुरु की आज्ञा है कि जब तू तीर्थ से लौट कर आवेगा, तब एक शिक्षा दूंगा । गुरु का यह वचन मिथ्या नहीं हो सकता । इसलिए तुम लोग उनको आसन पर लौटा ले चलो ! लोगों ने बहुत कुछ कहा परन्तु न माना और गुरुके शरीर को फिर लाकर सिंहासन पर पधराया और विन्य करने लगा कि अपने वचन

पालन कीजिये, मेरी
 प्राप्त देखकर अति प्र
 काने के लिये शिक्षा
 धाम को जा रहे
 इस वचन और
 जीते रहे ।

भक्त एक गुरु
 अन्य सन्त की
 त्यागे गुरु जी
 लोन्हा शम
 एक वर्ष ग
 भोला ! चेला

क

घाटम जाति
 देने वाले गुरु भक्ति
 को प्राप्त हुये और
 में कुछ विवेक, आ
 भगवत् मंत्र मांग
 घाटम ने कहा कि
 हरिभक्त ने कहा
 साधु सेवा, भग
 और सुनते ही

को पालन कीजिये, मेरी आशा लग रही है। गुरुजी उसका विश्वास देखकर अति प्रसन्न हो जी कर उठ बैठे और साधु सेवा करने के लिये शिक्षा की। गुरुनिष्ठ कहने लगा कि आप तो परम धाम को जा रहे हैं, मेरी साधु सेवा कौन देखेगा। गुरु इस वचन और चतुराई से अधिक प्रसन्न हो एक वर्ष और जीते रहे।

भक्त एक गुरु निष्ठ, मात्र गुरु सेवा कीन्ही।

अन्य सन्त की सेव, भूल मन वृत्ति न दीन्ही ॥

त्यागे गुरु जी प्राण, शिष्य हट करि लौटाये।

लीन्हा शम्भ उपदेश, सन्त सेवा दिखलाये ॥

एक वर्ष गुरु जी जिये, परमधाम पीछे गये।

भोला ! चेला धन्य सो, जिसने गुरुनिज वश किये ॥

कथा घाटम जी की।

घाटम जाति के मीना राज्य जयपुर में गाँव घोड़ी के रहने वाले गुरु भक्ति और गुरु वचन के निश्चय से उत्तम पद को प्राप्त हुये और कृतार्थ हुये। ठगी का व्यापार करते थे, मन में कुछ विवेक, आया, तो एक हरि भक्त के पास गये और भगवत् मंत्र मांगा उसने शिक्षा की कि चोरी ठगी छोड़ दे घाटम ने कहा कि मेरी जीविका यह ही है, कैसे छोड़ सकता हूँ हरिभक्त ने कहा कि अच्छा यह न सही, तो सत्य बोलना, साधु सेवा, भगवत् के अर्पण किये बिना कोई वस्तु न खाना और सुनते ही भगवत् आरती में जा मिलना, ये चार बातें

अंगीकार कर घाटम ने चारों बातें मान ली और हरिभक्त ने भगवत्मंत्र का उपदेश देकर इनको शिष्य कर लिया। घाटम चारों बातों का अभ्यास करने लगे। एक दिन घर में कुछ न था, साधु आगये घाटम किसी के खलियान में से गेहूं चुग लाये और साधुओं की सेवा करने लगे परन्तु मन में यह डर लगा रहा कहीं पता लगा कर गेहूं वाला आकर पकड़ न ले। ऐसा हुवा तो साधुओं की सेवा में विघ्न पड़ जायगा दैवयोग से आँधी सहित ऐसा रानी बरसा कि पाँव के खोज मिट गये और घाटम ने सुन्नित होकर साधु सेवा की।

एक दिन गुरु ने घाटम को भगवत् उत्सव पर बुलाया चिन्ता में पड़े कि पास तो कुछ है नहीं उत्सव में खाली हाथों जाना ठीक नहीं है राजा के यहां चोरी करने गये महल में घुसने लगे डोहोड़ी वालों ने पूछा कौन है उत्तर दिया चोर है वे लोग उत्तम पहिराव देख कर और निशंक उत्तर सुनकर समझे कि चोर नहीं है राजा का ही आदमी है इसलिये कुछ न बोले घाटम ने अश्वशाला में जा कर एक उत्तम मुश्की रंग का घोड़ा खोज कर उस पर सवार होकर चल दिया। जब द्वारपालों ने रोका तो उसी प्रकार सच २ कह कर चले आये और गुरु के स्थान की ओर चल दिये संध्या के समय एक नगर में ठाकुर द्वारे में आरती हो रही थी वहां गये और भजन करने लगे राजा के यहाँ घोड़े की हूँद पड़ी। कोतवाल सिपाहियों सहित घोड़े के पाँव के खोजों से पता लगाता हुवा जहां घाटम भजन कर रहे थे उसी मन्दिर के द्वार पर पहुंचा। भक्तवत्सल महाराज को

चिन्ता हुई कि यह
को दुःख देगा इस
दिया। इतने में घ
चलने लगा तो व
सब वृत्तान्त घाट
परन्तु रंग दूसरा
वह चोर मैं ही हूँ
का रंग बदल ग
चलता हूँ। यह क
सुन कर चरणों
घाटम ने कहा कि
चाहिये राजाने
घाटम जी ने वह
है भगवद्भक्ति क
कहा है 'कि ज
निस्संदेह साधु
तात्पर्य को ज
जायगे और घा
भक्त का नाश

मीन

गुरु

राज

भग

चिन्ता हुई कि यह कोतवाल घोड़े को पहिचान कर मेरे भक्त को दुःख देगा इसलिये भगवान् ने घोड़े को नुकरा रंग का कर दिया। इतने में घाटम आगया और घोड़े पर सवार हो कर चलने लगा तो कोतवाल सोच में भरा हुआ लज्जित होकर सब वृत्तान्त घाटम को सुनाकर कहने लगा कि घोड़ा वाही है परन्तु रंग दूसरा है राजा हमको दण्ड देगा। घाटम बोला कि वह चोर मैं ही हूँ, यह घोड़ा भी वही है, भगवत् इच्छा से इस का रंग बदल गया है। तुम चिन्ता मत करो, मैं राजा के पास चलता हूँ। यह कह कर राजा के पास आये। राजा सब वृत्तान्त सुन कर चरणों पर पड़ा और बहुत से रुपये मोहरें देने लगा। घाटम ने कहा कि एक मात्र घोड़े से प्रयोजन है और कुछ नहीं चाहिये राजाने कुछ धन सहित घोड़ा घाटमजी के भेट किया। घाटम जी ने वह सब लेजा कर गुरुजी के भेट कर दिया। सच है भगवद्भक्ति का ऐसा ही पूताप है भगवान् ने स्वयं गीता में कहा है 'कि जो दुर्गाचारी भी मेरा भजन करता है उसको निस्संदेह साधु जानना चाहिये क्योंकि अब वह शास्त्रों के तात्पर्य को जान गया है। अब उसके घुरे आचरण भी छुट जायंगे और वह मुझको प्राप्त होगा। अर्जुन ! सच जान मेरे भक्त का नाश कभी भी नहीं होता"।

मीना घाटम भक्त काम चोरी का करते।

गुरु वचनन विश्वास सत्य बोलत नहीं डरते ॥

राजमहल में जाय अश्व इक चोरी किन्हा।

भगवत् निज जन हेतु अश्व नुकरा करि दीन्हा ॥

राजा सुनि वृत्तान्त सब, अश्व दिया अरु द्रव्य भी ।

भोला ! करि विश्वास हरी, भक्त हेतु करते सभी ॥

कथा नरवाहन की

नरवाहनजी राधावल्लभ नौगांव के रहने वाले हित हरिवंश जी के चेले भगवद्भक्त साधु सेवी परम गुरुनिष्ठ थे । एक बार इन्होंने एक साहूकार की नाव लूटली और धन लेने के लिये उसे बन्धन में डाल दिया । नरवाहन जी की स्त्री बड़ी दयावन्त थी उस वणिक को भोजन पहुंचाया करती थी एक दिन उसने साहूकार को यह उपाय बताया कि आधीरात के समय "राधावल्लभ हित हरीवंश" राधावल्लभ हित हरिवंश" इसे जोर से पुकार २ कर कहना कि तेरा शब्द नरवाहन जी के कान तक पहुंच जाय जब वे आकर पूछें तो कहना कि हित हरिवंश का चेला हूं साहूकार ने ऐसा ही किया नरवाहन जी राधावल्लभ और हित हरिवंश जी का नाम सुनकर बेसुधि हुये झूड़े और साहूकार को दण्डवत् करके वृत्तान्त पूछा, साहूकार ने कहा कि हित हरीवंश जी का चेला हूं और राधावल्लभजी का निजी मोल लिया चेरा हूं । नरवाहन जी ने बहुत ही लज्जित और ग्लानियुक्त होकर उसका सब धन फेर दिया, अपने अपराध को क्षमा कराया और चरणों में पड़ कर विनय करने लगे कि तुम मेरे बड़े भाई हों मुझ को अपना दास जान कर इतनी मेरी रक्षा करो कि यह वृत्तान्त स्वामी जी के कानों तक न पहुंचे । नरवाहन जी की यह दशा देख कर साहूकार उसी

ही भगवत् शरण हु
का चेला होकर भग
का निश्चय देख क

मंसाराम-वाह
सा सुनाई कि चोरी
सुनाई कि ठग थे
नहीं समझते ।

मस्तराम- भ
समझते हैं और
बराबर कोई संयम
हैं, स्वभाव जल
और २ भगवद्भक्त का
में आस्था बढ़ती
जाता है तो ये कर्म
पापी भी भक्त हो
यह ही बात गीत
स्थिर रह कर प्राणी
गुरु का नाम सुन
दोनों के विश्वा
भगवद्भक्ति में विश्व

नरवाहन
चर द्रव्य

घड़ी भगवत् शरण हुआ और हित हरिदंश जी के पास आकर उनका चेला होकर भगवद्भक्त हो गया। गोसांई जी भी नरवाहन जी का निश्चय देख कर बहुत प्रसन्न हुये।

मंसाराम—वाह महाराज! एक तो आप ने घाटम की कथा सुनाई कि चोरी किया करता था और दूसरी नरवाहन जी की सुनाई कि ठग थे। क्या भगवद्भक्त चोरी और ठगी को पाप नहीं समझते।

मस्तराम—भाई भगवद्भक्त चोरी ठगी को अवश्य पाप कर्म समझते हैं और ऐसे कर्मों के निकट नहीं जाते। भगवद्भक्तों के बराबर कोई संयमी नहीं होता ये चरित्र उनके आरंभ काल के हैं, स्वभाव जल्दी नहीं बदलता, धीरे २ बदलता है जब धीरे २ भगवद्भक्त का अन्तःकरण शुद्ध होता जाता है और भगवत् में आस्था बढ़ती जाती है, जब अन्तःकरण विशेष शुद्ध हो जाता है तो ये कर्म भी आप से आप छुट जाते हैं। भाव यह है कि पापी भी भक्त होकर धीरे २ धर्मात्मा हो जाता है। भगवान् ने यह ही बात गीता में कहा है। घाटम ने गुरु के वचन पर स्थिर रह कर प्राणों का भी लोभ न किया और नरवाहन जी ने गुरु का नाम सुन कर तीन लाख तीस हजार का धन दे दिया। इन दोनों के विश्वास को देखना चाहिये। सारांश यह है की भगवद्भक्ति में विश्वास होना सब सुकर्मों में शिरामणा है।

नरवाहन हरि भक्तवर, गुरु सेवी निष्काम ।

मन्त्र द्रव्य सद दे दिवा, सुनि भगवत् गुरु नाम ॥

सुनि भगवत् गुरु नाम, क्षमा मांगी हरि जन से ।
 कीन्हा प्रेम अपार, काय वाणी अरु मन से ॥
 श्री गुरु हुय प्रज्जन, धन्य कहने सब सज्जन ।
 भोला हो गुरु निष्ठ, सीख देते नरबाहन ॥

कथा गजपति की

गजपति पुर्योत्तमपुरी के राजा भगवद्भक्त थे। इन को गोसांई श्रीकृष्ण चैतन्य अपने गुरु में इतना दृढ़ प्रेम और विश्वास था कि जब गुरु के दर्शन कर लेते थे तब राज काज किया करते थे। एक दिन गुरु ने इनको दर्शन करने के लिये मने कर दिया। राजा संन्यासी का रूप धारण करके दर्शन के हेतु इधर उधर घूमने लगा परन्तु दर्शन न हुआ। एक दिन रथ यात्रा के समय देखा गोसांई जी रथ के आगे नृत्य कर रहे हैं, राजा दौड़ कर चरणों में गिर पड़ा, गोसांई जी ने राजा का प्रेम और विश्वास देख कर उसे छाती से लगा लिया और प्रेम आनन्द में मगन कर दिया।

गजपति जगपति भक्त, चरण गुरु वर शिर धरते ।
 करते पहले दर्श, बाज पीछे सब करते ॥
 मने किया गुरुदेव, दर्श कुछ दिन नहि दीन्हा ।
 राजा दर्शन हेतु, बेप संन्यासी कीन्हा ॥
 नृत्य करत गुरु देव जी, रथ के आगे देख कर ।
 चरणन में जा गिर पड़े, लीन्हे गुरु लगाय उर ॥

कथा

स्वामी चतु

लूज के आनन्द में

हते थे। मथुरा और

सुख को लूटते

मुरा न होगा। जब

रा जान कर सेवा प

स यौवना और रूप

तत्पर कर दिया था

म में ऐसे दृढ़ थे कि

सब सामग्री, धन औ

राजा लेकर ब्रज मंड

पती के दर्शन किया

चिते ओर राज भोग

हुड पर होते हुये वृन्

सोवर पर विना अन्

नंदगांध में आने

नी पर है। इसलिये

हाराज अपने मेहमा

के लड़के का रूप

स को दिया, चतुर

ल मांगा। जब बहु

या तब बहुत बे

कथा चतुरदास जी की

स्वामी चतुरदास परम भक्त और वैराग्यवान् थे। भगवद्भजन के आनन्द में मग्न रहकर सदा भगवत् के रंग में रंगे रहते थे। मथुरा और ब्रजमंडल में विचरते हुये जहां तहां सत्संग के सुख को लूटते रहते थे। भक्ति में ऐसे थे कि इनके समान दूसरा न होगा। जब इनके गुरु इनके घर पर आते तो भगवत् रूप जान कर सेवा पूजा किया करते थे। स्वामी जी की स्त्री नव यौवना और रूपवती थी। उस को इन्होंने गुरु की सेवा में तत्पर कर दिया था कि जो आज्ञा दें सो करना। आप अपने धर्म में ऐसे दृढ़ थे कि कभी विश्वास में तनिक भेद न आया। सब सामग्री, धन और स्त्री गुरु की भेंट करके दण्डवत् करके आज्ञा लेकर ब्रज मंडल में आये। प्रभात की आरती करके गोविन्दजी के दर्शन किया करते थे। शृंगार आरती केशवदेव जी की देखते और राज भोग नन्दगांव देखकर गोवर्द्धन जी में राधाकुंड पर होते हुये वृन्दावन में आते। एकवार नन्दगांव में मानसरोवर पर बिना अन्न जल रहे। नन्दगांव के स्वामी नंद बाबा हैं। नन्दगांव में आने वाले पथिकों का सत्कार करने का भार उन्हीं पर है। इसलिये नन्दजी के कुमार सुकुमार भक्तवत्सल महाराज अपने मेहमान को बिना अन्न जल न देख सके, बारह वर्ष के लड़के का रूप धारण करके दूध का कटोरा स्वामी चतुरदास को दिया, चतुरदास ने उस रू को फिर देखने के लिये जल मांगा। जब बहुत देर तक निडर चंचल लड़का पानी न लाया तब बहुत बेचैन और व्याकुल हुये भगवत् ने स्वप्न में

आज्ञा की, कि जलका कुछ प्रयोजन नहीं है, तुमको सब व्रज वासियों से दूध मिलता रहे। स्वामी जी ने चिन्ता की, की दूध व्रजवासियों को बहुत प्यारा है। दूध के हेतु तो उन्होंने आप को यशोदाजी की रस्सी में बंधवा दिया था, फिर वे दूध किस प्रकार देंगे। भगवत् ने कहा कि निश्चय कर अवश्य मिलेगा। पश्चात् स्वामी चतुरदास जी को सब व्रजवासी दूध देने लगे और अब तक स्वामी जी के चेले चाहे जहां व्रज में दूध लेते हैं। सत्य है, गुरु सेवा से कौन पदार्थ नहीं मिल सकता सब मिलता है।

चतुरदास गुरु निष्ठ, भक्त हरिपद अनुरागी ।

केवल हरिपद नेह सर्व त्यागी बड़ भारी ॥

धन जन गुरु पद अर्पि, घूमत व्रज मंडल में।

नन्दगांव गिरिराज, तथा वृन्दा जंगल में ॥

दर्श दिये नंदलाल जी, दूध पिलाया आयके।

भोला क्यों भजता नहीं नंदलाल मन लायके ॥

कथा राघवदास जी की

राघवदास जी भगवत् के परम भक्त थे। अपनी रचना में भोग दुबारिया रखते थे, इसलिये लोग इन को दुबला कहा करते थे परन्तु भक्ति भाव में मोटे और महान् थे। शास्त्रोक्त भगवत् धर्म की साधना अच्छे प्रकार से करते थे और गुरु शिष्य के धर्म को तो इन्होंने ऐसा निभाया कि किसी से न हो सके। अर्थात् वायु पुराण में लिखा है कि जो मन्त्र है, वह गुरु

जो गुरु है, वह ही भ
 भगवत् आप से आप
 अनुसार राघवदास
 कि गुरु और भगवत्
 जो अपना शिष्य किया,
 में मिला दिया अ
 गुरु को कोई इनके
 आप भगवत् चरित्र की
 कभी मुख से नहीं
 मित हीराका वृष्टान्त
 अहरन पर रखकर
 पुत्र जाता है। जब
 सत है, तो अहरन में
 दास जी के हृदय को
 पान नहीं कर सक
 आ मिलते थे कि जिस
 को देख कर आ मिल
 मोटे भ
 ज्ञानी रा
 निष्कि
 दोनों
 भोला
 दु

है और जो गुरु है, वह ही भगवत् है। जब गुरु प्रसन्न होंगे, तो भगवत् आप से आप प्रसन्न और वशीभूत हो जायेंगे। इसके अनुसार राघवदास जी ने अपने गुरु की ऐसी सेवा की कि गुरु और भगवत् दोनों को संतुष्ट किया और जिसको अपना शिष्य किया, उसको आवागमन से छुटा कर भगवत् में मिला दिया और अन्तर बाहर ऐसे विमल थे कि कलियुग को कोई इनके समीप तक न आई दिन रात सिवाय भगवत् चरित्र कीतन के दूसरा कार्य न था। कठोर वचन कभी मुख से नहीं निकालते थे। नाभा जी ने इन के निमित्त हीराका दृष्टान्त दिया है। अभिप्राय यह है कि जैसे हीरा अहरन पर रखकर चोट मारने से नहीं टूटता किन्तु उस में घुस जाता है। जब दूसरा सजातीय हीरा उस के संमुख करते हैं, तो अहरन में से निकल आता है। इसी प्रकार राघवदास जी के हृदय को संसार की सर्दों, गर्मों, दुःख, सुख चलायमान नहीं कर सकत थे और सत्संग को देख कर वे इस प्रकार आर्मिलते थे कि जिस प्रकार सजातीय हीरा अपने सजातीय को देख कर आ मिलता है।

मोटे भगवद्भक्ति में, धरा दुबरिया नाम ।
जानी राघव दास जी, निष्किंचन निष्काम ॥
निष्किंचन निष्काम, एक हरि गुरु नहिं दूजे ।
दोनों मानें पूज्य एक, साथ ही दोनों पूजे ॥
भोला ! भगवत् सार अन्य सब ही हैं खोटे ।
दुर्बल जग के भक्त, भक्त भगवत् कं मोटे ॥

वेषवर्णन निष्ठा ।

सर्वपूज्यं सदापूर्णं निर्मलं परमामृतम् !

अनन्तं जगदाधारं वन्देऽहं परमेश्वरम् ॥

मंसाराम-महाराज ! आपने गुरुनिष्ठा और गुरुनिष्ठा संबंधी भक्तों की कथाएँ सुनाई थीं, आज कृपा करके वेप के सम्बन्ध में वर्णन कीजिये और वेप सम्बन्धी भक्तों की कथाएँ भी सुनाइये ! आपके वचनमृत सुनने से तृप्ति नहीं होती ज्यों २ सुनता हूँ, उत्साह बढ़ता जाता है और अधिक श्रवण करने को जी चाहता है ।

मस्तराम-भाई ! भगवत् और भगवद्भक्तों की कथा सुनने से जो उपराम को प्राप्त हो जाय, वह भगवत् चरित्रों का रस जानता ही नहीं है, भला ! भक्तों के चरित्र सुनने को किसका उत्साह नहीं होता ? सबको होता है ! जिन मूढ़ पुरुषों की भगवान् में प्रीति नहीं है किन्तु विषय भोगों में ही जो रति मानते हैं, वे भले ही भक्तों के चरित्रों में प्रीति न करें, भगवद्भक्त तो भक्त चरित्रों को समाधि त्याग कर भी सुनते हैं ।

देख, भगवत् की प्राप्ति के अर्थ दो प्रकार के वेप हैं, एक आन्तरीय और दूसरा बाह्य ।

आन्तरीय वेप-(१) अन्तर का विचार यानी सार असार का समझना, (२) वैराग्य यानी ब्रह्मलोक पर्यन्त के सुख का त्याग (३) शम यानी मन का निग्रह (४) दम यानी

प्राप्त नियम के अवलम्ब

(५) उपरति यानी

देना (६) तितिक्षा

(७) श्रद्धा यानी गु

(८) समाधान यानी

बाह्यवेप (

है। बाह्य वेप पांच

(१) ऊ

वक्त भगवच्छ्रवण

(४) मन्त्र (५)

है। ये पांचों संस्

हैं क्योंकि पद्म पु

वेद की भी आ

उनका नाम वह

विरक्तों का वह

गुरु कृपा कर

हे मंस

बात यह है वि

है और भगव

में कहा है कि

कमल के फूल

चिन्ह जिनके

ऐसे वैष्णव

यम नियम के अवलम्बन से इन्द्रियों को अपने वश में रखना
(५) उपरति यानी मन को फिर उन स्वादों की ओर न जाने
देना (६) तितिक्षा यानी सुख दुःख, शीतोष्णता सहन करना,
(७) श्रद्धा यानी गुरु शास्त्र में विश्वास और भगवत् में आस्था,
(८) समाधान यानी भगवत् के ध्यान की समाधि ।

बाह्यवेध (२) जो देखने में आवे उसको बाह्य वेध कहते
हैं । बाह्य वेध पांच प्रकार का है ।

(१) ऊर्ध्व पुण्ड्र अर्थात् तिलक (२) मुद्रा यानी शंख
चक्र भगवच्छब्दों के चिन्ह शरीर पर लगाना (३) माला
(४) मन्त्र (५) नाम । कोई नाम के स्थान पर विचार कहते
हैं । ये पांचों संस्कार गृहस्थ और त्यागी दोनों को ही उचित
हैं क्योंकि पञ्च पुराणादि स्मृतियों में ऐसा ही विधान है और
वेद की भी आज्ञा है । भेद इतना है कि जो गृहस्थ होते हैं,
उनका नाम वह ही रहता है, जो घर में रक्खा गया है और
विरक्तों का वह नाम विख्यात होता है, जो संस्कार के समय
गुरु कृपा कर के देते हैं ।

हे मंसाराम ! वेध का माहात्म्य और बड़ाई क्या बताऊँ
बात यह है कि भगवत् की प्राप्ति के लिये वेध ही मुख्य उपाय
है और भगवद्भक्ति का यह ही एक अवलम्बन है । पञ्च पुराण
में कहा है कि जिनके गले में तुलसी की माला पड़ी हुई है, जो
कमल के फूलों की माला धारण किये हुये हैं, भगवच्छब्दों का
चिन्ह जिनकी भुजाओं पर है । जिनके मस्तक पर तिलक है,
ऐसे वैष्णव शीघ्र ही संसार को पवित्र कर देते हैं । आगमसार-

५ ।
रम ॥
पडा और गुरुनिष्ठा
आज्ञा कृपा करके
सम्बन्धी भक्तों की
सुनने से तृप्ति नहीं
जाता है और अधिक
भगवद्भक्तों की कथा सुनने
वह भगवत् चरित्रों का रस
के चरित्र सुनने को किसका
है ! जिन मूढ़ पुरुषों की भक्त
पथ भोगों में ही जो रति माली
में प्रीति न करें, भगवद्भक्तों
राग कर भी सुनते हैं ।
प्रति के अर्थ दो प्रकार के वेध हैं, एक
है ।
(१) अन्तर का विचार पालन
(२) वैराग्य यानी ब्रह्मलोक प्राप्ति
यानी मन का निग्रह (४) सुख

तंत्र का वचन है कि जो केवल मालाधारी वैष्णव हैं, वह ब्रह्मा आदि देवताओं से भी पूजने योग्य हैं, मनुष्य की तो बात ही क्या है। मंत्र शास्त्र का वचन है कि जिसके गले में माला है, जिसके माथे पर तिलक है और जिसके बदन पर भगवच्छब्दों का चिन्ह है, वह चांडाल हो तो भी पूजनीय है। महाभारत के भीष्मपर्व में लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र जिसने वैष्णव वेप धारण किया है, वह पूज्य है, दण्डवत् काने योग्य है और वही कर्मों में युक्त है। यदि शूद्र भी होता है तो भी ऐसा है कि ब्राह्मणों की धरती पर मिलना कठिन है। पद्मोत्तर खण्ड में कहा है कि हे नारद ! वार्णाश्रमों के काम्य, नित्य, नैमित्तिक जितने कर्म हैं, वे स्नान करने के बाद तिलक किये बिना सिद्ध नहीं होते ऐसे सैंकड़ों, हजारों श्लोक हैं और क्यों न हों ? होने ही चाहियें क्योंकि वेप बिना कोई मार्ग इच्छा के निमित्त देखने में नहीं आता। वैष्णव, शैव, स्मार्त, शाक्ति आदि जितने संप्रदाय हैं, सब में इन संस्कारों की प्रथा है। ब्रह्मा से आदि लेकर जितने ऋषीश्वर और भक्त हुये हैं, सबको पहिले संस्कार और गुरु मंत्र का उपदेश हुआ है। बिना मंत्रादि न आज तक किसी का उद्धार हुआ, न होगा, शास्त्र की आज्ञा प्रसिद्ध है कि ब्राह्मण बालक का संस्कार आठ वर्ष की अवस्था में, क्षत्रिय का ग्यारह वर्ष की अवस्था में, और वैश्य का सोलह वर्ष की अवस्था में न हो जाय, तो वह अपने वर्ण से पतित हो जाता है। संस्कारों का होना सब प्रकार से सिद्धांत और मुख्य कर्तव्य है।

मंसाराम-म

मन वेप संवार

मस्तराम-म

क्योंकि शास्त्र की

चाहिये किंतु का

विचार कर दे

में ऊपर के वेप त

होता हुआ ! जब स

यम, जप, तप आ

है सिवाय इसके

कर देना है। यह

देह अन्तःकरण

तुलसी और भ

माहात्म्य तृ सुन

तीर्थों का स्वभा

पवित्र करने वा

कहलाता है। ठ

धान नहीं होती

शिव का नादिर

कालू

यह है कि बह

मंसाराम-महाराज ! ऊपर के वेप बनाने से क्या लाभ है ? मन वेप संवारना ही मुख्य है !

मस्तराम-भाई ! प्रथम तो यह प्रश्न करना ही युक्त नहीं है क्योंकि शास्त्र की आज्ञा में वाद करने का साहस ही करना न चाहिये किंतु कान दबा कर शास्त्राज्ञा का पालन करना उचित है। विचार कर देखा जाय तो क्या जन्म के दिन से ही संसार में ऊपर के वेप तथा भजन विना अन्तःकरण शुद्ध हुआ है ? नहीं हुआ ! जब सैंकड़ों जन्मों तक ऊपर के भजन व्रत, नियम, यम, जप, तप आदि किये जाते हैं तब अन्तःकरण शुद्ध होता है सिवाय इसके प्रसिद्ध है कि पारस पाषाण लोहे को सुवर्ण कर देना है। यह वेप भी पारस पत्थर के समान है कि निस्सन्देह अन्तःकरण के अवगुणों को दूर कर देता है। सिवाय इसके तुलसी और भगवत् के चिन्हों का सत्संग है। सत्संग का माहात्म्य तू सुन ही चुका है। सत्संग तीर्थ के समान है। जैसे तीर्थों का स्वभाव पवित्र करना है इसी प्रकार बाह्य वेप भी पवित्र करने वाला है जब तलवार बांधता है, तभी सिपाही कहलाता है। ठाकुर द्वारे और शिवालय को ध्वजा विना पहिचान नहीं होती। बैल के ऊपर त्रिशूल का अंक कर देने से वह शिव का नादिया विख्यात हो जाता है।

कालू कहार की कथा ।

कालू कहार कहारों का गुरु हो चुका है। उसका वृत्तान्त यह है कि वह किसी धर्मात्मा राजा के राज्य में मछलियां पकड़ा

करता था। एक दिन उसने राजा को आने हुये देखा। घबरा कर सोचने लगा कि आज खैर नहीं, यदि राजा ने जाल देखा लिया, तो अवश्य मुझे जेलखाने भेज देगा! ऐसा विचार कर भययुक्त होकर उसने जाल तो तालाब में छोड़ दिया, मिट्टी का तिलक माथे पर लगा लिया, और जाल के दानों की माला लेकर साधु का रूप बना कर बैठ गया। राजा ने इसको साधु जान कर दण्डवत् प्रणाम किया और कुछ मंत्र आगे धर कर चला गया। कालू उसी घड़ी भगवत् शरण हुआ मछलियाँ न पकड़ने की प्रतिज्ञा की और यह दोहा पढ़ने लगा।

दो०—बाना बड़ा दयाल का, तिलक छाप अहमाल।

यम डरपे कालू कहे, भय माने भूपाल ॥

हे मंसाराम! इसलिये उचित है कि सद्गुरु से वेष अवश्य ग्रहण करे! पाँचों संस्कारों का वर्णन इस प्रकार है।

(१) तिलक—अथर्वण वेद में कहा है कि भगवत् चरण के चिन्ह यानी तिलक जीवके कल्याण का हेतु है, जो कोई धारण करता है, वह कल्याण का भागी होता है। जो तिलक खड़ा हो और जिसके मध्य में छिद्र हो, वह तिलक भगवान को प्यारा है, उसका लगाने वाला धर्मात्मा और मुक्त है। पुराणों में तो बहुत प्रमाण मिलते हैं। चारों संप्रदायों में तिलक की कथा है किन्तु तिलकों के स्वरूप में भेद है। श्रीसम्प्रदाय वाले ललाट में दोनों ओर भगवत् चरणों के चिह्न बनाकर दोनों भौहों के बीच सिंहासन लगाते हैं और तिलक के बीच में रोली यानी लाल लकीर ज्योति के आकार की खींचते हैं, इसका नाम श्री है। श्री अधिक करने के दो कारण हैं, प्रथम तो यह भगवत् चरणों

के चिन्ह है। इन चरणों से जन्म करती है। माता के दोनों भौहों के नीचे कटार के फल होते हैं, निम्बार्क संप्रदाय में श्याम अथवा लाल और सिंहासन तिलक विष्णु स्वामी संप्रदाय में लाल कर बीच में श्याम पाटी है। उनके आकार में सिंहासन होता है। निम्बार्क संप्रदाय का तिलक में बारह अंगों पर मन्त्र अलग २ है। तुलसी मूल मृत्तिका, अश्व कुंकुम, तुलसीवस्तुरी हरिद्रा मृत्तिका इन में के जल में

का चिन्ह है। इन चरण कमलों का श्री यानी लक्ष्मी अनुक्षण सेवन करती है। माध्व संप्रदाय में दो महीन लकारें ऊँची लगा कर दोनों भीहों के नीचे सिंहासन लगाते हैं और सिंहासन के नीचे कटार के फल के आकार का एक चिन्ह नाक तक कर देते हैं, निम्बार्क संप्रदाय में दो महीन लकीरों के बीच में एक छोटी श्याम अथवा श्वेत बिन्दी लगाते हैं, उसको कमल कहते हैं और सिंहासन तिलक के समान महीन लकीर का होता है। विष्णु स्वामी संप्रदाय के दो महीन लकीरों के नीचे सिंहासन लगा कर बीच में शून्य छोड़ देते हैं यह व्यास जी की नई परिपाटी है। उनके और निम्बार्क संप्रदाय के तिलक में थोड़ा भेद है। निम्बार्क संप्रदाय में दोनों भीहों के बीच में सिंहासन लगाया जाता है, और व्यास जी के संप्रदाय में नासिका के अग्रभाग में सिंहासन होता है, हित हरिवंश जी की संप्रदाय का तिलक निम्बार्क संप्रदाय के आकार का है और रामानन्द जी की संप्रदाय का तिलक श्रीसंप्रदाय के अनुसार है। चारों संप्रदायों में बारह अंगों पर तिलक लगाने को लिखा है, सब तिलकों के मन्त्र अलग २ हैं? समुद्र कर भाष्य में लिखा है कि गंगामृत, तुलसी मूल मृत्तिका, मलयागिर चन्दन, साधु चरण रज, गोपद मृत्तिका, अश्वत्थ मूल मृत्तिका, गोपी चन्दन, तीर्थ मृत्तिका, कुंकुम, तुलसीकाष्ठ, वैष्णव की लाई हुई मृत्तिका, गोरोचन, कस्तूरी हरिद्रागुरु चन्दन, गंध काष्ठ, महानिम्ब, यमुनातीर मृत्तिका इन में से किसी का तिलक लगाना चाहिये। गुरुपाद के जल में अथवा साधु चरण रजके जल में प्रातःदिन स्नान

करके जो पुरुष सुन्दर तिलक लगाता है, वह वैष्णव है, त्रिनके कण्ठ में तुलसी की माला है, जो द्वादश अंगों पर तिलक लगाते हैं जो अंगों पर शंख चक्र धारण करते हैं और जो कृष्ण की भक्ति में दृढ़ हैं, वे वैष्णव शंख ही भुवनों का पवित्र करते हैं। मृत्तिका उर्ध्व पुण्ड्र लगावे, त्रिपुण्ड्र भस्म लगावे और द्विज चन्दन का तिलक लगावे।

(२) मुद्रा—अथर्वण वेद की आज्ञा है कि जो पुरुष भगवत् के शंख चक्र आयुधों की तप्त मुद्रा दोनों भुजाओं पर धारण करता है, वह विष्णु भगवान् के परम पद को प्राप्त होता है। पद्म पुराण में भी ऐसी ही आज्ञा है। यद्यपि चारों संप्रदाय वाले इस आज्ञा को अंगीकार करते हैं परन्तु श्रीसंप्रदाय में तो दीक्षा के समय ही तप्त मुद्रा धारण करा देते हैं, और तीन संप्रदायों में पुराण के एक श्लोक के प्रमाण से शीतल मुद्रा की रीति है। यद्यपि पूर्व के आचार्यों ने पुराण के प्रमाण से तप्त मुद्रा धारण करने का एक स्थान द्वारिका ही लिखा है परन्तु गृहस्थों में यह चलन नहीं है, विरक्तों में ही है।

(३) माला—तुलसी अथवा कमल के फल की माला विहित है। तुलसी का माहात्म्य पुराणों में विस्तार से लिखा है। सारांश यह है कि तुलसी धारण करने वाले को निश्चय भगवत् का प्राप्ति होती है। और मरण समय तुलसी की माला अथवा तुलसी दल अथवा कण्ठी जिसके शरीर पर होती है, उसको यमराज का भय नहीं होता किंतु सद्गति को प्राप्त होता है। पद्म पुराण में कदम्ब आदि वृक्षों के काण्ठ की माला और

वृन्दावन की वन
देखने में आता है

(४) मं

थोड़ा है क्योंकि

जिस प्रकार अन्ध

देता है। इसी प्र

देखने में आता है

होते हैं। वचन म

वाच्य कहते हैं अ

लक्ष्य कहते हैं, जै

पद्म पीताम्बरधार

सर्वाधार सर्वान्त

वाला बाह्य कहल

मंत्र श्रेष्ठतर मान

माना गया है। इस

पति प्राप्त होनी है

हो जाना है, चेतन

जिस प्रकार शम्भु

प्रकांड हैं, इसी प्र

योग्य साधन के सं

इसी प्रकार योग्य स

होता है प्राणियों

सत्ता है, इसलिये

वृन्दावन की बनी हुई माला का माहात्म्य तुलसी माला के सदृश देखने में आता है।

(४) मंत्र-मंत्र का जितना माहात्म्य लिखा जाय, इतना थोड़ा है क्योंकि भगवन् और मंत्र में किञ्चित् भी भेद नहीं है। जिस प्रकार अन्धेरे घर में रक्खा हुआ घट दीपक से दिखाई देता है। इसी प्रकार महामाया से ढका हुआ आत्मा मंत्र से देखने में आता है। मंत्र के वाच्य और लक्ष्य दो प्रकार के अर्थ होते हैं। वचन मात्र से पदार्थ का बोध कराने वाले अर्थ को वाच्य कहते हैं और लक्षण से पदार्थ के जताने वाले अर्थ को लक्ष्य कहते हैं, जैसे विष्णु शब्द का वाच्य अर्थ शंख चक्र गदा पद्म पीताम्बरधारी पुरुष मूर्ति है, और लक्ष्य अर्थ सर्वव्यापी, सर्वाधार सर्वान्तर्वर्ती परमात्मा है। शब्दमय मंत्र स्थूल विग्रह वाला बाह्य कहलाता है। सूक्ष्म ज्योतिर्मय, हृदयगत, चिन्तामय मंत्र श्रेष्ठतर माना गया है और चितवन रहित मन्त्र श्रेष्ठतम माना गया है। इस प्रकार महामन्त्र का ध्यान करने से परम गति प्राप्त होती है। मंत्र राज के प्रसाद से मनुष्य प्रमाद रहित हो जाता है, चेतन्य सहित मंत्र सब मिद्धियों का देने वाला है। जिस प्रकार शम्बर में मधुरता है, जैसे ज्योति से सूर्य में सर्व प्रकाश है, इसी प्रकार मंत्र में पूर्ण ब्रह्म विराजमान है। जैसे योग्य साधन के संयोग से बीज में सब वृक्ष निकल आता है, इसी प्रकार योग्य साधन के संयोग से मन्त्र में से परब्रह्म प्रकट होता है प्राणियों के मध्य में मनुष्य ही केवल मन्त्र का जप सका है, इसलिये मोक्ष कामी को सर्वदा मंत्र का मनन करना

चाहिये। 'या तो मंत्र को सिद्ध करूंगा। अथवा देह का त्याग कर दूंगा' इस प्रकार के भाव से मंत्र का सदा जप करना चाहिये। अभ्यास के योग से मन्त्र स्वाभाविक हो जाता है, और योगी के चित्त में स्वप्न में भी मन्त्र की धारा बहती है। रक्त में और प्राणवायु में मन्त्र निश्चय नृत्य करता है और देह में स्थित सब परमाणु मन्त्रमय हो जाते हैं। सागर गामिनी नदी मंत्र का गान करने लगती है, कल हंस मधुर ध्वनि से मंत्र कीर्तन करते हैं, आक शवारी पक्षी महामन्त्र की गुंज करते हैं, और जगत् का प्राण रूप वात मन्त्र घोष करता है, विश्वमाता प्रकृति मन्त्र का उच्चारण करती है, मन्त्र जगन्मय हो जाता है और जगत् मन्त्र मय हो जाता है इस प्रकार मन्त्र के प्रभाव से भक्त भगवत्मय होकर सर्वमय हो जाता है। इस प्रकार मन्त्र के प्रभाव से शीघ्र ही भगवत् की प्राप्ति होती है। चारों सम्प्रदायों के मन्त्र अलग २ हैं।

मंसाराम-महाराज ! जब भगवत् एक है तो उनके मन्त्र अलग २ क्यों हैं ?

मस्तराम-भाई ! जिस प्रकार एक मनुष्य को कोई अपरोक्ष नाम से पुकारता है, और कोई चाचा, ताऊ आदि परोक्ष नाम से पुकारता है। जिस प्रकार एक मनुष्य चाहे जिस नाम से पुकारे जाने पर सावधान और सन्मुख हो जाता है, इसी प्रकार भगवत् भी चाहे जिस नाम मन्त्र से स्मरण किये जाय, संमुख हो जाते हैं।

(५) नाम-नाम के निमित्त किसी प्रमाण का प्रयोजन

है। जो जिस वर्ग में होता है। जैसे पलटन में और सवारों में भरतार जिस संप्रदाय में गम रक्खा जाता है।

चारों संप्रदायों और त्रिदंडी कहलाते दूसरा शिखा और ती हैं। विशेष करके इन धारण के समय रक्त रंग के वस्त्र पहिनते निषिद्ध वस्त्रों के संप्रदाय चारों संप्रदाय स्वामी हुये हैं। चन्दन, भस्म, गोक्षमलाक्ष, रुद्राक्ष मन्त्र हैं। मुद्रा के समय का ही पयांत समझते की यह रीति का एक दण्ड है। इस संप्रदा की संज्ञा श्री

नहीं है। जो जिस वर्ग में होता है वैसा ही उसका नाम रक्खा जाता है। जैसे पलटन में भरती होने वाला सिपाही कहलाता है और सवारों में भरती होने वाला सवार कहा जाता है, इसी प्रकार जिस संप्रदाय में शिष्य होता है, उसी के अनुसार उसका नाम रक्खा जाता है।

चारों संप्रदायों के संन्यासी त्रिदंड धारण करते हैं और त्रिदंडी कहलाते हैं। एक दण्ड पलाश की लकड़ी का, दूसरा शिखा और तीसरा सूत्र यानी यज्ञोपवीत ये तीन दण्ड हैं। विशेष करके इनके नाम गिरा, पुरी, तीर्थ मुनि संन्यास धारण के समय रखे जाते हैं। श्वेत, गेरु अथवा शिंगरफो रंग के वस्त्र पहिनते हैं और संन्यास के पहिले नोलादि शास्त्र निषिद्ध वस्त्रों के सिवाय सब रंग के वस्त्र पहिनते हैं। स्मार्त संप्रदाय चारों संप्रदायों से भिन्न है। इसके आचार्य श्रीशंकर स्वामी हुये हैं। इस संप्रदाय के तिलक त्रिपुण्ड्र, नटाकार चन्दन, भस्म, गोपीचन्दन अथवा तीर्थ मृत्तिका होते हैं। तुलसी, कमलाक्ष, रुद्राक्ष जयापूतादि की माला होती है। गायत्री आदि मंत्र हैं। मुद्रा की प्रथा नहीं है, त्याज्य मानते हैं। नाम जन्म के समय का ही रहता है। यज्ञोपवीत के समय के संस्कार ही पर्याप्त समझते हैं, फिर गुरु नहीं करते। इस संप्रदाय में संन्यास की यह रीति है कि शिखा सूत्र दूर कर देने हैं, केवल लकड़ी का एक दण्ड रखते हैं, नाम भी उसी समय दूसरा रक्खा जाता है। इस संप्रदाय में संन्यासियों के दश नाम हैं। इन दशों नामों की संज्ञा श्रीशंकर स्वामी की कथा में बताऊंगा। गेरु या

शिंशरफ के रंग का कपड़ा पहिनना भस्म का तिलक त्रिपुंड्र लगाना, ब्राह्मण के सियाय अन्य किसी के हाथ का भोजन न करना, कर्मों का करना न करना समान समझाना ये मुख्य धर्म हैं और अन्य धर्म सब संन्यासियों के समान हैं। मुख्य संन्यासी वे हैं, जो दण्ड धारण किये रहते हैं और सब संप्रदायों में दण्डी स्वामी कहलाते हैं। विशेष करके काशी और मथुरा आदि में मिलते हैं।

हे मंसाराम ! एक भक्त इस प्रकार प्रार्थना करता है।

हे श्रीरूप स्वामी ! अन्तर्यामी ! हे दीनवत्सल ! हे दीन दयालु ! हे करुणाकर ! क्या कभी कृपा करके इस घर जाये चेरे की ओर भी दृष्टि कीजियेगा ? हे नाथ ! भला हूं अथवा बुरा हूं, जैसा हूं, आपका हूं, अन्य का नहीं हूं ! जिस प्रकार लाखों करोड़ों जन्म से इस मेरे मन ने मुझे अपने वश में कर रक्खा है, इसी प्रकार क्या मुझे भी कभी ऐसा सामर्थ्य प्रदान कीजियेगा कि मैं अपने मन को अपने आधीन रख सकूँ और अपनी आज्ञा में चलाऊँ ! मैं तो अनेक अपराधों से भरा हूं, इसलिये आपके देखने योग्य दर्शन करने योग्य नहीं हूं, परन्तु आप अपने विरद का आर देखिये ! आपका विरद है कि कोटि कोटि महापापी और महापातकी एक आपके नाम के अलम्बन से शुद्ध और पवित्र होगये हैं, होते रहते हैं और आगे होंगे ! मेरी प्रार्थना पूर्ण करना दुर्घट नहीं है किंतु आपकी कृपा दृष्टि की देर है ! जहां आपकी कृपा दृष्टि हुई कि बेड़ा पार है। प्रभो ! इतना ही मांगता हूं कि चाहे नरक में होऊ, नाहे

वर्ग में होऊँ, कहीं

हे मंसाराम

मन लगा कर सु

“यथा नाम

मान ही थे। यह प

मान थे। एकवार

न में आये। वृन्

हुये पुण्य कर्म उव

कन्द के दर्शन हो

होगई ! अचानक

एक कर बेसुध

समझा ! मूच्छा

कर पुकारने लग

रण विद्या और

का मनाहर मू

अन्त में कहने

मन को चुरा

हैं, ! पीरने का

काबा यही है

अब तो यहां

है कि पत्थर

स्वर्ग में होऊँ, कहीं भी होऊँ होऊँ आपका भक्त ।

हे मंमाराम ! अब वेप निष्ठा के भक्तों की कथाएँ सुनाता हूँ, मन लगा कर सुन:-

कथा रसखान की ।

“यथा नाम तथा गुणाः” रसखान भक्त सन्मुख रस की खान ही थे । यह पश्चिम भगवद्भक्त हो चुके हैं । पहिले यह मुसलमान थे । एकवार अपने पीर (गुरु) के साथ चलते २ श्रीवृन्दावन में आये । वृन्दावन में आने से उनके अनेक जन्मों के किये हुये पुण्य कर्म उदय हो आये अर्थात् उनको श्रीव्रजचन्द आनन्द कन्द के दर्शन हो गये । दर्शन होते ही उनकी दशा और ही हांगई ! अचानक कायापलट हो गये ! श्रीकृष्ण के रूप अनूप में छक कर बेसुध होकर गिर पड़े ! उनका पीर इस पीर को न समझा ! मूर्च्छा समझ कर औषधि करने लगा और चिल्ला २ कर पुकारने लगा ! बड़ी देर में रसखान ने आंखें खोली ! उसी कृष्ण विद्या और काव्य सब गुणों के खानि हो गये ! मन मोहन की मनाहर मूर्ति की छवि का एक कवित्त वर्णन किया और अन्त में कहने लगे । ‘पीर जी ! आंखें क्या खोलूँ मन्मथन चोर ने मन को चुरा लिया है । उनकी अद्भुत मूर्ति मेरे मन में बस गई है, ! पीरने कावे चलने को कहा तो कहने लगे अजी पीर जी ! काबा यही है, मैं तो ब्रज का हा चुका, अब कहाँ जाता हूँ ? अब तो यहां से कहीं जाने वाला नहीं हूँ, अब तो यह ही इच्छा है कि पत्थर होऊँ तो गिरिराज का होऊँ पशु होऊँ तो मन्दराव

की धेनु होऊं, मनुष्य का शरीर मिले तो ब्रज का ग्वाल बाल होऊं, पक्षी होऊ तो ब्रज का मोर होऊं, वृक्ष होऊं तो वृन्दावन का' । पीर ने चाहा कि बल से रथ में डाल कर ले जावें, रसखान वृन्दावन के वन में जा छुपे, पीर ढूँढ़ २ कर थक गया, कहीं पता न मिला हार कर चला गया, रसखान ने वृन्दावन में वास करके हजारों कवित्त वृन्दावन की शोभा के वर्णन किये और प्रिया प्रियतम की शोभा विहार की अद्भुत रचना की। वैष्णव वेष में रहते थे, बहुत सी मालायें पहिने रहते थे। किसी ने पूछा कि एक दो माला बहुत हैं, इतनी मालायें क्यों लटका रखी हैं? उत्तर दिया 'माला संसार समुद्र से पार उतार देती है, छोटे पत्थरों को एक दो मालायें बहुत हैं, मैं तो बड़े भारी पत्थर के सदृश हूँ, मुझे बहुत सी मालायें रखनी चाहियें।

कुं-मथुराजी रसखानजी, आये गुरु के संग ।

मन मोहन छवि देखि कर, रंगे कृष्ण के रंग ॥

रंगे कृष्ण के रंग, संग गुरु का तज दीन्हा ।

कावे की तजि आश, वास वृन्दावन कीन्हा ॥

पहिने तुलसी माल, न्हाय ब्रज में जमुनाजी ।

भोला ! तजि तिहुँलोक, कृष्ण भज बस मथुराजी ॥

कथा भगवान् दास की ।

भगवान दासजी मथुरा के रहने वाले भगवद्भजन भाव में ढूढ़ बड़े गुणवान् भगवत् के प्रेमी श्रोता, रहस्य रसके ज्ञाता

भगवद्भक्तों में विश्व
उनको देखकर मन
करने वाले और स
ने परीक्षा हेतु डोंड
करेगा, वह मारा ज
नता और तिलक ल
और अपने अनुगामि
तिलक लगा कर अ
बादशाह के सामने
कारण पूछा तो वे

भगवान् दास
जाय तो उद्धार हो
का ज्ञान हो गया है
धारण करके आप
ही जाय ।

भगवान् दास
भक्ति प्रसन्न हुआ
दास जी बोले कि
राइ ने लिख दिया
करो । भगवान् दास
की । गोवर्द्धन
पाखर । इन
की ही ज

भगवद्भक्तों में विश्वास वाले थे। ऐसे सुन्दर रूप वाले थे कि उनको देखकर मनको सुख होता था। भगवत् के धामों को टहल करने वाले और सभी भावों में श्लाघ्य थे। एकवार बादशाह ने परीक्षा हेतु डोंडी पिटवाई कि जो कोई माला तिलक धारण करेगा, वह मारा जायगा। इस बात पर बहुतों ने माला पहि-
नना और तिलक लगाना छोड़ दिया। भगवानदास जी न डरे और अपने अनुगामियों सहित पहिले से भी अधिक प्रकाशित तिलक लगा कर और दोहरी मालयें धारण करके निःशंक बादशाह के सामने चले गये। बादशाह ने आज्ञा न मानने का कारण पूछा तो बेधड़क होकर कहने लगे।

भगवानदास—हमारे दीन में माला तिलक सहित प्राण जाय तो उद्धार हो जाता है। हमको इस समय अपनी मृत्यु का ज्ञान हो गया है, इसलिये तिलक माला अच्छी प्रकार से धारण करके आपके पास आये हैं, कि बिना श्रम ही उद्धार हो जाय।

भगवानदास का यह दृढ़ विश्वास देख कर बादशाह अति प्रसन्न हुआ और जो इच्छा हो, माँगने को कहा। भगवानदास जी बोले कि मथुराजी से बाहर जाना नहीं चाहता। बादशाह ने लिख दिया कि जब तक मन चाहे मथुरा की आमिली करो। भगवानदास जी ने बहुत दिनों तक मथुरा जी की आमिली की। गोवर्द्धन जी में हरदेव जी का मन्दिर और मानसी गंगा पाखरा इनका ही बनवाया हुआ है। सच है दृढ़ निश्चय वाले की ही जय होती है।

कुं—मथुरावासी भक्तवर, भगवानदास सजान ।

प्यारा भगवत् देव तस, तस प्यारे नहिं प्राण ॥

तस प्यारे नहिं प्राण, तिरक करि माला धारी ।

गये शाह दरबार, शाह की शका टारी ॥

बरी आमिली धीर, भाक्त फी कला विकासी ।

भोला ! भज श्रीकृष्ण, नित्य ही मथुरावासी ॥

कथा चतुर्भुज जी की ।

करौली के राजा चतुर्भुज जी ऐसे भगवद्भक्त और साधु सेवी थे कि उनका उपमा देने को उनके समान कोई राजा नहीं मिलता । भक्तों के आने का वृत्तांत सुन कर इस प्रकार लेने को जाते थे कि जैसे सेवक और चाकर अपने स्वामी को लेने जाता है भगवद्भक्तों को घर लाकर राजा और रानी अपने हाथों से चरण धोते, पूजा करते थे । नगर के चारों ओर चार २ कांस पर चौकी थीं, वहाँ चौकीदार रख छोड़े थे कि जो कोई माला-धारी आवे, उनका समाचार पहुंचावे । एक कोई दूसरा राजा घेप सेवा का यह वृत्तांत सुन कर कहने लगा कि जब योग्य अयोग्य की समझ ही नहीं है, तो भक्त की क्या बढ़ाई है । राजा का परिहृत कहने लगा कि मन में समझ लेते होंगे । राजा ने विमुख भाट को परीक्षा लेने भेजा और समझा दिया कि माला तिलक धारण करके स्वामी हरिदास बन कर राजा के पास जाना । वह भाट करौली में आया और अपने स्वामी का कहना भूल कर भाटों का भाटपना फैलाने लगा । जब राजा

न हो सका तब
या । उसी भान्ति
ही रोका जब रा
ले स्वभाव के अनुसार
द जिमाया, भगवत्
राजा समझ गया
न में एक डिबिया में
और मुशज्जर
सही भेट की और उसे
पास आकर राजा
और सब विदाई समे
डिबिया खोली और
रन्तु भेद न समझा
है कि वेश साधु
वह बात राजा चतु
परिहृत को भेजा ।
पास आया । राजा
इदवत् करके अप
सम्भंग का सुख ल
ने भरदार खालक
ने कुछ न लिया
ने वह ही परिह
राजा के प

तकपर्णेश न हो सका तब उने अपने राजाकी शिक्षा का स्मरण हो आया। उसी भान्ति से राजा की सभा में गया किसी ने नहीं रोका जब राजा के सामने गया तो राजा ने अपने स्वभाव के अनुसार आगत स्वागत सब किया, भगवत् प्रसाद जिमाया, भगवच्चर्चा आरंभ का भाट हां हूं करता रहा, राजा समझ गया कि किसी ने परीक्षा के लिये भेजा है। अन्त में एक डिबिया में एक फूटी कौड़ी रख कर ऊपर से कीमखाव और मुशज्जर से लपेट कर ऊपर मोहर छाप लगा कर उसकी भेट की और उसे विदा कर दिया। भाटने अपने राजा के पास आकर राजा चतुर्भुज के भक्ति भाव का वृत्तांत सुनाया और सब विदाई समेत डिबिया राजा के आगे धर दी। राजा ने डिबिया खोली और फूटी कौड़ी देख कर आश्चर्य करने लगा परन्तु भेद न समझा। तब उसी पण्डित ने समझाया कि स्पष्ट तो है कि वेश साधु का और भीतर से भाट है, भक्त नहीं है, यह बात राजा चतुर्भुज कहते हैं। राजा लज्जित हुआ और पण्डित को भेजा। पण्डित सत्संग को धन्य मान कर राजा के पास आया। राजा चतुर्भुज पण्डित को आदर सत्कार सहित दण्डवत् करके अपने महल में ले गये और बहुत दिन तक सत्संग का सुख लुटते रहे। जब पण्डित जी चलने लगे तो राजा ने भण्डार खोलकर कहा जो इच्छा हो, ले जाइये। पण्डित जी ने कुछ न लिया एक मैना राजा को प्यारी थी, साधुसेवी राजा ने वह ही पण्डित जी को दे दी। पण्डित जी मैना लेकर अपने राजा के पास आये। मैना सभी को भगवद्धिमुख देख कर कहने

लगी कि कृष्ण कृष्ण कहो, जिससे तुम्हारा उद्धार हो, यह संसार आगमापायी है कृष्ण भजन बिना किसी प्रकार उद्धार नहीं होगा। राजा ने सब वृत्तों में पूछा, पंडित जी ने कहा कि एक मैना से सब समझ लाजिये। मैं करोड़ों मुख से भी राजा चतुर्भुज के भक्ति भाव का वर्णन नहीं कर सका। राजा को विश्वास हुआ और उसने भगवद्भक्त और साधु सेवा अंगीकार की। जब राजा भगवद्भक्त हो गया, तो मैना बिदा होकर राजा चतुर्भुज के पास पहुंच गई राजा बहुत प्रसन्न हुआ।

कु:-सत्संगी हरि भक्तवर, भये चतुर्भुज भूप।

प्रभु सम संवे चरण रज, देखि साधु का रूप ॥

देखि साधु का रूप, भाट बातों से चीन्हा।

पंडित का करि मान, संग बहु दिन तक कीन्हा ॥

मैना वर्णी भक्ति, शांतिदा भवभय भंगी।

सुनि करि कथा पवित्र, हुआ भोला सत्संगी ॥

कथा एक राजा की

एक राजा ऐसा भगवद्भक्त हुआ कि संसार के सुख और ऐश्वर्य को अनित्य समझ कर सदा भगवत् के स्मरण भजन में लगा रहता था, जिसकी कंठी तिलक धारण किये हुये देखता, भगवत् रूप जान कर दण्डवत् करता। भगवत् उत्साह और भक्तों के हेतु ही अपना धन लगाता। भांड आदि भगवत् विमुखों को कुछ न मिलता। एक बार भांड सलाह करके साधुओं का दण्ड बना कर आये। राजा ने अपने भाव के अनुसार पूजा

और सत्कार किया।
राजा प्रसन्न होकर ब
सेवकों को ढोल मृदंग
हैं बड़े आदर सहित
मोहरों का भरा हुआ
हा विश्वास देख कर
से सब भगवत् शरण

कु:-जानी राजा

सेवा कर

रहता ह

दीन्ह व

भांड दे

भोला

गिरधर

क्षण भगवत् के

के प्रेम को बहुत

में चाणी गदगद

हैं कभी कभी

एक बार मलि

और प्रेम में

भक्तों में उ

, यह
उद्धार
कहा कि
राजा
राजा को
वा अंगी-
दा होकर
हुआ।

और सत्कार किया। भांड साज संभाल कर भंडई करने लगे।
राजा प्रसन्न होकर बोला धन्य है। भगवद्भक्तों को कि अपने
सेवकों को ढोल मृदंग बजा कर नाच गान करके कृतार्थ करते
हैं बड़े आदर सहित सबको प्रसाद जिमाया। विदा के समय
मोहरों का भरा हुआ एक थाल सामने रख दिया भांड राजा
का विश्राम देख कर और सत्संग होने से शुद्ध मन हो जाने
से सब भगवत् शरण हो गये।

कु:- ज्ञानी राजा एक था, भगवत् भजन प्रवीण।

सेवा करता साधु की, रहता हरि में लीन ॥

रहता हरि में लीन, भांड साधु बन आये।

दीन्ह बहुतसा द्रव्य, दिव्य मिष्टान्न जिमाये ॥

भांड देखि विश्राम, भक्त सब भये अमानी।

भोला ! भक्तन पूजि, आतं अर्थार्थी ज्ञानी ॥

कथा गिरधर ग्वाल की।

गिरधर ग्वाल जी भगवत् में सखा भाव रखते थे, अनु-
क्षण भगवत् के समीप हंसी खेल किया करते थे, अपने अन्तर
के प्रेम को बहुत छुपाये रखते थे परन्तु भगवच्छात्रों के कीर्तन
में वाणी गद्गद् हो जाती थी भला फिर प्रीति कहाँ छिप सकती
है कभी कभी बन में जाकर कीर्तन और नृत्य किया करते थे।
एक बार मल्लिपुरा ग्राम में भगवत् का राम चरित्र कराया
और प्रेम में विवश होकर सब धन भगवत् भेंट कर दिया।
भक्तों में उनकी ऐसी प्रीति थी कि जिसको साधु वेष में देखते

थे, भगवत् रूप जानते थे। एकवार कोई मरा हुआ साधु देखा, उसका भी चरणामृत लिया। अयोग्य समझ कर ब्राह्मणों ने ऐसा करने को मना किया, न माने, कहने लगे 'भगवद्भक्त की कभी मृत्यु होती ही नहीं, यह तुम्हारा अविश्वास है, जो साधु को मृतक कहते हो'! भगवान् में सखा भाव रखते थे, इस कारण से ग्वाल पट्ट यानी ग्वाल नामि विख्यात हुआ।

कु:-सखा सयाने कृष्ण फे, प्रेमी गिरधर ग्वाल।

अनुक्षण खेलें साथ ही, रहे न देह संभाल ॥

रहे न देह संभाल, मृतक चरणोदक लीन्हा।

शंका कीन्ही लोग, उचित उत्तर तब दीन्हा ॥

मरता मानें भक्त, मूढ़ ते निपट अयाने।

भोला ! शिक्षा दीन्ह, ग्वाल हरि सखा सयाने ॥

कथा लालाचार्य की।

लालाचार्य श्रीरामानुज स्वामी की संप्रदाय में ऐसे भगवद्भक्त हुये हैं कि इनकी कथा सुन कर भगवच्चरणों में निश्चय प्रीति उत्पन्न होती है। गुरु ने आज्ञा दी कि भगवद्भक्तों में जितनी प्रीति और जितना विश्वास हो, उतना अच्छा है परन्तु भक्त को बड़े भाई से कम कभी न सम्भक्तना चाहिये। गुरु की इस आज्ञा के अनुकूल यह सर्वदा वर्तते रहे। एक दिन तिलक मालाधारी कोई मृतक साधु नदी में बहा जा रहा था, उसको निकाल कर अपने घर ले आये और विमान बना कर भगवत् कीर्तन करते हुये नदी पर लेजा कर उसकी दाह क्रिया की।

एकदात् इसके म...
दिया। ब्राह्मणों
न मालूम किस ज...
तर्कें यहां का भो...
चिन्ता करते हुये,
गुज जी के पास ल...
स्वामी जो कहने...
नहीं जानते, तुम
तय्यार करो वैकुण्ठ
हुआ उत्सव के दि...
और अलंकार धा...
किसी ने स्वप्न में
का प्रेम पूर्वक भोग
कि ऐसे ब्राह्मण का
होप बुद्धि से यह स...
हंसी करो कि लजि...
को जान गए और
चित्र और प्रताप
छोड़ कर लालाचा...
आंस न मिला रुके
हुये थे, उनमें से ह...
लालाचार्य के चर...
नय कृपा करके

पश्चात् इसके महोत्सव में ब्राह्मणों और सगोत्रों को निमंत्रण दिया। ब्राह्मणों ने निमंत्रण अंगीकार न किया, कहने लगे कि न मालूम किस जाति का था, इनका कोई न था, इसलिये हम इनके यहां का भोजन नहीं कर सकते, यह सुन कर लालाचार्य चिन्ता करते हुये, अपने गुरु के पास गए, वे इनको श्रीरामानुज जी के पास ले गए, दण्डवत् करके सब वृत्तांत सुनाया। स्वामी जो कहने लगे कि वे सब लोग भगवत् प्रसाद की महिमा नहीं जानते, तुम चिन्ता मत करो तुम भोजन की सामग्री तय्यार करो वैकुण्ठ से भगवत् आकर भोजन करेंगे! ऐसा ही हुआ उत्सव के दिन भगवत् पार्षदों के भुंड के भुंड दिव्य वस्त्र और अलंकार धारण किये हुए ऐसे अद्भुत स्वरूप से आए कि किसी ने स्वप्न में भी न देखे हों। सब ने आकर बने हुए प्रसाद का प्रेम पूर्वक भोग लगाया। ब्राह्मणों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऐसे ब्राह्मण कहाँ से आए हैं? सब ब्राह्मणों ने मिल कर द्वेष बुद्धि से यह सलाह की जब भोजन करके आवें, तो ऐसी हंसी करो कि लज्जित हो जाय। भगवत् पार्षद इनके अभिप्राय को जान गए और भोजन करके आकाश मार्ग से चले गए। यह चित्र और प्रताप देख कर ब्राह्मण बड़े लज्जित हुए, अहंकार छोड़ कर लालाचार्य के सामने आये और लज्जा से आंख से आंख न मिला सके। पार्षदों के भोजन किये हुये पनवाड़े पड़े हुये थे, उनमें से ही प्रसाद लेकर भोजन करने लगे। पश्चात् लालाचार्य के चरणों में दण्डवत् करके प्रार्थना करने लगे कि अब कृपा करके हम को अपना सेवक कर लो! लालाचार्य ने

कहा कि तुम्हारे ऊपर तो भगवान की कृपा हुई है कि भगवत्पार्षदों के तुम को दर्शन हुये, इससे अधिक क्या कृपा चाहते हो। ब्राह्मणों ने विनय की कि अब हमको लज्जित करने की आवश्यकता नहीं है, अब तो अनुग्रह करने की आवश्यकता है। इतना कह कर सब ब्राह्मण भगवत् शरण हुए, और भगवद्भक्ति तथा वेष निष्ठा का प्रताप संसार भर में फैल गया।

कु:-प्रंभी भगवत् वेष के, स्वामी लालाचार्य।

मृतक साधु घर लाय कर, क्रिया करी हर्षाय ॥

क्रिया करी हर्षाय, विप्र जीमन नहीं आये।

भगवत्पार्षद आय, जीम नभ मार्ग सिधाये ॥

लज्जित होके विप्र, आयके झूठन जैमी।

भोला ! भये कृतार्थ, वेष भगवत् के प्रेमी ॥

कथा मधुरदास साह की।

मधुरदास साह जी ओड़छे के राजा भगवद्भक्ति में भी राजा हुये। इनका साधु वेष में अत्यन्त प्रेम और विश्वास था सच मुच जैसा मधुकर नाम था, वैसी ही इनकी रीति भी थी। जैसे छमर सारग्राही होता है, इसी प्रकार यह भी सारग्राही थे। इन का नियम था कि जो कोई कंठी तिलक माला धारी होता, उसका चरणामृत लेते और उसकी परिक्रमा करते थे। राजा के भाई बंधुओं को यह बात अच्छी नहीं लगती थी। एक दिन उन्होंने एक गदहे को बड़नसी मालायें पहिना कर और तिलक लगा कर राजा के महल में भेज दिया राजा उठा, गदहे के

चरण धोये, परिक्रमा
तो मुझे निहाल क
विदा कर दिया, उ
का विश्वास हुआ
यह वचन जो कहा
जो मेरे राज्य में
कोई माला तिलक
है, वह गदहे से भी

कु:-मधुकर

लोभी

भली

लज्जित

भोला

भगव

एक राजा

रोग न गया।

जहाँ हंस रहते

इन व्याधियों के

पकड़ने गये।

मानना भगव

जाल में आग

चरण धोये, परिक्रमा की और विनय करने लगा बाहवा ! आज तो मुझे निहाल कर दिया ! पंछे प्रसाद जिमा कर गदहे को विदा कर दिया, दुष्ट लज्जित हुये और उनको भगवद्भक्ति का विश्वास हुआ । हे मंसागम ! राजा ने 'निहाल कर दिया' यह वचन जो कहा था, अभिप्राय यह है कि मेरे बड़े भाग्य हैं, जो मेरे राज्य में गदहे भी माला तिलक धारण करते हैं । जो कोई माला तिलक नहीं धारण करता, निस्संदेह बेपूँछ का गधा है, वह गदहे से भी गया बीता है ।

कुं:-मधुकर लोभी कमल ज्यों, त्योंही मधुकर साह ।

लोभी भगवत् वेष के, भली निकाली राह ॥

भली निकाली राह, प्रेम वश गदहा पूजा ।

लज्जित कीन्हे दुष्ट, भक्त ऐसा को दूजा ॥

भोला ! भगवत् वेष; पूजि जैसे, हरि शंकर ।

भगवत् में करि प्रेम, पद्म में जैसे मधुकर

कथा हंस प्रसंग की ।

एक राजा के कुष्ठ का रोग था । बहुतेरी औषधि की, रोग न गया । किसी वैद्य के कहने से राजा ने मान्सरोवर में जहाँ हंस रहते हैं, व्याधों को हंस पकड़ने को भेजा । जब हंस इन व्याधों के हाथ न आये तो वे साधुओं के वेष बना कर हंस पकड़ने गये । हंस व्याधों का कपट जान गये परन्तु वेष को न मानना भगवद्धर्म से विरुद्ध है, ऐसा समझ कर हंस व्याधों के जाल में आगये । व्याध उनको पकड़ कर राजा के पास ले

आये। इतने ही में भक्तवत्सल महाराज लाल किनारे की सफेद धोतीधारण किये हुये, ढीला ढाला पैरों तक लटकता हुआ लम्बीर बांहों का अंगरखा पहिने हुये, कंधा के ऊपर एक महान दुग्ढा डाले हुये, शिर पर मरहटा पगड रख कर, अंगरखे का जबा में बसन्तमालती आदि औषधियों की छोटी २ शीशी और पुड़िया डाले हुए, माथे पर गोरोचन का लम्बा त्रिपुण्ड्रधारण किये हुये, गले में रुद्राक्ष की माला शोभित वैद्यराज का स्वांग रत्न कर राजा की सभा में पहुंचे राजा ने वैद्यराज को बड़े आदर सत्कार सहित ऊंचे आसन पर बैठाया और अपने रोग का वृत्तान्त सुनाया, हंस पकड़वाने का वृत्तान्त भी सुनाया। वैद्य महाराज ने राजा को आश्वासन दिया और कहा कि तुम्हारा रोग एक रूखड़ी लगाने से ही क्षण भर में कपूर हो जायगा, इन पखेहओं को वंश में से मुक्त कर दो नन्द रखने का कोई प्रयोजन नहीं है। इतना कह वैद्यराज ने कोई औषधि शरीर पर मल दी, जैसे गदहे के शिर पर से सींग चले जाय, इसी प्रकार राजा का कुण्ट न मालूम कहां भाग गया और उसका शरीर निर्मल हो गया। राजा ने तुरन्त ही हंसों को छोड़ दिया और हाथ जोड़ कर विनय करने लगा। 'महाराज! यह राज्य और सम्पत्ति आपकी ही है, स्वीकार कीजिये।' वे वैद्यराज बोले, 'भाई! यह तेरा कथन ठीक है, सब कुछ मेरा ही है, परन्तु हे राजन्! यह मनुष्य शरीर बड़े पुण्य से प्राप्त होता है, भगवद्भक्ति और साधु सेवा अंगीकार करके इस दुर्लभ मनुष्य शरीर को सार्थक करले।' पश्चात् राजा ऐसा भक्त हुआ कि

उसके राज्य भर में
प्रसंग सम्भने
भक्ति और वेष क
ही भी चिन्ता छोड़
से युक्त है, वह
ही है, वह तो ज
विमुख होने से नर
हीन ऐसा मूढ़ हो
नहीं होगा! हे म
भजन में रत हो ज

कुं:-हंस

नश्वर

काटे

भजे

भोले

जा

कुं:-

न

वे

स

उसके राज्य भर में भक्ति की प्रवृत्ति होगई। हे मंसाराम ! यह हंस प्रसंग समझने योग्य है कि जानवरों में तो ऐसी भक्ति हो कि भक्ति और वेध की महिमा प्रसिद्ध करने के लिये अपने प्राणों की भी चिन्ता छोड़ कर जाल में आगये और मनुष्य जो ज्ञान से युक्त है, वह भगवत् भक्ति से विमुक्त है, तो वह मनुष्य कहाँ है, वह तो जानवरों से भी मूर्ख है, ऐसा मूर्ख भगवत् विमुक्त होने से नरक गामी होगा, इस कथा को सुन कर कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो भगवद्भक्ति में तन, मन, वचन से रत नहीं होगा ! हे मंसाराम ! सबकी आशा छोड़ कर भगवत् भजन में रत हो जा !

कुं:-हंस विवेकी है वही, जाने सार असार ।
नश्वर देह असार से, काढे भगवत् सार ॥
काढे भगवत् सार, विश्व सब जाने नश्वर ।
भजे सदा विश्वेश, एक अच्युत परमेश्वर ॥
भोला ! सच्चा शोध, खोज मत कर झूठे की ।
जाने सार असार, प्राज्ञ नर हंस विवेकी ॥

कुं:-न्यारे करदें क्षीर जल, वे हैं पक्षी हंस ।
न्यारे करदें सत् असत्, वे निरपक्षी हंस ॥
वे निरपक्षी हंस, देह निस्सार तजें जो ।
सब सारों के सार, एक श्रीकृष्ण भजें जो ॥
भोला ! भज विश्वेश, एक पल मती विसारे ।
मिथ्या तीनों देह, देह से भगवत् न्यारे ॥

पुस्तकों का सूचीपत्र ।



बंदोपनिषद्

ईश, केन, कठ और माण्डूक्य आदि उपनिषदों का उत्तम संग्रह है । अर्थ हिन्दी भाषा में दिया है सो भी अत्यन्त सरल । आत्मा को सच्ची शान्ति देने वाली इस अनमोल पुस्तक की न्यौछावर केवल १) मात्र

ज्ञानधर्मोपदेश

सागर गागर में भर दिया गया है । इस में वेद-वेदान्त की रहस्यमयी उत्तम कविताएं तथा लेख समहीत हैं । मूल्य केवल १)।

श्रीमद्भगवद्गीता

मूल, अन्वय, पर्याय और सरल भाषा में अर्थ, यह सब कमशः इसमें हैं । गीता के परिचय देने की जरूरत ही क्या है । इतना अवश्य है कि इस टीका को किसी मत-मतान्तर के झगड़े में न डाल कर शुद्ध रखा गया है । कागज, छपाई, सफाई बढ़िया, पृष्ठ-संख्या ४२५ फिर भी प्रचारार्थ न्यौछावर केवल ॥२)।

भाषाफक्किका प्रकाश

संस्कृत के वैयाकरण जानते हैं कि भट्टाजिदीक्षित की

सिद्धान्त कोमुदी
तथा दुर्बोध है ।
फक्किकाओं को
के प्रश्नोत्तरों के
और साधारणत

यह गी
की माला है ।
संसार पार क

वेदान्त
सवैया आदि
का इसका
और वैराग्य

इस
भाव भरि
सञ्चय है
देखलो,
है मूल्य

‘सिद्धान्त कौमुदी’ की फक्किक्काएं कितनी गम्भीर अतएव क्लिष्ट तथा दुर्बोध हैं। संस्कृत व्याकरण को सुगम बनाने के लिए इन्हीं फक्किक्काओं को हिन्दी भाषा में, बड़े सुन्दर ढंग में, गुरु शिष्य के प्रश्नोत्तरों के रूप में सजमाया गया है। संस्कृत के विद्यार्थियों और साधारणतः पण्डितों के बड़े काम की है। मूल्य केवल ॥)

अष्टोत्तरशतमंत्रमाला

यह गीता और उपनिषदों के चुने हुए १०८ उत्तम मन्त्रों की माला है। अर्थ हिन्दी में है। इस माला का पाठ अवश्य संसार पार करने में सहाय है। न्यौछावर -)

सत्यशब्द संग्रह

वेदान्त की उत्तम सन्त वाणियों का संग्रह है। कवित्व, सवैया आदि सभी छन्द हैं। पुस्तक बड़ी सुन्दर है। मुमुक्षुओं का इसका नित्य मनन और पाठ करना चाहिये। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य आदि के शब्दएकल मन्त्रिबिष्ट हैं। मूल्य ॥३॥ मात्र

सार संग्रह

इसमें भी सार गर्भित, उपदेश पूर्ण, ज्ञान गुम्फित और मात्र भरित कमनीय दिव्य कविताओं और सन्त वाणियों का सञ्चय है। संग्रह जैसा कुछ बन पड़ा है, सो इसके नाम से ही देखलो, सब का सार है। संग्रह कर्तृ श्रीमती सूरजदेवी जी हैं मूल्य ॥)

शब्द सदाचार संग्रह

इसमें सन्त महारमाओं की उत्तम वाणियों का संग्रह है।
अन्त में सदाचार सम्बन्धा उपदेश हैं। मूल्य १॥

ज्ञान भक्ति योग संग्रह

पुस्तक का विषय पुस्तक के नाम में ही स्पष्ट है। इसमें
पाँचों देवताओं की स्तुति है, पश्चात् भक्ति, ज्ञान और योग की
भलो प्रकार से माँसा की गई है मूल्य केवल २॥

भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त

इसमें मोटे अक्षरों में मूल, पश्चात् सरल अन्वय और
फिर भाषा में सरल शब्दार्थ है मूल्य १॥

शब्द संग्रह

इसमें सन्तों की उत्तम वाणियों का संग्रह है। पुस्तक संग्रह
करने योग्य है मूल्य १॥

मनुस्मृतिसार

यह पुस्तक मनुस्मृति का सार है। वैसे तो देश में और
भी कई सन्निप्र स्मृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं परन्तु यह स्मृति-
सार इतना उत्तम है कि इसमें कोई भी आवश्यक अंक नहीं छोड़ा
गया है। इसके पढ़ने से मनुष्य समस्त स्मृति के पढ़ने का लाभ
उठा सकता है। मूल मोटे टाइप में दिया गया है और नीचे

हिंदी भाषा में ठीका
मूल्य केवल १॥

भक्ति

यह भक्ति के
करने योग्य है। इसमें
के सुन्दर लेख हैं, भ
तिरंगे और सादा
आज अत्युत्तम
तम पुस्तक है मूल्य

यह भक्ति
संग्रह पुस्तक है
सत्संग, भगवत्
तथा प्रधान २
बहुत सुन्दर हु
से युक्त है।
बारह आना म

यह पाच
उत्तम संग्रह

हिन्दी भाषा में ठीका दी गई है तिस पर भी १०८ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल ॥॥

भक्ति का भगवद्भक्तांक

यह भक्ति के तीसरे वर्ष का विशेषांक है। वास्तव में संग्रह करने योग्य है। इसमें दश के धुरन्धर विद्वानों सन्त महात्माओं के सुन्दर लेख हैं, भागवतों के ललित भाषा में चरित हैं तथा कई तिरंगे और सादा चित्रों से सुसज्जित है। छपाई, सफाई तथा कागज अत्युत्तम लगाया गया है। यह उपहार देने योग्य अत्युत्तम पुस्तक है मूल्य केवल ॥=॥

भक्ति का भगवदंक

यह भक्ति के चौथे वर्ष का प्रवेशांक है। यह भी अपूर्व संग्राह्य पुस्तक है। इसके पढ़ने से ज्ञान का ज्ञान, सत्संग का सत्संग, भगवत् के गुणों का स्मरण तथा उनके दशों अवतारों तथा प्रधान २ भागवतों के सुन्दर चित्रों के दर्शन होते हैं। छपाई बहुत सुन्दर हुई है तथा ६ तिरंगे और सात सादे सुन्दर चित्रों से युक्त है। पृष्ठ संख्या १२८, तिस पर भी मूल्य केवल ॥॥ बारह आना मात्र।

गवांक

यह पाचवें वर्ष का विशेषांक है। इसमें गोरक्षा सम्बन्धी अति उत्तम संग्राह्य साहित्य संग्रह किया है। यह अंक गोशालाओं और

डेयरी फार्मों के अतिरिक्त प्रत्येक गोरक्षक के पढ़ने और मगन करने योग्य है। उत्तम वंश की गौओं और सांडों के चित्र तथा कई एक रंगीन चित्रों से सुसज्जित इस अंक का मूल्य केवल ११) मात्र है।

महात्मांक

यह भक्ति के छठे वर्ष का विशेषांक है। इस अंक में देश विदेश के महात्माओं का जीवन चरित्र बहुत ही ललित भाषा में संप्रह किया गया है। महात्माओं के रङ के लगभग रंगीन और सादे चित्र दिये हैं। मूल्य १)

पुस्तक मिलने का पता:—

मैनेजर 'प्रकाशन विभाग' श्रीभगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

श्रीभगवद्भक्ति आश्रम के उद्देश्य

- १-श्रीभगवान् की भक्ति का प्रचार करना ।
- २-गौरक्षण और उसके लिये गोचर भूमि छुड़वाना
- ३-जंगलों में वृक्ष लगवाना और उसके बीचमें जलाशय बनवाना ।
- ४-शिक्षा का प्रचार करना-जिसमें मनुष्यमात्र विद्यालाभ कर सके-और प्राचीन प्रथा का फिर प्रचलित करना ।
- ५-बीमारियों के अवसर पर दवाई बांटना ।
- ६-आस पास के ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति और प्रेम बढ़ाना ।
- ७-सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना ।
- ८-राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना ।

“भक्ति” कार्यालय रेवाड़ी से भक्ति संगीत कीजिये ।

क्योंकि

१. यह भक्ति, ज्ञान, योग पुरा सचित्र मासिक पत्र है ।
२. इसके आरम्भ में सर्वदा भगवत् स्तुति, प्रार्थना तथा वपासना के अर्थ सहित मन्त्र तथा श्लोक रहते हैं ।
३. इसमें बड़े २ महात्माओं, भक्तों तथा विद्वानों के और आधुनिक कवियों की सरस भाव पूर्ण कविताएँ रहती हैं ।
४. इसके अन्त में प्राचीन महात्माओं के गम्भीर, पूर्ण गाने योग्य भजन रहते हैं ।
५. इसके पढ़ने से आपको सत्संग तथा भक्ति का होगा ।
६. वर्ष में एक बार सुन्दर लेखों तथा कई एक मनोहर चित्रों से विभूषित बृहदाकारका विशेष निकलता है जो कि स्थाई ग्राहकों को बिना मूल्य ही जाता है ।
७. इसमें रंगीन कवर के अतिरिक्त प्रति मास एक ही मनोहर चित्र रहता है ।
८. इतना सब कुछ होने पर भी इसका वार्षिक केवल २) मात्र है इसलिये आज ही पत्र लिख कर इसके ग्राहक हो जाइये ।

सम्पादक

डी से
कीजिये ।

पांकि

गण पूण सचित्र मासिक पत्र है
सर्वदा भगवत स्तुति, प्रार्थना
तथा श्लोक रहते हैं ।

माश्रों, भक्तों तथा बिद्वानों के
रस भाव पूर्ण कवितायें रहती
माचीन महात्माओं के गम्भीर,
हैं ।

आपको सत्संग तथा भक्ति शा

सुन्दर लेखों तथा कई एक
से विभूषित बृहदाकारका कि
आई ग्राहकों को बिना मूल्य

5 वर के अतिरिक्त प्रति मास एक

छ होने पर भी इसका वारि
आज ही पत्र लिख कर

सम्पाद

मुद्रकः—भक्ति प्रेस श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा रेवाड़ी,
प्रकाशकः—श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा रेवाड़ी